

॥ श्रीः ॥

सादरं समर्पणम्

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरु साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

श्रीमतां पदघाम्यप्रमाणपारावारीणधुरीणानां विविधविद्या-
ग्रन्थप्रणयनचणानां प्राच्यप्रतीच्यबहुशास्त्रविचक्षणानां शास्त्र-
जीवनानां निखिलानघद्यगुणगणालंकृतानां समस्तभूमण्डलनिग्रह-
स्थानीकृतप्रतिपक्षजन्मनाम् धर्मधुरन्धराणां जगदम्बाप्रसादाद्बन्ध-
विश्वविश्रुतवैदुष्यजुषाम् विद्वद्भारियाणां सर्वतन्त्रस्यतन्त्राणां श्रीं
गुरुवरणानां सरस्वत्यपरावताराणां दुस्तरविद्यार्णवसमुत्तरण
प्रकटीकृतमहावीरपराक्रमाणां शिष्यानुग्रहकाङ्क्षया प्रत्यक्ष
शिष्यावताराणाम् करुणावरुणालयानां बङ्गप्रान्तीयविद्वन्मण्डल-
मण्डनानाम् विक्रमपुरान्तर्गतटोलचासाइल ग्रामवास्तव्यानां
प्रातःस्मरणीयपुण्यश्लोकविद्यालङ्कारोपाधिकवामाचरणात्मजानां
तत्रभवता आचार्यप्रवराणां श्रीं करुणामयसरस्वतीमहाभागानां
करकमलयोर्मिलिन्दायताम् गुरुमण्डल द्वादशपुष्पं
ब्राह्मपुराणमिदम् सादरम्
गुरुदेव !

न किञ्चिन्नूतनं यस्तु दातुं निष्ठाऽस्ति मामिका ।

ब्राह्ममेतद्धि भगवन्नर्पितं प्रीतयेमुदा ॥

इति

कलिकाता
शिवरात्रिप्रतम्
२०६० वि०

श्रीं श्रीगुरुवरणैक शरणस्य
मनसुखरायमोरस्य



गजगुरु पं० हरिदत्त श्याम्भो
विद्यारत्न, विद्यालङ्कार,
धर्म धुरीण

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

पुराण विद्या

मानवीय जिज्ञासा की उत्कट पिपासा को गवेषणा द्वारा शान्त किया जाता है। गवेषणा का आधार है प्राचीन साहित्य, प्राचीन निर्माण तथा पुरातत्त्व सफल जिज्ञासा से देश एवं जाति की प्रायः सब समस्याओं का सुलभ और उपयोगी समाधान हो जाता है। गवेषणा से ही वेदादि सच्चाह्व तथा कालोपयोगी वैज्ञानिक सिद्धियाँ प्रकाशित और व्यवहृत हुई हैं। प्रखर क्रान्तिकारी जीवन का उद्गम गवेषणा है, तत्त्वानुसन्धान, तत्त्वचिनिमय एवं तत्त्व चिन्लेपण से कितनी गूढ़ और बलवती कार्योपयोगी शक्तियों का आदान-प्रदान व्यवहार में आ रहा है यह सब गवेषणा का ही फल है।

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदोंमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिर्भौतिक, दैव, मानुषी, आसुरी तथा चैतन्य एवं जड सब प्रकार की गवेषणा का सूक्ष्मरूप से विधान है। ब्राह्मण भाग और आरण्य भाग में विशेषतः आधिदैविक एवं अधियज्ञ की गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती है। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक, एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं को इतिहास और कथानक के स्वरूप में

आकर्षक और बुद्धिगम्य साहित्य में श्री वेदव्यासजी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल स्मृति शास्त्राभिप्रेत, आचार, व्यवहार प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है, अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महता भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान गाथा में वेद वेदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने में मनुष्यता रूपी रासायनिक निधिकी प्राप्ति यताई गई है। "इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपवृंहयेत्" महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणां को समझने से वेद की निधि प्राप्त हो सकती है।

बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन से तथा निरुक्तादि शास्त्रों के न जानने से वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान एव मानव जिज्ञासा की पूर्ति असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी ने उत्तर मीमांसा ब्रह्मसूत्र में वेद प्रतिपाद्य अध्यात्म-निष्ठा से त्रिविध सन्ताप से मुक्त होने का सरल उपाय ज्ञाननिष्ठा का प्रतिपादन किया है तथापि ज्ञाननिष्ठा का परिपाक और स्थितप्रज्ञ भूमि का साधन पुराण पाठों का अध्ययन यताया है। प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक इतिहास कथानक ही ला सकते हैं। यजुर्वेद में "ईशावास्यमिदं^१ सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विक्रानम्"। मनुष्यता के विकास का पूरा २ साधन इस मन्त्रमें आया है परन्तु केवल मन्त्र पाठ और उसके अर्थ ज्ञानमात्र से ही जीवन में उस भावना का अभ्युपगम सञ्चार होना कठिन है अतः पुराणों में जो सत्यनिष्ठा, त्याग निष्ठा, अद्रोह निष्ठा के इतिहास हरिश्चन्द्र शंखलिखित एवं

च्यवन आदि के उन इतिहासों से मनन करते हुए रोमाञ्चकारी क्रान्ति एवं अध्रुधरा पात से जीवन में सत्य एवं करुणा का रासायनिक सञ्चार तत्काल होने लगता है। अतः वेदों में “सत्यं वद धर्मञ्चर” आदि वेद वाक्य बोधित अर्थों का इतिहास कथानक के रूप में चारु और ग्राह्य प्रयास वेदव्यासजी ने पुराण ग्रन्थों में किया है।

मानवीय ऐहिक, एवं पारमार्थिक जिज्ञासाओं की सफलता रूपी कल्प पादप अष्टादश पुराण व्यासजी के द्वारा प्रकट हुए हैं।

यद्यपि पौराणिक शैली प्रधानतया त्रैगुण्य रचना और प्रकृति की विकाशक है और प्रत्येक पुराण में गुणत्रय और गुणात्तौ संसार और अव्यक्त ब्रह्म का प्रतिपादन और उस प्रतिपाद्य की प्राप्ति के विधान हैं। तथापि कोई पुराण प्रधानतया सात्विक और कोई राजसिक एवं कोई तामसिक होनेसे ६ होते हैं। नवशक्त्यात्मक और नवशिवात्मक होने से अठारह संख्या होती है वस्तुतः संख्या नौ ही है। परन्तु तन्त्र शास्त्र में शिवशक्त्यात्मक योग से ६ संख्या अष्टादश हो जाती है।

इसी सिद्धान्त पर अष्टादश पुराण, अष्टादश प्रधान स्मृतिकार, अठारह पर्व, अष्टादश गीता के अध्याय आदि होते हैं। अठारह पुराणों को गणना इस प्रकार है।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, लिङ्ग, घराह, वामन, मत्स्य, कूर्म, स्कन्द, गरुड और ब्रह्माण्ड।

निरुक्त में पुराण शब्द का निर्वचन इस प्रकार आया है :—
 “पुरा नमं भवति” जिसकी नवयुति सबसे प्रथम प्रगट हुई वह पुराण है। इसलिये भगवान् को भी पुराणपुरुष कहते हैं। पुराण का अर्थ जोर्ण नहीं है अपितु आदि विकास का है। गीता में भगवान् की प्रार्थना में आया है “कवि पुराणमनुशासितारं” भगवान् क्रान्तदर्शी तथा पुराण होने से सबके अनुशासक हैं अतः पुराण शब्द से आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिसमें आदिदेव आत्मज्ञान का प्रबोध हो इस आदि विद्या को मानव जागृति के हेतु एवं जगत्कल्याणार्थ वेदव्यासजी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

“सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥”

प्रधानतया पञ्चलक्षणों को लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गों का पुराणों में बड़ी प्रभावपूर्ण शैली में इतिहास कथाओं को लेकर मानव संसार के ज्ञान प्रसारार्थ विश्व में विस्तार किया है। जितना सरलनासे पुराणोंके द्वारा चतुर्वर्ग सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं। व्यासजी ने अष्टादश पुराणों में इतना महान् साहित्य और विज्ञान, कला, योग तथा तपस्या सबका सार परोपकार अर्थात् सब जीवमात्र पर दया और मैत्री करणा करना पुण्य कहा है। दूसरों को पीड़ा देना पाप है। यह पाप पुण्य की परिभाषा मानव प्रगति को कितने सुचारु रूप से जीवनचर्या का आधार बनाने के लिये आदेश करती है

और मनुष्यता का कितना सुन्दर मौलिक आचरण यता रहा है।

अष्टादश पुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपोडनम् ॥

पुराणोंमें सत्य की गवेषणा पर महागज सत्यवादी हरिश्चन्द्र के कथानक से ज्ञात हो जायगा कि हरिश्चन्द्र जैसे सत्यव्रत आदर्श राजा ने सत्य की रोज में कितना मूल्य लगाया है। सुकन्या ने देवियों की दृढ़ निष्ठा से अपनी निष्ठा और सत्य से किस अलौकिक चमत्कार की सिद्धि प्राप्त की है यह आप लोगों से छिपा नहीं है। भगवान् रामचन्द्र की जीवन चर्चा में उनके चरित्र की विशेषता और मर्यादा की गवेषणा की कैसी हृदय-ग्राही शिक्षा यताई है। देखिये—जनमत के सामने झुक कर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी सती सीता को छोड़ दिया। पैतृक धनुशासन और आज्ञा का आदर्श स्थिर करने के लिये राज्य तक का त्याग किया एवं दुराचार शमन के लिये एक अधितन्त्रवादी अधिनायकका विध्वंस किया। जो आदर्श श्रोगम के चरित्र में है जिस उच्च भूमिका पर समाज के जीवन का नैतिक, सामाजिक, चारित्रिक, धार्मिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूप में स्तर प्रतिष्ठित करने का अद्वितीय लक्ष्य है वह संसार की किसी भी सभ्यता में दिखलाई नहीं पड़ता। रामराज्य के शासनिक विवरण को वेदव्यासजी ने इस प्रकार दिया है.—

“न पुत्र मरणंकेचिद्रामे राज्य प्रशासति ।”

इसे ही रामायण में महर्षिवाल्मीकि ने इस प्रकार कहा है—

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाःकचिन् ।

नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥

राम के राज्य में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता था । पुण्य शासन का यही आदर्श है संसार के शासन का राम के शासन के अतिरिक्त क्या और दूसरा उदाहरण कहीं मिल सकेगा ?

मार्कण्डेय के चरित्र से दीर्घायु की गवेषणा एवं दिलीप और कौत्स के विनयाधिकार की खोज से विद्या का चमत्कार और आदि मानवीय उच्च नीच भावनाओं की अनुकरणीय गाथाओं से अनेक गुरु शिष्य का सम्यग्ध तथा अनुशासनमय जीवनकी घटनाओंकी गवेषणा पुराण साहित्य से प्राप्त होती है । इसी प्रकार मानव जीवन को उदात्त बनाने वाली चारित्र्य और पुरुषार्थ की गवेषणा पुराण ग्रन्थों से प्राप्य है । इतना ही नहीं, आध्यात्मिक और आधिदैविक गवेषणा के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद और आधिभौतिक सिद्धान्त अणुशक्ति की गवेषणा की भी प्रचुर सामग्री पुराण ग्रन्थों में है ।

पुराण ग्रन्थों से अणुशक्ति का ज्ञान प्राप्त कर वैशेषिक दर्शनकार कणाद ने आकाश में निश्चेष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सप्त पदार्थों की रचना को मीमांसा का प्रशिक्षण बताया है । इस समय अणुगवेषणा पर भौतिक अनुसन्धान के विशेषज्ञों ने संहारक अणु शक्ति का पता लगाया है परन्तु प्रजनन और पालन अणुशक्ति का अभी उनको ज्ञान नहीं है । वह विज्ञान संस्कृत

साहित्य में मिलता है। इस पर ध्यान देकर यन्त्रों द्वारा अनुसन्धानकर प्रत्यक्षीकरण किया जाय तो ससार का महान् उपकार होगा। जैसे, “तनीयास पासु तव चरणपङ्के रह भवम् विरञ्चि सचिन्वन् विरचयति लोकानविकल्म । घहत्येन शौरि कथमपि सहस्रेण शिरसा, हर सभुम्भै न भजति भसितोद्भूलनविधिम् ॥ (सौन्दर्यलहरी)

अर्थात् शक्ति जिसे भगवती या महाशक्ति के नाम से संस्कृत साहित्यमें कहा गया है उस आकाश रूपिणी अत्यक्त शक्ति से अणुवृष्टि हुई। उन अणुओं में से सर्जनात्मक अणुओं को संचित कर ससार का रचना की गई। इसे ब्राह्मी अणुशक्ति कहा है। दूसरे प्रकार के अणुओंको गवेषणा द्वारा संचित कर वैष्णव अणुसे ससार की पालनात्मक सामग्री बनी है। संहारात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र कर रौद्र अणुओं के पिण्डीकरण से ससार के विनाश की शक्ति बनी है। इस क्रम से ब्राह्मी, वैष्णवी, और रौद्र अणुशक्ति—ये तीन प्रकार के अणु बतये गये हैं। इस गवेषणाको यदि वर्तमान अणु परीक्षण समिति आधुनिक साधनों से गम्भीर परीक्षण का प्रयत्न करे तो वर्तमान काल भी पुराण काल के सदृश वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणों में सिद्धपीठ स्थली, भूमण्डलके विभाग, पुण्यसरिता महानद्, सरोवर, भूगर्भवाहिनी नाडिया, मरुस्थली और शस्यश्यामल भूभाग आदिका वर्णन दिया है जिनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी,

वैष्णवी और रौद्री आणवी शक्ति के विषय में अनुसन्धान सफल हो सकते हैं। स्कन्द पुराण में एक राजकन्या बर्करी नामकी आई है जिसने शारीरिक निर्माण के कारणों का ज्ञान प्राप्त कर अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा बकरी मूत्र से इसी देह में सुन्दर मुखमण्डल के रूप में बदल दिया और स्वयं विधुवदना बन गई। इसके आठ भाई और एक बहिन थी। उस राजा ने समस्त देश नव विभागों में विभाजित कर प्रत्येक को एक एक खण्ड दिया था तब से नवखण्ड नामसे भारतवर्ष की रूपाति हुई। उन पृथक् पृथक् खण्डों में अनेक प्रकार के भूगर्भगत धातुओं का वर्णन है। पुराणों में केवल भूमिकी ही गवेषणा नहीं है अपितु आकाशचारी ग्रह नक्षत्रों की दूरी और उनकी गति, शिशुमार चक्र, ध्रुवस्थान आदि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन ऋतु और मास विज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में है। इसलिए पुराण ग्रन्थ भारतवर्ष की बड़ी निधि है।

गुरुमण्डल के संरक्षक मनसुखराय मोरजी ने स्मृति एवं निरुक्त का तथा पुराण ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन कर मानव जीवन की निधि जानकर गुरुमण्डल के प्रकाशन ग्रन्थों में पुराण प्रकाशन का कार्य तन, मन, धनसे प्रारम्भ कर दिया है। मोरजी के आजकल समाचार पत्रों में हिन्दी और संस्कृत के लेख पढ़ने से ज्ञात होता है कि उनकी उत्तरोत्तर विद्या प्रकाशन की प्रगति अहर्निश तीव्र भावना में है।

श्री मोरजी ने मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण और लिङ्ग पुराणको

मनन कर कितनी ही अज्ञात समस्याओं का सुचारु रूप से समाधान कर दिया है। मत्स्य पुराण से श्राद्ध कर्म (अ० १६) का यथार्थ ज्ञान अर्थात् मृतात्मा जिस योनि में हो पुरों से शास्त्र विहित श्राद्धात् उसे उस योनि की तृप्ति के पदार्थ में परिणत होकर मिलता है। अग्नि पुराण और लिङ्ग पुराण से तो उन्होंने मनुष्य हित का बहुत साहित्य एकत्रित किया है। पुराण प्रकाशन में उन्होंने सबसे प्रथम उत्पत्ति स्थिति सहार इस क्रम के अनुसार उत्पत्ति प्राधान्य ब्रह्मपुराण का प्रकाशन अग्रिम रक्खा है। संस्कृत साहित्य में आप देखेंगे प्रथम उत्पत्ति प्रकरण तत्र स्थिति अनन्तर लय। आदि कवि वाल्मीकि के योगवासिष्ठ में यही क्रम आया है।

ब्रह्मपुराण में सृष्टि क्रम से लेकर वश वर्णन, कर्तव्य वर्णन और तीर्थवर्णन अध्यात्मनिष्ठा आई है। मोरजी ने अपनी भूमिका में अति सुन्दरता से पुराण मीमांसा का वर्णन किया है। गुरुमण्डल दीन दुर्बल दुःखी जनता के सुख समृद्धि के लिए यथासाध्य कृत प्रयत्न है। इस मण्डल का प्रथम पुष्प श्रमजीवन होने से विचारवती जनता समझ सकती है कि सबसे प्रथम श्रमजीवी कृषक कुलियों की स्थिति पर विचार करना भारत का आदर्श कार्यक्रम सृष्टि के प्रारम्भ से चलता रहा है। श्रमजीवियों की तथा श्रमहीन कुलियों की स्थिति को ठीक कर देना भारतीय धर्म परम्परा से चला आया है। यहाँ से ही भूमण्डल के अन्यान्य देशों ने श्रमजीवियों से अन्याय करने का मार्ग त्याग देना सोखा

है। यथा “कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्त्तिनाशनम्” (महाभारत) यह भारत का धर्म एवं पुराणों की शिक्षा है। हम प्राणी मात्र को आशीर्वाद देते हैं कि इन पुराणों के अध्ययन से आप में दूसरी जनता के हित के भाव दैनन्दिन समृद्ध होकर संसार मात्र के मित्र बन्धु विश्वस्त होने के पात्र बनें।

पं० ब्रह्मदत्त शास्त्री एम० ए० जो गुरुमण्डल के शास्त्र प्रकाशन में श्री मोरजी के आमन्त्रण पर कार्य कर रहे हैं। पण्डित जी गुरुमण्डल के बड़े धन्यवाद पात्र है हम इन्हें आशीर्वाद देते हैं इनके अक्षुण्ण परिश्रम से जो प्रकाशन कार्य तीव्र गति से हो रहा है यह कार्य संसार की शान्ति, सुख एवं परस्पर सद्भावना का दृढ़ स्तम्भ बना रहे।

गीता जयन्ती
२०१०

} हरिदत्त शास्त्री

॥ श्रोगणेशायनमः ॥

पुराण परिचय

संसार के प्राणी मात्र इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिए दिन रात प्रयत्नशील हैं। “इष्टप्राप्यनिष्टपरिहारयो-रलौकिकमुपाय यो वेदयति स वेद” इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार का जो अलौकिक उपाय बताता है वह ही वेद है। जो व्यक्ति ज्ञान उपार्जन से संसार की सम्पूर्ण कठिनाइयों को अपनी विमल बुद्धि द्वारा निर्विघ्नता पूर्वक सरल करते जाते हैं वे पुष्टपार्थी और सफलजन्मा हैं। गंगाजल की सदा बहने वाली धारा के समान उनके पवित्र ज्ञान की वाणी संसार के प्राणी मात्र का उद्धार करती है।

ज्ञानका क्षेत्र विमल, व्यापक और अखण्ड है। ज्ञान, इच्छा एवं प्रयत्न की त्रिपुट्टीसे सत्संस्कार एवं सत्फल मिलते हैं जो वास्तवमे गौरव की वस्तु है। ज्ञानी वास्तव में धन्य है “विप्राणां ज्ञानतो-ज्यैष्ठ्यम्” (मनु० २।११५) वे लोक संग्रह की भावना से कर्तव्य कर श्रेय. साधन के ज्वलन्त उदाहरण बनते हैं। उन्हें सुख दुःख से पूर्ण इस संसार में ज्ञान रूपी खड्ग से अज्ञान एवं दुःख का नाश कर सदैव सुख प्राप्ति और आत्म लाभ का संतोष मिलता है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में निष्कारण वेद एव वेदाङ्ग का अध्ययन अवश्य कर्तव्यत्वेन बताया गया है 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः पडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' (महाभाष्य नवान्हिक) ।

भगवान् वेद इस आज्ञा के द्वारा निष्कारण पडङ्ग वेदाध्ययन को कर्तव्य कहते हैं हमारे जीवन के श्वास प्रश्वास के साथ मिला हुई इस निधि का सम्यग्दर्शन पुराण साहित्य में सुन्दरता से प्रतिपादित है ।

भारतीय जीवन से प्रेरणा लेनी ही तो भारतीयों के प्राण स्वरूप श्रुतिस्मृति के शीर्ष स्थानीय पुराणों से लेनी चाहिए । अंगेकिकपुराण साहित्य सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है । चौदह विद्यास्थानों में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इन्हें प्रथम स्थान दिया है — देसिये याज्ञवल्क्य स्मृ० प्रथ० अ० । पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रागमिश्रिता । वेदा स्थानानि विद्याना धर्मरयच चतुर्दश ॥ ३ श्लो० ।

मानव जीवन का लक्ष्य परमात्मप्राप्ति है अपने जीवन में निष्काम धर्म द्वारा त्याग वृत्ति को ग्रहण कर स्वमार्गप्रशस्ति का मुक्त साधन पुराण है । ये सर्ववेदमय सम्पूर्ण साधन, योग प्रिया सिद्धियाँ तन्त्र, मन्त्र एव फ-याण सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं ।

सम्पूर्ण शास्त्रों में पुराण साहित्य की गरिमा और प्राचानता प्रसिद्ध है ।

“पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणाम्मृतम् ।

उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम् ।

त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥

(पद्मपुराण प्रथमाध्याय)

भावार्थ :—सम्पूर्ण शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराणको ब्रह्मार्जी ने स्मरण किया यह सब लोकों में उत्तम, सम्पूर्ण ज्ञान का बताने-वाला धर्म, अर्थ, काम का साधन, परम पुण्यमय और शतकोटि विस्तारवाला है (पुराणों से प्रेरणा लेकर अनेकानेक महर्षियों ने नाना शास्त्र, स्मृति, तन्त्र, उपपुराण, ज्योतिष, मीमांसा, न्यायदर्शन, आयुर्वेद और इतिहास आदि एवं साहित्य ऋषियों ने अगणित विषयों के ग्रन्थों की रचना की। अतः नाना शाखा प्रशाखाभेद से शतकोटि विस्तारवाले पुराण हैं) ।

इतिहासपुराणञ्च गाथाञ्चोपनिषत्तथा ।

आथर्वणानि कर्माणि अग्निहोत्रकृतेऽभवन् ॥ (पद्म पु०)

इतिहास, पुराण, नाराशंसी आदि गाथा उपनिषद् और आथर्वणिक कर्म अग्निहोत्र करनेवालों के लिये हुए ।

पुराणों के सम्यन्ध में और भी वचन उपलब्ध होते हैं :—

ऋच सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जिरे सर्वं दिवि देवादिवृष्टिता ॥

(अथर्ववेद ११।७।२४)

भाष्यम् :—ऋचः पादयद्वा मन्त्राः सामानि गीत विशिष्टा मन्त्राः । छन्दांसि गायत्र्युष्णिगादीनि चतुरक्षराधिकानि सप्तसङ्ख्याकानि पुराणं पुरातनवृत्तान्तकथनरूपमाख्यातम् यजुषा यजुर्मन्त्रेण सह । उच्छिष्टात्—उच्छिष्यमाणात् ग्रहणः सकाशात् जत्रिरे आविर्भूताः ।

यज्ञ से यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण हुए। सुगोपनीयवेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम्—(ब्रह्म वै० ३ अध्याय) वेदों में सुगोपनीय और पुराणों में दुर्लभतत्त्व हैं।

वेदेषु च पुराणेषु हरि सर्वत्र गीयते। (मत्स्य०)

वेदों और पुराणों में भगवान् हरि की प्रशस्ति सर्वत्र गई गई है इस से स्पष्ट है कि वेद और पुराणों का तादात्म्य है।

शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण है —

स यथाद्रिधामनेरभ्याहितात्पृथग् धूमा विनिश्चरन्त्येव वा अरेऽस्य महतो भूतस्य नि ष्वसितमेतद्गवेदो यजुर्वेद सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोका सूत्राण्यनु व्याख्यातानि व्याख्यानान्यस्यैतानि सर्वाणि नि ष्वसितानि।

(बृहदारण्यक उपनिषद् २।४।१०)

यथाऽप्रयत्नेनैव पुरुष नि श्वासो भवत्येवमेव। भगवति श्वास के रूप में भगवत्स्वरूप प्रतिपादन विरारु विश्वरूपदर्शन पुराणों की विशेषता है यही पुराण और वेदों की एकताक्यता है।

शतपथ ब्राह्मण १३ अ० ४ ३।६ में पुराण वेद सीऽयमिति “चिद्विपुराणमाश्रानैवमेवाध्वयु” यह कर वेद हा पुराण है यह प्रतिपादित है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में पुराणों का व्याख्याय ध्वस्य षतंध्वयेन निरूपण किया है।

आशातरात्रादायुष्मता यथा षतंध्वन्तो माहूत्यानीतिहास पुराणानीत्याप्यापयमानस्त ग्रहणम्।” ४।१।

मनुजी ने विशेषरूप से उसे स्पष्ट किया है —

स्वाध्यायं श्रावयेन् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
ब्राह्म्यानातीतिहासाश्च पुराणानिखिलानि च ॥

३ अध्याय—२३२

पित्र्युद्देश्यक स्वाध्याय कर धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास और सम्पूर्ण ब्राह्मणों को इस अक्षर पर सुनाओ । पुराणों का कथन वेद के समान ही अप्रतर्क्य है —

पुराणो मानयो धर्म साङ्गो वेदश्चिकित्सक ।
श्राद्या सिद्धानि चत्वारि न कर्तव्यानि हेतुमि ॥

ब्रह्मोक्त्याद्ययम्व्य संहिता १—४७ ।

पुराण, मानव धर्म, साङ्ग वेद, चिकित्सा शास्त्र ये आदि काल से सिद्ध हैं इन्हें कुतर्कों से दूषित नहीं करना चाहिए ।

पुराण वेदों के समान ही प्राचान है ।

पुराण सर्व शास्त्राणा प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्च चक्रैर्म्यो वेदास्तम्य चिनिर्गता ॥

मत्स्यपुराण ७३—१

भारतीय सस्कृति के रक्षक के रूप में इनका स्वाध्याय मनन और उपदेशानुसार आचरण सदा ही इष्ट फल को देनेवाला है ।

वेदाश्च सेतिहासाश्च पुराणा देवतागणा ।

भूधरा सागरा सर्वे पूजनीया समन्तत ॥ पद्मपुराण ।

वेद, पुराण, इतिहास, देवतागण, परंत और सागर इनकी सदा ही पूजा करनी चाहिये ।

याज्ञवल्क्य स्मृति १ अध्याय ४५ श्लोक में आया है :—

वाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्च गाथिकाः ।

इतिहासांस्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥

प्रति दिन वाक्योवाक्य आपस में वार्तालाप पुराण, नाराशंसी गाथा, इतिहास आर अन्य सभी विद्याओंका यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिये । (इस से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि प्रथम ज्ञानार्जन में ऊहापोहमूलक वार्तालापसे स्थिर सिद्धान्त पुराणका प्रतिपादन होता है नाराशंसी गाथा, यज्ञविधान, इतिहास और विद्याओं का तदनन्तर निरूपण है जो भारतीय साहित्य परम्परा में अद्वितीय है) संक्षेप में पुराण का महत्त्व अतुलनीय है :—

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।

नानाश्रुतिसमायुक्तं नाम्स्तिकाय न कीर्तयेत् ॥

मत्स्य पुराण १४७ ८५

यह पुराण परमपुण्यमय, वेदार्थयुक्त, नानाश्रुतिसमवेत है, इसे नाम्स्तिक लोगों को न सुनावे ।

शृणुष्यादि पुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् । मत्स्य २६३—१४

आदि पुराणों में और वेदों में अलौकिकतत्त्व प्रतिपादित है ।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि पुराण चतुर्दिक् प्राण है प्रथम परमपिता परमान्मा के निश्वास भूत प्राण हैं, वेदों के ये प्राण हैं । सम्पूर्ण प्राणियों के उद्धारार्थ इनका आविर्भाव हुआ इसलिये सारे प्राणियों के प्राण हैं और सम्पूर्ण ज्ञान का मन्थन रूप स्वर होने से उसके भी प्राण ये पुराण हैं ।

ज्ञान, कर्म, अभ्यास एवं ध्यान सभीका संश्लेषमें बहुत महत्त्वपूर्ण वर्णन इनमें है। जीवन के जितने सैद्धान्तिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण हैं उनका पुराण विगडीकरण कर संसार का महान् उपकार साधन किया है।

जीवन की दुविधा कष्ट एवं दुःखों को रोकने का सरल उपाय बताने वाले पुराण हैं इनसे आयालवृद्ध शूद्रादि नर नारी समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। भवभोग का यह अमोघ रसायन है। सम्पूर्ण समस्याओं को सरल उपाय से मुलभानेवाली यह अद्वितीय समाधानकारक प्रह्वराशि भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव की सहज कृपा का फल है। संसार ताप से प्रताडित लोगों को सान्त्वना, अन्धकारमें पड़े हुए को प्रकाश, भूले भटकों को सन्मार्ग, निराश लोगों को आशा की ज्योति देने वाले, शोक उद्वेग से पीडित जनों को उल्लासमय प्रसाद, फर्नव्य विमुक्त को कर्तव्यज्ञान, पापियों के पाप नाश का सहज साधन, राजनीति विशारदों को नीति शिक्षा, निष्काम कर्मियों को साधन उपदेश, भक्तों को भक्ति का मार्ग और ज्ञानियों को दिव्य मार्ग का प्रकाश ये पुराण देते हैं।

संक्षेप में, जो जिज्ञासु जिस उच्च लक्ष्य से इनमें श्रद्धा चिन्वास पूर्वक मनोयोग देकर स्वाध्याय करता है वह एक चतुर गोतापोर के समान अनन्त राशि की पान समुद्र में से अमृत्य रत्न निकाल कर अपना उद्देश्य पूर्ण कर नेता है वैसे ही यदेच्छज्ञान की तृप्ति और लोक कल्याण की भावना इन महापुराणों की आवृत्ति और

अमूल्य शिक्षाओं के आचरण से उद्बुद्ध हो जाती है। यदि अतीत के गौरव को प्राण बतलाते हैं तो वर्तमान के निर्माण और भविष्य को कृति के लिये उनका महत्त्व कम नहीं है। सम्पूर्ण प्राणियों को शाश्वत सुख और शान्ति का वरदान देकर विपत्तिग्रस्त, कलह क्लेश से दुःखित, सन्देह एवं अविश्वास की सशक्त पाश में जकड़े प्राणियों को मुक्ति सन्देश देते हैं। भवरोग से ग्रस्त जनता के उद्धारार्थ पुराण हा एक मात्र शरण है।

साधना के मार्गों में ज्ञान, कर्म, भक्ति और उनके विविध भेदों के साथ कठिनता से प्राप्य और सुलभता से गम्य कई लक्ष्य भेदोपभेदोंके साथ बने हैं उन सबका निबन्धन पुराणों में है। इसके साथ ही सभी श्रेणी एवं वर्ग के व्यक्तियों के लिये उनके अधिकारानुसार अलग २ जीवन में उतारने योग्य सन्मार्ग साधन, उनमें आने वाले विघ्नों और उनसे छुटकारा पाने का बड़ा ही सुन्दर और रोचक उपाय प्रतिपादित किया गया है। जंघन और जगत् के परिपूर्ण स्वरूप की प्राप्ति अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि की प्राप्ति में जीव मात्र का कल्याण साधन कर मानव आगे बढ़ कर परमात्मतत्त्व का योग्य अधिकारी कैसे बन सकता है इन सब का सुन्दर साधनों और शाश्वत चिरन्तन सत्य उपदेशों से परिपूर्ण इतिहास से युक्त विषयों का पुराणों में विशद निरूपण है।

पुराण में प्रतिपादित सर्ग, प्रति सर्ग, वश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित इस पञ्चाङ्ग से सृष्टि में अनादि काल से चले आते

ये पुराण सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के हैं। सात्त्विक में विशेष भगवान् हरि का, राजस में ब्रह्माजी का और तामस पुराणोंमें शिव और अग्नि का माहात्म्य वर्णन है। पितरों और सरस्वती का सर्वत्र ही वर्णन मिलता है। अठारह पुराणों के रचयिता भगवान् व्यासजी हैं।

पुराण मानव के ऐहिक आमुष्मिक लोककल्याण साधन के सच्चे मार्गदर्शक हैं। एक ओर जहां सृष्टि की नियमावली का यथार्थ परिदर्शन करने के लिये श्रुति का अनुगमन करती हुई स्मृतियां हमारे लिये विधान निर्माण करती हैं तो अनादिकाल से जीवन में होती आई अपूर्णता के फलस्वरूप भूलों से मानव को बचाने के लिये पुराण सफल ज्ञानचक्र हैं। इनमें आख्यान, उपाख्यानों द्वारा मानव जाति का मार्ग प्रशस्त करने के लिये व्यासजी की त्रिकाल अबाधित सत्य की अनुभूति पूर्णज्ञान के फलित सत्य इन पुराणों से संसार का कितना महान् उपकार हुआ है यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

सुतराम्, भारतीय जीवन में पुराणों का महत्त्व निर्विवाद है यह भगवन्निःश्वास रूप वेदों के समान ही प्राचीन तथापि चिरनवीन और चिरन्तन सत्य की अनुभूतियों का चरम उत्कर्ष बताने वाले सिद्धान्त ग्रन्थ हैं—पुरे अग्रे अनति गच्छति इति पुराणम्। मानव को मार्ग दर्शन करने के लिये आगे चलाने वाले साहित्य का नाम पुराण अन्यर्थ है।

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है :—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज ।
 न चेत्पुराणं सम् विद्यान्नेव स स्याद्विचक्षण ॥
 यस्मात्पुराह्यनकीद पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
 निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापै प्रमुच्यते ॥

अध्याय—१

भावार्थ —

जो द्विज चारों वेदों को जानता है और साङ्गोपाङ्ग विद्याओं में पारङ्गुत है यदि पुराण का उसे ज्ञान नहीं तो वह विद्वान् नहीं हो सकता । सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश करने से इनकी पुराण सज्ञा हुई । इसका जो निर्वचन जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं ।

अनादि नित्य और शाश्वत होने से अनादि चिरन्तन शाश्वत तत्त्व का ही प्रतिपादन इनकी विशेषता है । सर्व साधारण की चतुर्दिक् विकसित उन्नति और आभ्युदयिक निःश्रेयस् साधन सम्पत्ति के ये अक्षय भण्डार हैं । आप की जैसी रुचि, श्रद्धा एवं निष्ठा होगी वैसी ही रत्न निधि आपको प्राप्त होगी । ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, सयम, यम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रम धर्म, राज धर्म, मानवधर्म, व्यक्ति धर्म, स्त्री धर्म, सदाचार और नाना श्रेणियों के पुरुषों के विभिन्न कल्याणकारी उपदेश सुन्दर सरल और उपादेय भाषा में

इनमें लिखे गये हैं । इससे ऊपर पुराण, प्रकृति, महत्तत्त्व, प्रकृति, विकृति, भूगोल, खगोल, ऋषि, मुनि वंशों का घर्णन, राजवंश तथा स्थावर जड़म सृष्टि का बहुत सुन्दर रीति से सूक्ष्म विवेचन किया गया है ।

इस आदिपुराण ब्रह्मपुराण को आप महानुभावों के कर-कमलों में उपहार प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्द होता है ऊपर प्रतिपादित ये सभी विषय आख्यान रूपमें इस महापुराण में आये हैं ।

मत्स्य महापुराण को ५३ वीं अध्याय में पुराणों का परिगणन करते हुए जो विवरण दिया गया है वह विशेष रूपसे प्रयोजनीय है अतः उसका आवश्यक अंश यहां प्रस्तुत किया जाता है :—

पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।
 नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
 ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
 ब्राह्मन्त्रिदश साहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ।
 एतदेव यदापद्मभूद्धैरण्मयं जगत् ।
 तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
 पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते ।
 धाराह कल्प वृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
 यथाह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवम्बिदुः ।
 त्रयोविंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्वुधाः ।
 श्वेतकल्प प्रसङ्गेन धर्मान् धायुरिहाब्रवीत् ।

यत्र तद्वायवीर्यस्यात् स्द्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
 चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।
 यत्राधि कृत्य गायत्रीं घर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
 वृत्रासुरघोषेतं तद्भागवतमुच्यते ।
 सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः ।
 तद् वृत्तान्तोद्भवंलोके तद्भागवतमुच्यते ।
 अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रचक्षते ।
 यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पाश्रयाणि च ।
 पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।
 यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा ।
 व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ।
 मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरैण तु ।
 पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।
 यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
 षशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमग्नेयं तत्प्रचक्षते ।
 तच्च षोडशसाहस्रं सर्वकतुफलप्रदम् ।
 यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखाः ।
 अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम् ।
 मनवे कथयामास भूत ग्रामस्य लक्षणम् ।
 चतुर्दश सहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
 भविष्य चरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ॥
 रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।

सावर्णिर्नानारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
 यत्र ब्रह्म घराहस्य चोदन्तं घर्णितं मुहुः ।
 तदष्टादश साहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥
 यत्राग्नि लिङ्गं मध्यस्थं प्राहदेवो महेश्वरः ।
 धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ॥
 कल्पान्तैर्लैङ्गमित्युक्तं पुराणब्रह्मणास्ययम् ।
 तदेकादश साहस्रम् ।

महावराहस्यपुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
 विष्णुनाभिहितंक्षौण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥
 मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमा ।
 चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ।
 यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्यच पण्मुख ।
 कल्पेतत्पुरणंवृत्तं चरितैरूपवृंहितम् ।
 स्कंदनाम पुराणञ्च ह्येकाशोतिनिगद्यते ।
 सहस्राणिशतञ्चैकमितिमर्त्येयुगद्यते ।
 त्रिविक्रमस्यमाहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुख ।
 त्रिवर्गमभ्यधात्तच्च धामनं परिकीर्तितम् ।
 पुराणं दशसाहस्रं कूर्म कल्पानुगं शिवम् ।
 यत्र धर्मार्थकामाना मोक्षस्य च रसातले ।
 माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दन ।
 इन्द्रद्युम्न प्रसङ्गेन प्रवृत्तिभ्यः शकसग्निधौ ।
 अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मी कल्पानुपद्विकम् ।

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः ।
 मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम् ।
 अधिकृत्याग्रवीत्सत कल्पवृत्तं मुनीश्वराः ।
 तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश ।
 यदा च गारुडेकल्पे विश्वाण्डाद्गारुडोद्भवम् ।
 अधिकृत्याग्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ।
 तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीहपश्यते ।
 ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याग्रवीत्पुनः ।
 तच्च द्वादश साहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ।
 भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।
 तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
 चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुत कर्मणा ।
 उपमेदान्प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः ।
 पाद्मे पुराणे तत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम् ।
 तच्चाष्टादश साहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ।
 नन्दाया यत्र माहात्म्यं फार्तिकेयेन वर्ण्यते ।
 नन्दी पुराणं तल्लोके राक्ष्यातमितिकीर्त्यते ।
 यत्र शाम्भं पुरस्कृत्य भविष्येऽपिकथानकम् ।
 प्रोच्यते तत्पुनर्लोके शाम्भमेतन्मुनिश्रिताः ।
 पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।

उपरि वर्णित विवरण में ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव,
 (वायु) देवीभागवत, (भागवत) भविष्य, नागद, मार्कण्डेय,

ब्रह्मवैवर्त, अग्नि, लिङ्ग, वराह, धामन, मत्स्य, कूर्म, स्कन्द, गरुड़ और ब्रह्माण्ड इन अठारह पुराणों में आये हुए उनके प्रतिपाद्य विषयों का संक्षेप में प्रतिपादन है।

महा पुराणा के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं पाठकों की सेवा में धामन पुराण का एक प्रचलित श्लोक प्रस्तुत है जिसमें आद्याक्षर से अठारहों पुराणों का पूर्ण ज्ञान हो सकता है।

मद्वयं भद्रयंचैव ब्रत्रयं च चतुष्टयम्

अनापलिङ्गं कृस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ।

म द्वयम् = मार्कण्डेय एवं मत्स्य ।

भ द्वयम् = भागवत एवं भविष्य ।

ब्र त्रयम् = ब्रह्म, ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्म वैवर्त ।

च चतुष्टयम् = विष्णु, वराह, धामन तथा वायु ।

अ = अग्नि । ना = नारद, प = पद्म ।

लि = लिङ्ग । ग = गरुड़ । कृ = कूर्म और स्क = स्कन्द ।

कुछ पिद्दहृन्द महा पुराण, उप पुराण, अतिपुराण और पुराण भेद से अठारह अठारह संप्रिया मानते हैं। उनके अनुसार महा पुराण ये हैं :—

ब्रह्म, पद्म, शिष, विष्णु, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, धामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड ।

उप पुराण :— भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिश्वर, रामच, कालिका, धारण, औशनस,

मानव, कापिल, दुर्वासस्, शिव धर्म, बृहन्नारदीय, नारसिंह, सनत्कुमार ।

अति पुराणः— कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वशिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी ।

पुराण.— बृहद्विष्णु, शिव उत्तर खण्ड, लघु बृहन्नारदीय, मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, धामन, बृहद्ब्रह्म, बृहन्मत्स्य, स्वल्पमन्स्य, लघु वैवर्त और ५ प्रकार के भविष्य ।

मेरी तुच्छ बुद्धि में पुराणों के सम्यन्ध में इस प्रकार के ऋम का जं भी रूप रहे फिर भी इतना स्पष्ट है कि न्यूनाधिक रूपमें एक या दूसरी सूचीमें सभी पुराणों का इसमें समावेश होगया है ।

समुद्र मन्थन के समय चतुर्दश रत्नों की प्राप्ति उन महामहिम देवासुरों को हुई यह प्रसिद्ध है परन्तु इन पुराणों के अवगाहन से बहुमूल्य असंख्य रत्नों की प्राप्ति होती है यह ध्रुव सत्य है । पुराणों में माहात्म्य कथाओं के प्रसङ्ग में नाना इतिहास और व्याख्यान उपलब्ध हैं जो महत्त्व पूर्ण हैं । प्रसङ्गानुसार इतना अधिक व्यापक विषयों का समावेश हुआ है कि ध्यान पूर्वक स्वाध्याय करने से एवं उन्हें आचरण का रूप देने से आदर्श जीवन बनाने की प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है इस महान् ज्ञान निधि को विश्वम्भर का शब्दकोश (Encyclopedia) कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं । पुराणों की विषय सूची इतनी व्यापक है कि उन्हें यहा देना इस छोटे से लेख के कलेवर में सम्भव

नहीं है। हाँ, हम नाना पुराणों को मुख्य २ विषयानुक्रमणिका को तत्तत्स्थानों से उद्धृत कर अलग से पाठक महानुभावों के अवलोकनार्थ दे रहे हैं। आशा है, इसको अविकल पढ़ कर विद्वद्वृन्द विषय व्यापकता से उत्साहित होकर सम्पूर्ण पुराण साहित्य के अध्ययन से संसार का हित सम्पादन करेंगे।

अधिकन्तु, तन्त्र मन्त्र इन्हीं के अन्तर्गत हैं। वैद्यक शास्त्र के सभी विषय गरुड पुराण अग्नि पुराणादि सभी मुख्य पुराणों में पाये जाते हैं। दर्शन, विज्ञान, राजनीति तो सभी का क्रमबद्ध प्रतिपादित विषय है। आध्यात्मिक साधना के लिये स्तोत्र, कवच, एवं सहस्रनाम आदि पुराणों में उपलब्ध है। वेदो एवं पुराणों में प्रकृति (पृथ्वी) को गाया है। वेदों में सश्वरूप से (नारा-शंसी गाथा-यज्ञगाथा) का निरूपण किया है तथा पुराणों में अधिष्ठात्री देवी प्रकृतीश्वरी का विशदीकरण किया है, एवं महर्षियों ने स्मृतियों में इसी आधार पर व्यवहार मार्ग की प्रसस्ति गाई है। वेद, वेदाङ्ग, पुराण एवं स्मृतियों को धर्म-शास्त्र कहा है। ये शाश्वत सत्य हैं। इनके निरन्तर श्रवण मनन एवं निधिध्यासन करने से अपना कल्याण है।

इसके साथ साथ जो विवरण भू वृत्तान्त के सम्यन्ध में आया है उसमें तीर्थ प्रधान वर्णन होने से गवेषणा और अनु-सन्धान कर्ता महानुभावों को पूर्ण सहायता मिल सकती है।

सम्पूर्ण पुराणों में प्रथम यह ब्रह्म पुराण आदिकल्प का है इसीलिये सुमेरु स्थायी है। आज की विघटित दुरवस्थाओं

का सकेत युगधर्मों के प्रकरणों के पढ़ने से दर्पण में प्रतिबिम्बित दर्शक रिम्म के समान स्पष्ट ज्ञान होता है ।

इसके साथ की लगी विषयसूचि का निर्माण इसी उद्देश्य से परिश्रम पूर्वक किया गया है कि विद्वज्जनों की तुलनामें संस्कृत के प्रति प्रेम रखते हुए भी संस्कृत भाषा का लाम न उठाने वाले पुराण प्रेमी महानुभाव इसके विषय ज्ञान से घञ्चित न रहें बल्कि इस सूचि से प्रभावित होकर अधिक संस्कृत की ओर आकर्षित हो अपने संस्कृत के अध्ययन को बढ़ा कर कृतकार्य हों ।

अपने गत दर्शकों के दिन प्रति दिन के श्रुति स्मृति एवं पुराणों के स्वाध्याय से मुझे जीवन की गरिमा बढ़ानेवाले तत्त्वों और उसे उच्चस्तर पर ले जाने वाले क्रिया कलापों को हृदयङ्गम करने का सुभवसर मिला है । मैं इनका स्वाध्याय करता हुआ अघाता नहीं हूँ जय जय अपने स्वाध्याय कालमें मैं इन ग्रन्थरत्नों को देखता हूँ तो चिरन्तन तथ्य सार्वजनीन लोककल्याण के लिये प्रतिपादित इनके विषय मुझे अधिकाधिक आकर्षित करते हैं । मैं इन्हें हृदय से लगा लेता हूँ । फिर दुःख भी होता है कि भारत की इतनी अमूल्य निधि भारतीयों के पास रहते दैन्य, अभाव, और दुर्दशा, कलह आदि जहा समूल नष्ट होने चाहिए वहा वे अपनी जड़ हमारे समाज में इतनी गहरा जमा चुके हैं कि इनसे छुटकारा कठिन सा हो रहा है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि के इन प्राणों का व्यापक रूप में प्रचार होने से ही समूल चुराइया नष्ट हो सकती है ।

मेरी सभी महानुभावों से यह विनम्र प्रार्थना है कि इनमें प्रतिपादित वस्तु तत्त्व को हृदय की विशालता व्यापक दृष्टिकोण और सत्य शिव तथा सुन्दर को रचना के उद्देश्य से अनुशीलन करने का प्रयत्न करें इसी में हम लाभान्वित होकर अपना और अपने आत्मोपजन एवं सृष्टि का कल्याण कर सकते हैं ।

अपने जीवन की अनुभूतियों को साकार रूप देनेवाली महती ज्ञान देवता को पूजा अहनिश स्वाध्यायके रूप में हो (स्वाध्यायान्मा प्रमद) इसी लक्ष्य से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के नवम पुष्प के रूप में सम्पूर्ण स्मृतियों का संग्रह प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है आशा है शताधिक संख्या में प्राप्त इन स्मृतियों को हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपियां उपलब्ध हो जाने से जीवन को प्रेरणा और स्फूर्ति देनेवाला महर्षि कल्प उन प्रातः स्मरणीय प्राप्त पुरुषों का मान्य निर्णय संसार को मार्ग दर्शन के लिये मिलेगा । आप महानुभावों की शुभाशोः तथा भूतभावन भगवान् विश्वनाथ के कृपाद्र कटाक्ष से सफलतापूर्वक प्रकाशित कर प्रस्तुत की जायगी ऐसी आशा है ।

वेदों और पुराणोंका स्वाध्याय हम भारतीयों के अध्ययन एवं पाठ्यक्रम से कितना दूर हो गया है यह सभी महानुभावों को विदित है । इसीका यह दुष्परिणाम है कि विश्व के उपदेष्टा वेदमार्ग प्रवर्तक भारत के गौरव ऋषिमहर्षियों की सन्तान होकर भी हम भारतीय नैतिक स्तर से नीचे गिरते जा रहे हैं और हमारी पतनाचरथा चरम सीमा को पार कर गई है ।

इनके पठनपाठन क्रम का श्री गणेश निरुक्त जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न से कर शनै २ इसके विशद अध्ययन से सारे विश्व को ज्ञान सूर्य का प्रकाश मिले और अज्ञानान्धकार से जर्जर विश्व को महती प्रेरणा मिले इसी उद्देश्य से गुरुमण्डल के दशम पुष्प के रूप में आप महानुभावों को निरुक्त का उपहार प्रस्तुत किया है। हमारी यही एक अमर अभिलाषा है कि सम्पूर्ण वेदनिधि का अत्रिकल प्रकाशन कार्य कोई उदारमना शास्त्रव्यसनी महानुभाव लें तो विश्व का एक बड़ा भारो अभावपूर्ण होगा। इस महान् ग्रन्थ को पुराण प्रेमी शास्त्रैकाध्यायी विद्वज्जनों की सेवामें उपस्थित कर यह प्रार्थना करते हैं कि आप लोग वेदवेदाङ्गादि के अध्ययन अध्यापन क्रम को पुनरजीवित कर स्वतन्त्र भारत के उत्थान काल में प्रातः स्मरणीय आर्ष ज्ञान की उत्कृष्ट विभूतियाँ उन ऋषियों को अपनी सच्ची श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर हमलोगों के इस प्रयास को सफल करेंगे।

मनुष्य ने अनादि काल से यावन्मात्र प्राणियों के उद्धार का प्रण लिया हुआ है इस दिशा में उसके लिये श्रुति स्मृति जो सृष्टि की नियमावली है और पुराण जो उसके उपबृंहक हैं वे सदा से ही दृढ आधार शिला पर निर्मित प्रकाशस्तम्भ का काम करते हैं। आज की महती अनर्थ परम्परा में विपरीत अवस्थाओं का कटु अनुभव करता हुआ मनुष्य जो निराशा, अशान्ति और सवर्ष के थपेडों से दुःखी हो रहा है उसका समाधान ये पुराण हैं। मेरी मान्यता है कि इस निराशापूर्ण घाताघतण में आशा

भूमिकालेखन व शोधन कार्य में तथा श्री पं० फजोड़ीलालजी मिश्र एवं पं० श्री रामनाथजी दाधीच साहित्य शास्त्री का प्रोफ कार्य संशोधन में पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है. उन्हें अपने अभिन्न अङ्ग के नाते किसी प्रकार का धन्यवाद प्रदान करना शिष्टता के विरुद्ध है। श्रीपरमपूज्य राजगुरुजी हरिदत्तजी शास्त्री विद्यालङ्कार विद्यारत्न के सञ्चालकत्व में यह सय होने से उनकी विभूति एवं आशीर्वाद का ही फल है। आपने पुराण महिमा लिख हमें उत्साह एवं कर्तव्य पथ की प्रेरणा दी है। अन्त में मैं आप सभी महानुभावों का हृदय से आभार प्रदर्शन करता हुआ इस ज्ञान राशि के प्रचार का स्वाध्याय द्वारा पुण्य लाभ करने की करवद्ध प्रार्थना करता हूँ।

आशा है आप सभी उदारराशय आपेक्षिक अपूर्णता की उपेक्षा बुद्धि से क्षमा कर इस परिश्रम को सच्चे अर्थों से सफल बना हमें कृतमृत्य करंगे।

कलकत्ता—
गीता जयन्ती
मार्गशीर्ष शुक्ल
११/२०१०

कृपाभिलाषी
मनसुखराय मोर

का अज्ञानान्धकार में ज्ञानालोक का जीघन में अपनी कर्मण्यता की समाप्ति समझने वाले पुरुष को पुरुषार्थ का यहाँ तक कि संसारमें जो कुछ असत्, अविवेक, अविद्या, अज्ञानादि रूपी अन्धकार है उनसे छुटकारा दिलानेवाला यह महातन्त्र है बलिक तारकमन्त्र है। अस्त्रों से विश्व को अहिंसा, सत्य, और प्रेम और शान्ति का सन्देश दीजिये।

गत चैत्र मास में नवरात्रों के पूर्व जयसे पुराण पारायण में श्री मोर ग्रन्थानुसन्धान समिति की पण्डित मण्डली ने समय देना आरम्भ किया तो मुझे ऐसा लगा कि इनका अविकल दोहन कर अपने जीवन को कृतकृत्य करना हम भारतीयों का प्रधान कर्तव्य है। उसी समय इसके प्रकाशन का संकल्प अङ्कुरित हुआ और ब्रह्मपुराण के प्रकाशन का बीज उसी में निहित है जो पुष्पित एवं पल्लवित रूप में सेवा में उपस्थित है।

मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि उसे शीघ्रातिशीघ्र गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के एकादश पुष्प के रूप में आप महानुभावों की सेवा में प्रस्तुत करूँ इतने अल्प समय में शीघ्रनावश जो कुछ त्रुटियाँ प्रेस के कर्मचारियों तथा कार्यकर्तृवृन्द की अनवधानता से रह गई हैं उन्हें कृपालु विद्वद्वृन्द सुधारने को उदारता दियेला कर शृपा करें।

इस महत्कार्य में आरम्भ से ही श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी भूतपूर्व अध्यक्ष श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम संस्कृत कालेज लक्ष्मणगढ़ एवं भूत० सहायक सञ्चालक राजरघान पुरातत्व मन्दिर जयपुर का

भूमिकालेखन व शोधन कार्य में तथा श्री पं० कजोडीलालजी मिश्र एव पं० श्री रामनाथजी दाधीच साहित्य शास्त्री का प्रूफ कार्य संशोधन में पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें अपने अभिन्न अङ्ग के नाते किसी प्रकार का धन्यवाद प्रदान करना शिष्टता के विरुद्ध है। श्रीपरमपूज्य राजगुरुजी हरिदत्तजी शास्त्री विद्यालङ्कार विद्यारत्न के सञ्चालकत्व में यह सब होने से उनकी विभूति एवं आशीर्वाद का ही फल है। आपने पुराण महिमा लिख हमें उत्साह एवं कर्तव्य पथ की प्रेरणा दी है। अन्त में मैं आप सभी महानुभावों का हृदय से आभार प्रदर्शन करता हुआ इस ज्ञान राशि के प्रचार का स्वाध्याय द्वारा पुण्य लाभ करने की करवद्ध प्रार्थना करता हूँ।

आशा है आप सभी उदारशय आपेक्षिक अपूर्णता की उपेक्षा बुद्धि से क्षमा कर इस परिश्रम को सच्चे अर्थों से सफल बना हमें कृतकृत्य करेंगे।

कलकत्ता—
गीता जयन्ती
मार्गशीर्ष शुक्ल
१२।२०।१०

कृपाभिलाषी
मनसुखराय मोर

द्वीपानाञ्चैष सिन्धूनां वर्षाणाञ्चाप्यशेषतः ।
 वर्णनं यत्र पातालस्थर्षाणाञ्च प्रदृश्यते ।
 नरकाणां समाख्यानं सूर्य्यस्तुतिकथानरम् ।
 पार्वत्याश्च तथा जन्म विद्याश्च निगद्यते ।
 दक्षाय्यानं ततः प्रोक्तमेकान्नक्षेत्रवर्णनम् ।
 पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणम्याम्य मानद ! ॥”

तदुत्तरभागे—

अभ्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम् ।
 विस्तरेण समाख्यातं तीर्थयात्राविधानतः ॥
 अत्रैव कृष्णचरितं विस्तरान् समुदीरितम् ।
 वर्णनं च स लोकाभ्यं पितृभ्रातृपिपिस्तथा ॥
 वर्णाधमाणां धर्माश्च फोर्त्तिता यत्र विस्तरान् ।
 विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम् ॥
 योगानां च समाख्यानं सांख्यानानाञ्चाऽपि वर्णनम् ।
 प्रववाद्समुदेशं पुराणस्य च संशानम् ।
 एतद् द्वादपुराणन्तु भागद्वयसमानितम् ॥
 वर्णितं भयं पापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥

तत्कालश्रुतिः—

सृष्टौ नष्टमन्वाद् भुवि श्रुतिप्रदायकम् ।
 त्रिपिन्धीतपुराणं यो वैशाख्यां हेमसंयुतम् ॥
 अल्पेन्युक्तश्रावि भवत्या दद्याद् द्विजातये ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अष्टादशपुराणानां विषयानुक्रमणिका प्रारम्भ्यते ।

॥ श्रीः ॥

ब्रह्मपुराण



वेदव्यास प्रणीते महापुराणादि तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च
बृहन्नारदीये ४ पा० ६२ अ० उक्ता यथा—
ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय वै ।
व्यासेन वेदचिदुपा समाख्यातं महात्मना ॥
तद्वै सर्वपुराणाग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते ॥
तत्पूर्वभागे—

“देवानामसुराणाञ्च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्तिता ।
प्रजापतीनाञ्च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ! ॥
ततो लोवेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः ।
वंशानुकीर्त्तनं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥
तत्रावतारः कथितः परमानन्दरूपिणः ।
श्रीमती रामचन्द्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ।
ततश्च सोमवंशस्य कीर्त्तनं यत्र वर्णितम् ।
ऋषणस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ।

द्वीपानाञ्चैव सिन्धूनां वर्षाणाञ्चाप्यशेषतः ।
 घर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणाञ्च प्रदृश्यते ।
 नरकाणां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम् ।
 पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ।
 दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाग्रश्रेत्रघर्णनम् ।
 पूर्वभागोऽयमुद्धित पुराणस्यास्य मानद ! ॥”

तदुत्तरभागे—

अस्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमघर्णनम् ।
 विस्तरैण समाख्यात तीर्थयात्राविधानत ॥
 अत्रैव कृष्णचरित विस्तरात् समुदीरितम् ।
 घर्णनं मम लोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा ॥
 घर्णाश्रमाणा घर्माश्च कीर्त्तिता यत्र विन्तरान् ।
 विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च घर्णनम् ॥
 योगानां च समाख्यानं साख्यानाञ्चाऽपि घर्णनम् ।
 ब्रह्मवादसमुद्देश पुराणस्य च संशतम् ।
 एतद् ब्रह्मपुराणन्तु भागद्वयसमाचितम् ॥
 वर्णितं सर्वं पापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥

तत्फलश्रुति :—

सूतशौनकसम्वाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
 लिखित्वैतन्पुराणं यो वैशाख्या हेमसंयुतम् ॥
 जलधेनुयुतञ्चापि भक्त्या दद्याद् द्विजातये ।

पौराणिकाय सम्पूज्य घन्त्रभोज्यविभूषणै ॥
 स वसेद् ब्रह्मणोलोके याचच्चन्द्रार्कतारकम् ।
 य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ब्रह्मानुकमणीं द्विज ।
 सोऽपि सर्वपुराणस्य श्रोतुर्वक्तुं फल लभेत् ।
 शृणोति य पुराणन्तु ग्राह्यं सर्वं जिनेन्द्रिय ।
 हविष्याशो च नियमात् स लभेद् ब्रह्मण पदम् ।
 किमत्र बहुनोक्तेन यद् यदिच्छति मानव ।
 तत्सर्वं लभते वत्स पुराणस्यास्य कार्त्तनात् ।

पद्मपुराण

तत्स्थं त्रिपयाणाम्प्रतिपादनम् नारदीयपुराणे उक्तं
 यथा :—

प्रथमे सृष्टिसण्डे •—

“पुलस्त्येन तु भोष्माय सृष्ट्यादि क्रमतो द्विज ।
 नानात् यानेति हासाद्येयत्रोक्तो धर्मविस्तरः ।
 पुष्करस्य च माहात्म्यं विस्तरेण प्रकीर्तितम् ।
 ब्रह्मयज्ञविधानञ्च वेदपाठादिलक्षणम् ।
 दानानां कीर्त्तनं यत्र वृत्तानाञ्च पृथक् पृथक् ।
 विवाहं शैलजायाञ्च तारकारयानकं महत् ।
 माहात्म्यञ्च गवादीनां कीर्त्तितं सर्वपुण्यदम् ।

कालकेयादि दैत्यानां वधो यत्र पृथक् पृथक् ।
 ग्रहाणामर्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम ॥
 तत्सृष्टिस्रण्डमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना ।

द्वितीये भूमि स्रण्डे :—

पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरः ।
 सुप्रतस्य कथा पञ्चान् वृत्रस्य च वधस्तथा ।
 पृथोर्वेणस्य चाग्न्यां घर्माग्न्यां ततः परम् ।
 पितृशुश्रूषणाग्न्यां नटुपस्य कथा ततः ।
 ययाति चरितञ्चैव गुन्तीर्यनिरूपणम् ।
 राज्ञा जैमिनि सम्वादे ब्रह्माश्चर्यकथायुत ।
 कथाहशोकसुन्दर्या हुण्ड-दैत्यवधाचिता ।
 कामोदकाग्न्यां तत्र विटुण्डवप्रसंयुतम् ।
 कुञ्जुगस्य च सम्वादद्रव्यचनेन महान्मना ।
 सिद्धाग्न्यां ततः प्रोक्तं खण्डम्यास्यफलोहनम् ।
 सृत्शानकसम्वादं भूमिस्रण्डमिदममृतम् ।

तृतीये स्वर्ग स्रण्डे :—

“ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्र किंभ्यश्चसौनिता
 समूमिलोकमस्थान तीर्थाग्न्यां ततः परम् ।
 नर्मदोत्पत्ति कथनं तत्तीर्थाणां कथा पृथक् ।
 कुम्भेश्वादितीर्थाणां कथा पुण्याः प्रकीर्तिताः ।
 कालिन्दी पुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम् ।

गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ।
 घर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम् ।
 व्यासजैमिनि सम्वाद्ः पुण्यकर्मकथाचितः ।
 समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततःपरम् ।
 ऊर्ज्जपञ्चाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वापराधनुत् ।
 एतत्स्वर्गाभिधं विप्र ! सर्वपातकनाशनम् ।”

चतुर्थे पातालखण्डे :—

“रामाश्वमेधे प्रथमं रामराज्याभिषेचनम् ।
 अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्यान्वयकीर्त्तनम् ।
 अश्वमेधोपदेशश्च हयचर्याततःपरम् ।
 नानाराजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम् ।
 वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
 नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः ।
 माधवस्नान माहात्म्ये स्नानदानार्चनेफलम् ।
 धरावराहसम्यादो यम द्राह्मणयोः कथा ।
 सम्यादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्रनिरूपणम् ।
 शिवशम्भुसमायोगो दधीच्याख्यानकन्ततः ।
 भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
 देधरातमुताग्यानं पुराणाञ्ज, प्रशंसनम् ।
 गौतमाख्यानफण्यैव शिष्यगीता ततःस्मृता ।
 कल्पान्तरी रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थिता ।
 पातालखण्डमेतद्दि शृण्वतां हानिनां सदा ।

सर्वपापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥

पञ्चमे उत्तर खण्डे :—

पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्यै प्रोक्तं शिप्रेन वै ।
जालन्धरकथा पश्चात् श्रीशैलाद्यनुकीर्तनम् ।
सागरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरिता ।
गंगाप्रयागकाशीनां गयायाश्चाधिपुण्यकम् ।
आम्लादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम् ।
चतुर्विंशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम् ।
विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्रकम् ।
कार्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नान फलन्ततः ।
जम्बुद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम् ।
साधुमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम् ।
देवशर्मादिकाख्यानं गीता माहात्म्यवर्णने ।
भक्ताख्यानञ्च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह ।
इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथाचितम् ।
मन्त्ररक्षाभिधानञ्च त्रिपादुभूत्यनुवर्णनम् ।
अचतारकथा पुण्या मत्स्यादीनामत परम् ।
रामनाम शतं दिव्यं तन्माहात्म्यञ्च बाडव ! ।
परीक्षणञ्च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च ।
इत्येतदुत्तरंखण्डं पञ्चमं सर्वपुण्यदम् ।

तत्फलश्रुतिः —

“पञ्चखण्डयुतं पादं यः शृणोतिनरोत्तमः ।

स लभेद्वैष्णवं धाम भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् ।
 एतद्वैपञ्चपञ्चाशत् सहस्रं पद्मसञ्ज्ञकम् ।
 पुराणं लेखयित्वा वै ज्यैष्ठ्यां स्वर्णाज्यसंयुतम् ।
 यः प्रदद्यात्सुमतये पुराणज्ञाय मानद ।
 स याति वैष्णवं धाम सर्वदेवनमस्कृतः ।
 पद्मानुक्रमणीमेतां यः पठेच्छृणुयात्तथा ।
 सोऽपि पद्मपुराणस्य लभेत्श्रवणज्ञं फलम् ॥”

विष्णुपुराण

तत्रप्रतिपाद्य विषयाश्च बृहन्नारदीये—६४ अध्याये उक्ता यथा—
 शृणु घटस प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् । त्रयोविंशति साहस्रं
 सर्वपातक नाशनम् । यत्रादिभागे निर्दिष्टाः पडंशाः शकृजेन ह ।
 मैत्रेयापादिभे तत्र पुराणस्यचतारिका ।

तत्र प्रथमभागस्य प्रथमांशे :—

”आदिकारणसर्गश्च देवादीनाञ्चसम्भवः ।
 समुद्रमथनारन्यानं दक्षादीनां कथाचयः ।
 ध्रुवस्य चरितं चैव पृथोश्चरितमेव च ।
 प्राणेतमं तथाऽन्यान प्रहादस्य कथानवम् ।
 पृपुराज्याधिकारावयः प्रथमोऽशशतीरितः ।

प्रथम भागस्य द्वितीयांशः :—

पातालनरकाख्यानं सप्तसर्गनिरूपणम् ।
 सूर्यादिचारकथनं पृथग्लक्षणसंगतम् ।
 चरित भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिर्दर्शनम् ।
 निद्राघञ्जनुसम्वादे द्वितीयोऽशउदाहृत ।

प्रथमभागस्य तृतीयांशः :—

“मन्वन्तरसमाख्यानं चेदव्यासावतारकम् ।
 नरकोद्वारकं कर्म गदितञ्च तत परम् ।
 सगरस्योर्वसम्वादे सर्पधर्मनिरूपणम् ।
 श्राद्धकथ्य तयोद्दिष्ट वर्णाश्रमनियन्धने ।
 सदाचारश्च कथितो मायामोहकथा तत ।
 तृतीयोऽशोऽयमुद्धित सर्पपापप्रणाशन ।”

प्रथमभागस्य चतुर्थांशः :—

“सूर्यप्रशकथा पुण्या सोमप्रशानुकीर्तनम्
 चतुर्थेऽशे मुनिप्रेष्ट नानाराजकथाचितम्”

प्रथमभागस्य पञ्चमांशः :—

“रृष्णावतारसम्प्रज्ञो गोजुगया कथा तत ।
 पूतनादिवधोवाल्मेकीमारोऽघादिर्हिसनम् ।
 कैशोरे कसहनन माधुर चरितन्तथा ।
 ततस्तु यौधने प्रोक्ता लीला द्वारवतीभव्या
 सर्वदैत्यवधो यत्र विद्याहाश्च पृथग्विद्या ।

यत्र स्थित्वा जगन्नाथ वृणोयोगेश्वरेश्वर
 भूभारहरण चक्रे परस्वहननादिभि ।
 अष्टावक्रोयमारयान पञ्चमोऽशस्तीरित ।”

प्रथमभागस्य पष्ठोऽंशे :—

कलिज चरितम्प्रोक्त चातुर्विध्य लयस्य च ।
 ब्रह्मज्ञानसमुद्देश खाण्डिक्यस्य निरूपित ।
 केशिध्वजेन चेत्येष पष्ठोऽंश परिकीर्तित ।

तस्य द्वितीय भागे :—

अत परन्तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ।
 पृष्टेन चोदिता शश्वत्विष्णुधर्मोत्तराह्वया ।
 नाना धर्मकथा पुण्या व्रतानि नियमा यमा ।
 धर्मशास्त्रञ्चार्थशास्त्र वेदान्त ज्योतिषन्तथा ।
 वंशाख्यानम्प्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा ।
 नाना विद्याश्रया प्रोक्ता सर्वलोकोपकारका ।
 एतद्विष्णुपुराणं वै सर्व शास्त्रार्थसंग्रह ।”

तत्फलश्रुतिः —

“धाराह कल्पवृत्तान्त व्यासेनकथितन्त्वह ।
 यो नर पठते भक्त्या य शृणोति च सादरम् ।
 तावुमो विष्णुलोक हि व्रजेताम्भुक्तभोगकौ ।
 तल्लिपित्वा च योदद्यादापाढ्या घृतधेनुना ।
 सहित विष्णुभक्ताय पुराणार्थविदे द्विज ।

स याति वैष्णवं धाम विमानेनार्कवर्चसा ।
 यश्च विष्णुपुराणस्य समनुक्रमणीं द्विज ।
 कथयेच्छृणुयाद्वाऽपि स पुराणफलं लभेत् ।

शिवपुराण

तत्स्थ विषयाणां प्रतिपादनम्

ज्ञानसंहितायाम्:—

ऋषिगणस्य प्रश्नः । ब्रह्मनारदसंवाद-ज्योतिर्लिङ्ग प्रादुर्भावश्च ।
 ओंकार प्रादुर्भावः, शिवस्यानुग्रहः, विष्णुरुत शिवस्तुतिः ।
 उभयोःकृते शिवस्य वरदानम् । ब्रह्मणो हंसरूपधारणस्य विष्णोः
 वराहरूपधारणस्य च कारणरूप निर्देशः, ब्रह्मादीनामुत्पत्तिकथनम् ।
 ऋष्यादीनां सृष्टिः । भगवत्या- देहत्यागस्य संक्षेपेण वृत्तान्त-
 कथनम् शिवपूजा विधिश्च । पाचमान मन्त्रैः शिवपूजा विधिः ।
 तारकोपाख्यानं, ब्रह्मण समीपे देवादीनांगमनञ्च । ब्रह्मदेव संवादः
 शिवस्य तपो घर्जनञ्च मदनदहनम्, पार्वत्याश्च प्रत्यावर्त्तनम् ।
 पार्वत्यास्तपः । पार्वतीतपः समुद्दिश्य देवगणानामृषीणाञ्च
 शिवसन्निधाने गमनम्, जटिल ब्राह्मणवेशे पार्वत्याःसकाशं-
 शिवस्यागमनम् । हरपार्वती संवादः । शिवविवाहोद्योगः ।
 शिवविवाह यात्रा । शिवरूप दर्शने मेनकायाश्चेदस्तां प्रति

शिवलिङ्गमाहात्म्य कथनञ्च । अश्वमेध्वर वर्णनप्रसंगेऽश्वकर्मर्द्धन
 कथनम् । शिवरात्रिव्रत सशय हेतुदधीचितनयानां दोषकथनम् ।
 सोमेश्वरकथा ज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिकथनञ्च । महाकालोका-
 रेश्वरयोत्पत्ति । वेङ्गारेश्वरप्रसङ्गः । भीमशङ्कर प्रादुर्भावः ।
 विश्वेश्वरस्य माहात्म्यम् गौरीप्रति शिवस्य काशीमाहात्म्य-
 कथनम् । गोपेश्वरमाहात्म्य कथनम् । काशीमरणान्मोक्षप्राप्ते-
 शङ्कानिवारणम् । गौतमस्य तपस्यालक्षेत्रकथनञ्च । गणेशपूजनं
 गौतमचरित्रञ्च । गौतमप्रशंसा, गंगास्थितिः कुशावर्तमाहात्म्यं
 श्यम्भकमाहात्म्यञ्च । राघवस्यतपस्या माहात्म्यम्, वैद्यनाथस्यो-
 त्पत्ति । रामेश्वर माहात्म्ये नागेशमाहात्म्यञ्च । शुम्भेश्वर माहा-
 त्म्यञ्च, चराहरूपेण हिरण्याक्षप्रथः प्रह्लादचरित्रञ्च । प्रह्लादहिरण्य
 कशिपू प्रस्तावः । हिरण्यकशिपुवधः नृसिंहचरित्रञ्च । नल
 जन्मान्तर कथा । पाण्डवगण कर्तृक दुर्वाससः प्रीन्युत्पादनम् ।
 व्यासादेशेन इन्द्रकील पर्वते अर्जुनस्यतप इन्द्रसमागमश्च ।
 भिद्गुरुस्य शिवस्यागमनञ्च । भिद्गुरेपधारि शिवस्यअर्जुनेन
 सह युद्ध । अर्जुनस्य चरदानम् । पार्थिवशिरजूजाविधि ।
 त्रिनेश्वरमाहात्म्यम् । विष्णुकर्तृक सहस्रकमलशिरपूजा । शिव-
 वृषथा सुदर्शनचक्र लाभः । शिवसहस्रनाम वर्णनम् । विष्णुप्रभृतीन्
 शिरस्य शिवरात्रिव्रत कथनम् । शिवरात्रिव्रतस्योद्यापनविधिः ।
 व्याधयस्येतिहास कथनम् । अज्ञानेन वृत्तस्य शिवरात्रिव्रतस्य
 प्रशंसा । शिवरात्रिव्रतकरणेन पापिनो वेदनित्रे मुक्तिः । चतु-
 र्विध मुक्तिवर्णनम् । शिवकर्तृक विष्णुप्रभृतीनामुत्पत्ति कथनम् ।
 एकमात्रभक्तिसाधनेन शिवभक्तेर्लाभकथनम् ।

भगवत्याः ज्ञानोपदेशः । हरपार्वन्योर्विवाहः । कार्तिकेयस्य
 जन्मः देवसेनापतिलं तारकवधश्च एवं ब्रह्मणो वरेण तारकपुत्राणां
 त्रिपुरेऽधिष्ठानम् । विष्णुसृष्टौ मुण्डिकर्तृक दैत्यगणानाम्मोहो-
 त्पादनम् । मुण्डिन उपदेशेन दैत्यानां धर्मनाशः दृष्टिताञ्च
 दृष्ट्वा विष्णुप्रभृतिदेवगणानां शिवस्तवः । विष्णुपदेशेन देव-
 गणानां कोटिशिवमन्त्रज्ञापः शिवस्तवश्च । देवमयरथा-
 रोहणे शिवकर्तृक त्रिपुरनाशः । देवगणानां वरलाभश्च ।
 हरिकर्तृक लिङ्गार्चन फलकथनम् । अधिकारानुसारेण देवेभ्यस्तै-
 जसादि लिङ्गदानम् । शिवपूजाविधि कथनम् । आह्निककर्तव्य
 शिवपूजाविधिः । षोडशोपचारेण साम्बशिवपूजा । धान्यादिभिः
 शिवपूजायाः फलविशेषकथनम् । जानकी शापेन केतकी पुष्पेण
 शिवपूजायानिषेधः रामचरित्र कीर्तनञ्च । चम्पक पुष्पस्य शिव-
 पूजार्थं राज्ञोमोहस्तदुत्पादनपूर्वकं कृतदुष्कर्मात्राह्वणं चम्पक-
 पुष्पयोश्च नारदस्यशापः । गणेशचरित्रम् । गणेशकर्तृक शिव-
 गणानांपराजयः शिवकर्तृक गणेशशिरश्छेदनञ्च । शिरश्छेदनेन-
 देव्या क्रोध महादेवस्य च गणपतेः प्राणदानं गाणपत्यप्रदानञ्च ।
 कार्तिक गणेशयोर्विवाहः गणेशस्य जयलाभश्च । गणेशस्य
 विवाहस्तच्छ्रुत्वा कार्तिकस्यक्रोधः क्रौञ्चपर्वतगमनञ्च ।
 रुद्राशुभारणमहात्म्यकथनम् । प्रधानज्योर्लिङ्गोपलिङ्गानां नाम-
 स्थान कथनम् । नन्दिकेशतीर्थमाहात्म्ये गोवत्ससंवादादिः ।
 नन्दिकेश तीर्थमाहात्म्यकथनम् । अत्रीश्वरलिङ्गमाहात्म्य-
 कथनम् । ज्योतिर्लिङ्गादीनां समस्त वस्तूनां ग्राह्यत्वकथनम् ।

शिवलिङ्गमाहात्म्य कथनञ्च । अश्वकेश्वर वर्णनप्रसंगेऽश्वकर्मर्दन
 कथनम् । शिवरात्रिव्रत संशय हेतुदधीचितनयानां दोषकथनम् ।
 सोमेश्वरकथा ज्योतिर्लिङ्गोत्पत्तिकथनञ्च । महाकालोका-
 रेश्वरयोत्पत्तिः । केदारेश्वरप्रसङ्गः । भीमशङ्कर प्रादुर्भावः ।
 विश्वेश्वरस्य माहात्म्यम् गौरीप्रति शिवस्य काशीमाहात्म्य-
 कथनम् । गोपेश्वरमाहात्म्य कथनम् । काशीमरणान्मोक्षप्राप्तेः
 शङ्कानिवारणम् । गौतमस्य तपस्यातल्लेखकथनञ्च । गणेशपूजनं
 गौतमचरित्रञ्च । गौतमप्रशंसा, गंगास्थितिः कुशावर्तमाहात्म्यं
 अथर्वकमाहात्म्यञ्च । रावणस्यतपस्या माहात्म्यम्, वैद्यनाथस्यो-
 त्पत्तिः । रामेश्वर माहात्म्ये नागेशमाहात्म्यञ्च । शुम्भेश्वर माहा-
 त्म्यञ्च, वराह्रूपेण हिरण्याक्षवधः प्रहादचरित्रञ्च । प्रहादहिरण्य
 कशिपू प्रस्तावः । हिरण्यकशिपुवधः नृसिंहचरित्रञ्च । नल
 जन्मान्तर कथा । पाण्डवगण कर्तृक दुर्वाससः प्रीत्युत्पादनम् ।
 श्यामादेशेन इन्द्रकील पर्वते अर्जुनस्यतपः इन्द्रसमागमश्च ।
 मिहिरूपस्य शिवस्यागमनञ्च । मिह्रवेपधारि शिवस्यअर्जुनेन
 सह युद्धः । अर्जुनस्य चरदानम् । पार्थिवशिवरूपाविधिः ।
 विन्धेश्वरमाहात्म्यम् । विष्णुकर्तृक सहस्रकमलशिवपूजा । शिव-
 कृपया सुदर्शनचक्र लाभः । शिवसहस्रनाम वर्णनम् । विष्णुप्रभृतीन्
 शिवस्य शिवरात्रिव्रत कथनम् । शिवरात्रिव्रतस्योद्यापनविधिः ।
 व्याघ्रस्यनिहास कथनम् । अज्ञानेन कृतस्य शिवरात्रिव्रतस्य
 प्रशंसा । शिवरात्रिव्रतकरणेन वापिनो वेदनिधे मुक्तिः । चतु-
 र्विध मुक्तिवर्णनम् । शिवकर्तृक विष्णुप्रभृतीनामुत्पत्ति कथनम् ।
 एकमात्रभक्तिसाधनेन शिवभक्तेर्लाभकथनम् ।

विद्येश्वर संहितायाम्—

साध्यसाधन निरूपणम् । मननादि स्वरूपवर्णनम् । ध्व-
णाद्यशक्तव्यक्तीर्नालिङ्गपूजनसाधनकथनम् । ब्रह्मविष्णवोः युद्धं
दृष्ट्वा शिवसमीपे देवतानां गमनम् । ज्योतिर्मयलिङ्गप्रादुर्भाव-
स्तद् दृष्ट्वा ब्रह्म विष्णवो विवाद शान्तिः । भैरवकर्तृक ब्रह्मणः
शिरश्छेदनं । ब्रह्माणं प्रति शिवस्यानुग्रहः । ब्रह्मविष्णु कृताशिव
पूजा लिंगनिर्माणं लिंगप्रतिष्ठा । लिंगपूजायाः नियम कथनम् ।
शिवतीर्थं सेवामाहात्म्यम् । विप्रादि सदाचारस्य नित्यकृत्यता ।
पञ्चमहायज्ञकथनम् । दिनविशेषे देवपूजायाः कर्तव्यताकथनम् ।
देशकालादि विशेषे पूजाफल कथनम् । पार्थिव प्रतिमा पूजाविधिः ।
प्रणवमाहात्म्यम् । शिवभक्तपूजाकथनम् । पङ्क्तिग माहात्म्यम् ।
बन्धनमुक्तयोः स्वरूपकथनम् । लिंगक्रमकथनम् ।

कैलाश संहितायाम् :—

घाराणसीधाम्नि सूतकर्तृक मुनीनां निकटे प्रणवार्थ कथना
रम्भः । कैलाशधाम्नि देवीकृता शिवं प्रति प्रणवार्थ जिज्ञासा ।
प्रणवोक्ता मन्त्रदीक्षादि कथनम् । प्रणवोद्धारः, विविध पूजा एवं
न्यासान्तरादि विधिः ।

कार्तिकेयं प्रति घामदेव ब्रह्मणेः प्रणवस्य कृते प्रश्नः । कुमार
कर्तृकं घामदेवं प्रति प्रणवोपासना कथनम् । पङ्क्तिगार्थ परि-
ज्ञानं । विस्तृत प्रणवार्थ कला तन्त्रादि विचर्ण कथनम् ।

सनत्कुमार मंहितायाम् :—

नैमिपारण्ये सनत्कुमारस्यागमनम् । व्यासादिमिर्मिलनम् । शिवपत्ता विषये ऋषीणां प्रश्नः । सनत्कुमारस्य पृथ्व्यादेः संस्थानक्रमप्रभृतानां कथनम् । प्रकृतितः महदादिक्रमे जगतः सृष्टिः सतडोपवर्णनञ्च । नरकादि वर्णनम् । उद्ध्वलोक योग-माहात्म्यकथनम् । सविस्तरं रुद्रमाहात्म्यं, पञ्चमूर्ति कथनम् । रुद्रकीर्तन फलम् । रुद्रस्तवः । सनत्कुमारस्य चरित्रम् । परमसिद्धिश्च । शिवसर्वज्ञादि कथनम् । रुद्रलोक ब्रह्मलोक विष्णुलोकानां कथनम् । रुद्रस्थानस्य सर्व श्रेष्ठत्व कथनम् । विभीषण महेश्वर संवादः । लिङ्ग पूजा शिवनाम कीर्तनफलञ्च । म्यान माहात्म्य कथनम् । ब्रह्म विष्णु महेश्वरणां मध्ये कस्य ज्येष्ठत्वम् इति व्यास प्रश्ने सनत्कुमार समुत्तरदानं शिव लिङ्ग माहात्म्यादि कथनञ्च । लिङ्गस्तापनं शिवशक्त्योः पूजनविधिः शिव पूजायां पुष्पनिरूपणम् । अनशन विधिः । शिवप्रीतिकरः धर्मस्य संक्षिप्त उपदेशः । लक्ष्मणाष्टमीव्रतकथनञ्च । अन्न-दान माहात्म्यं मित्र २ दानानां प्रशंसा च । विविध धर्मकार्याणा-मुपदेशः । सविस्तरं नियमफलकथनम् । पार्वत्याः शिवस्य शिरसि चन्द्रधारणे विषमक्षण विषये च प्रश्नः । भस्म प्रशंसा भस्म धारणस्य फल कथनम् । शिवस्य श्मशानवासहेतुः । शिवपूजायाः फलकथनम् । शिवविभूतिकथनम् । शिवस्थान-निर्देशः । प्रणवस्योपासना । प्रणवदेवता कथनम् । ध्यान योग कथनम् । दुर्वाससः महादेवं प्रति पुनर्ध्यान वर्णनम्

तदर्थं काशीवासनिर्देशश्च । धायुनाडिकादि निरूपणम् । - ध्यान-
निधेः प्रशंसा । प्रणवोपासना निरूपणम् । शरीरस्य सर्वदेव-
मयत्व कथनम् । नाडी विस्तार कथनम् । हरपार्वतीसंवादः
काशीमाहात्म्य कथनञ्च । मधूकस्योपाख्यानम् । सपुत्रस्यप्रताप-
मुकुटराज्ञ ओंकारेश्वर दर्शनम् । ओंकारस्तवः । नन्दीश्वरस्य
तपस्या । नन्दिनं प्रति शिवस्य वरदानम् । महादेवस्य स्मरणम् ।
देवानामागमनम् । शिवस्यादेशेन देवानां नन्दिनः गाणत्या-
भिषेककरणम् । नन्दिन स्तवः नन्दिविवाहश्च । नीलकण्ठमाहात्म्यं,
स्तोत्रञ्च त्रिपुरवृत्तान्तम् । देवानां सुखं दृष्ट्वा महादेवस्य सन्तोषः ।
त्रिपुरनाशस्योद्योगः । त्रिपुरदाहः । पार्वत्याः प्रश्नः । शिवस्य
ब्रह्मणश्च माहात्म्य कीर्तनम् । पाशुपतयोगः । देहस्थनाडीनां
विवर्णम् । विमलज्ञानेन ईश्वरपदप्राप्तिः । शिवस्थितिलोक-
कथनम् ।

वायवीय संहितायाम्—

महादेवकृपया श्रीकृष्णस्य पुत्रलाभ कथनम् । वेदादि-
ध्यवस्था । पुराण संख्या कथनम् । ब्रह्मणोनिकटे ऋषीणां
शिवतत्त्व कथनम् । ब्रह्मण आदेशेन नैमिषारण्ये यज्ञार्थं गमनम् ।
नैमिषारण्ये ऋषीन्प्रतिवायोः कुशलप्रश्नोक्तिः । शिवतत्त्वम्
मायास्वरूपकथनञ्च । शिवस्य कालरूपत्वप्रकटनम् । सविस्तरं-
फालमान कथनम् । प्रकृतिसृष्टि कथनम् । ब्रह्मकर्तृक बराहुरूपे
ब्रह्मण जगद्व्यवस्थापनम् । शिवप्रसादाद्ब्रह्मणः सृष्टिकरणम् ।

ब्रह्म विष्णु महेश्वराणां परस्परं वशवर्तित्वम् । ब्रह्मणश्च महा-
 देवादुत्पत्ति कथनम् । ब्रह्मार्ण प्रतिसृष्टिकरणार्थं रुद्रस्यादेशः ।
 प्रजावृद्ध्यर्थं ब्रह्मण अर्धनारीश्वरप्रसादनम् । रुद्रकर्तृकस्त्रियाः
 सृष्टिः मथुनसृष्टिश्च । दक्षयज्ञ कथनम् देव्याश्च देहत्यागः ।
 घोरभद्रनिरूपणम् । काल्याःसृष्टिः । दक्षयज्ञनाशः । घोरभद्रस्य
 शिवनिकटे देवानयनम् । दक्षस्य छागमुखता च । व्याघ्रं प्रतिपार्वत्या
 अनुग्रहः । शिवसमीपे देव्यागमनम् व्याघ्रस्य सोमनंदी नाम करणञ्च ।
 देव्याः समीपे शिवकर्तृक अग्निष्टोमात्मक विश्वप्रपञ्च कथनम् ।
 त्रिविध शब्दार्थ कथनम् । जगतः शब्दरूपिन्चकीर्तनम् । महर्षीणां
 शिव शक्तयोः कीर्तनम् । नास्तिकताविनाशाय तयोर्जन्म । घायुना
 सविस्तरं शिवतत्त्वकथनम् मुक्त्यर्थं ज्ञानस्यचोपदेशः । पाशुपत
 योगे मुक्तिलाभकथनम् । पाशुपतव्रतकथनं भस्ममाहात्म्य कथनञ्च ।
 दुग्धप्राप्त्यर्थमपमन्योः महादेवस्य प्रसादेन दुग्धसमुद्रप्राप्तिः ।

उत्तर भागे :—

श्वेतकल्पे प्रयागे मुनिगणैर्जिज्ञासितं प्रश्नं प्रति सूतस्य घायु-
 कथित शिवमाहात्म्यकथनरूपमुत्तरम् । श्रीकृष्णम्रति उपमन्योः
 पाशुपत ज्ञानकथनम् । सुरेन्द्रादि परीक्षा । ब्रह्मविष्णु प्रभृतभिः
 शिवस्वरूप कथनम् । श्रीपुरुपात्मक उमामहेश्वरयोर्जगत्प्रपञ्च-
 कत्वकथनम् । परब्रह्मापरब्रह्मणोरेकत्व कथनम् । महादेवस्य
 अप्रारूढरूपस्य प्रणवात्मकत्वकथनं प्रणवस्वरूप कथनञ्च ।
 भक्त्यादि द्वाग मानवानां शिवप्राप्तियोग्यता । ब्रह्मादिदेवान् देवी-
 म्रति च शिवस्य वेदसार ज्ञानीपदेशः । शिवावतारस्य कल्प-

योगेश्वरस्य च कथनम् शिवपञ्चाक्षर मन्त्रस्वरूपम् माहात्म्यञ्च ।
 शैवमन्त्रग्रहणस्य कथा । दीक्षाप्रयोगः । पङ्चशुद्धिप्रभृतिकथनम् ।
 शिवनाम्नः शिवमन्त्रस्य च साधनविधिः । आचार्यत्पसिद्धे-
 रभिषेकादीनां संस्काराणाञ्च कथनम् । शैवादीनामान्दिक कर्म
 कथनम् । अन्तर्याग बहिर्याग कथनक्रमश्च । नानाविधानेषु हर-
 पार्वत्याः पूजा विधिः । होमकुण्डानां परिमाणादीनां निर्णयः ।
 मासादि विशेषेषु नैमित्तिक शिवपूजा कथनम् । काम्यशिवपूजा
 कथनम् । शिवस्तोत्रम् प्रकारान्तरेण लिङ्ग पूजा च । शिवपूजाफले
 ब्रह्मादीनां स्वीयस्वीय पदप्राप्तिः । ब्रह्मविष्णोः लिङ्गदर्शनम् ।
 शिवप्रतिष्ठा शिवप्रोक्षणविधिश्च । योगोपदेशः । मुनीनां समीपे
 शिवचरितं पूर्वेक वायोरन्तर्धानम् । यज्ञ समाप्तौ ब्रह्मणो निकटे
 मुनीनामागमनम् । ब्रह्मण आदेशेन सुमेरु पर्यते सनत्कुमार
 समीपे मुनीनामागमनम् । नन्दिसमागमः । नन्दिकर्तृक शिवकथा
 वर्णनम् ।

धर्मसंहितायाम् :—

शिवमाहात्म्यनिरूपणम् । उपमन्योः समीपे श्रीकृष्णस्य
 शिवमन्त्रे दोक्षाग्रहणम् । रुद्रद्वैत्य वधः । गोपीप्रभृतिरूप महादेवेन
 सह अप्सरसांविहारः । उपाऽनिरुद्धयोःसमागमः । बाणराज्ञोयुद्धादि
 कथनम् । काल्यास्तपस्या, आडीद्वैत्यवृत्तान्तः । वीरकस्य
 नन्दिरूपेण जन्म कारणम् । शिवस्य कामाचारो लिङ्गोद्भवकथा च ।
 शक्रादीनां कामर्किकरत्वकथनम् । महात्मनां कामक्षोभः । विश्वामित्र
 प्रभृतोनां कामचश्यता कथनम् । श्रीरामस्य कामाधीनत्व कथनम् ।

नित्यनैमित्तिक शिव पूजाविधिः । शङ्करक्रियायोगस्तत्फलञ्च ।
 शिवभक्त पूजा तत्फलञ्च । विविधपाप कथनम् पापफलानि च ।
 धर्मप्रसङ्गः । अन्नदानविधिः । जलदान माहात्म्यम् । पुराण
 पाठस्य माहात्म्यम् धर्मश्रवण माहात्म्यञ्च । महादानकथनम् ।
 सुवर्णं पृथिवी दानम् । वान्तारहस्ति दानम् । एकदिनस्याराधने-
 नैव शङ्करस्य कृपा । शिव सहस्रनाम वर्णनम् धर्मोपदेशस्तु-
 लापुरुषदानञ्च । परशुरामस्य तुलापुरुषदानम् । ब्रह्मणः प्रसङ्गः ।
 नरकादिकीर्तनम् । द्वीपादिकथनम् । भारतवर्षादिकथनम् ।
 प्रहादीनांकथा मृत्युञ्जयोद्धारश्च । मन्त्रराजप्रभाव कीर्तनम् । पञ्च-
 ब्रह्मकथनं पञ्चब्रह्मविधानञ्च । तत्पुरुष विधानम् । अधोरकत्व
 घामदेवकत्व सद्योजातकत्वादिकथनम् । संसार कथा स्त्री-
 स्वभावादिकथनञ्च । अरुन्धतीदेवानांसम्वादः । विवाहकथा ।
 मृत्युचिन्हस्य आयुष्य प्रमाणम् । कालजयः । छाया पुरुषलक्षणम् ।
 धार्मिकाणां गतिर्लिङ्गपूजायां कारणञ्च । विष्णुव्रत शिवस्तवः
 लिङ्ग पूजायाः फलञ्च । सृष्टि कथनम् । प्रजापतिव्रत सृष्टि-
 कथनम् । पृथु राज्ञः पूजायाः कथा । देवदानवादीनां सृष्टि-
 चित्तारः । आधिपत्यनिर्णयः । पृथु चरित वर्णनम् । मन्वन्तरा-
 दिवर्णनम् । सञ्ज्ञाछायादीनांकथनम् । सूर्यवशवर्णनम् । सत्यव्रत
 सगर राज्ञोश्च विवरणकथनम् पितृकल्पस्यश्चाद्वस्य च कथा, पितृ-
 सप्तकवर्णनम् । मुनीनां जात्यन्तर्प्राप्तिः । साधुसङ्घेन मुनिसप्तकस्य
 सद्गति लाभः । व्यासपूजा ।

विधान सहितं सम्यक् पुगणं फलदं श्रुतम् ।

तस्माद्विधानयुक्तन्तु पुराणं फलमुत्तमम् ॥

भागवतम्

तत्प्रतिपादित विषयाश्च

प्रथमस्कन्धे :—

देवीभागवतस्य महापुराणत्वादि सिद्धान्त निर्णयः । ग्रन्थारम्भमंगलम्, ऋषीणां पुराणविषयप्रश्नः ग्रन्थ सङ्ख्या विषयश्च । ससंख्याक पुराणाख्या तत्तद्युगीय व्यासानुक्थनञ्च । देवीसर्वोत्तमेति कथनं प्रसङ्गतं शुकजन्म च । देव्या महोत्कर्षः । मधुकैटभयोर्युद्धोद्योगः । ब्रह्मणा मधुकैटभभीतेन पराम्बिकायाःस्तुतिः । आराध्यनिर्णयः । देवोपसादान्मधुकैटभयोर्हरिणावधः । शिवस्य चरदानम् । बुधोत्पत्तिः । पुरूरवस उत्पत्तिः । पुरुरवसउर्वश्याश्चरितम् । शुकस्योत्पत्तिः । शुकवैराग्यम् । शुकायैतत्पुराणोपदेशः । जनकस्य पराक्षारं शुकस्य मिथिलागमनम् । शुकायजनकोपदेशः । शुकस्य विद्याहादिकम् । शुकनिर्गमनोत्तरं व्यासकृत्योपघर्षणम् ।

द्वितीयस्कन्धे :—

व्यासजन्मवृत्तान्तवर्णनम् । पराशरादासकन्धोदरे व्यासस्थजन्म । शन्तनो सत्यवत्या गङ्गाया च सह विद्यादःवसूनामुत्पत्तिश्च । शन्तनुना सत्यवत्या परणम् । व्यासात् पुत्रत्रयोत्पत्तिः पाण्डवोत्पत्तिश्च । पाण्डवानां कथानकं मृतानां दर्शनञ्च । यदुकुलस्य-

नाशः उत्तरासूनोर्वृत्तञ्च । रुरुपुरावृत्त कथनपूर्वको गुप्तगृहे
 राज्ञोवासः । तक्षकद्विजयोः सम्मापणं तक्षकेण राज्ञोदर्शनञ्च
 सर्पसत्राय यद्वपरिकरस्य जनमेजयस्यास्तीक्ष्णैर्निवारणम् ।
 आस्तोकस्योद्भवो भागवतमाहात्म्यञ्च ।

तृतीय स्कन्धः—

भुवनेश्वरो निर्णयः । विमानेन ब्रह्मादीनां गतिः । विमानम्यै-
 हरादिभिर्देवी दर्शनम् । विष्णुनामृतं देवीस्तोत्रं तदूर्ध्वं हरस्तुतिर्ब्रह्म-
 स्तुतिश्च । ब्रह्मणे श्रीदेव्या उपदेशः । तत्त्वनिरूपणम् । गुणानां
 रूपसंख्यानादि । पुनरपि गुणानां लक्षणमधिकृत्य नारद प्रश्नः ।
 सत्यव्रतकथा । चाग्नीजोच्चारणान् सत्यव्रतस्य सिद्धिलामः ।
 अंबायज्ञविधिः । अम्बिकामखम्य विष्णुनानुष्ठानम् । राज-
 प्रश्नोत्तरं वैभववर्णनञ्च । युधाजिह्वोरसेनयोर्दोहित्रार्थशुद्धम् ।
 युधाजितः सुदर्शनजिवांसया भरद्वाजाश्रमं प्रति गमनम् । विष्वा-
 मित्रकथोत्तरं राजपुत्रस्य कामयोजप्राप्तिः काशीराजस्य म्वसुता
 विवाहोद्योगः । सुदर्शनेन सह राज्ञां म्वयम्बरागमनम् । राज-
 संवाद निवृत्तिपूर्वकं कन्याबोधः । राज्ञांकोलाहले कन्यासम्मत्स्य
 राज्ञ.म्यानम् । सुदर्शनविवाहः सुबाहोः कन्याया विवाहश्च ।
 महारणेशत्रूणां देव्या व्यापादनम् । देवी महिमा काश्यां दुर्गा-
 घासश्च । अंबिका तोषणं तत्पुरं देवीस्थापनञ्च । नवरात्रविधे
 नृपाय व्यासेन कथनम् । कुम्भारिकाकथनम् । रामायणकथा
 प्रश्नः । रामशोकः । नारदेनव्रतकथनम् ।

चतुर्थं स्कन्धे :—

कृष्णावतार प्रश्नः । कर्मणोजन्मादिकारणत्वनिरूपणम् ।
 अदितेः शापकथनम् । अधमजगतः स्थितिः । नारायणकथा ।
 नराग्रजेनोर्वशीसृष्टिः । अहंकारावर्तनम् । प्रह्लादनारायणोः समागमः
 प्रह्लादनारायणोर्युद्धम् । हरये भृगुणाशापदानम् । शुकस्य मन्त्रला-
 भार्यं गमनं शुकमातुर्वधश्च । भृगुणा शुकमातुरुज्जीवनम् । जयन्त्या
 शुकसेवार्थं प्रेषणम् । शुकरूपेण देवानां गुरुणा दैत्यवञ्चना । दैत्यानां
 शुक सम्प्राप्तिः । देवदानवयोर्युद्धशान्तिः । हरेर्नानावताराः । सुरां-
 गनानां नारायणाश्रमे गमनम् । दुष्टराजभाराक्रान्ताया मेदिन्या
 ब्रह्माणं प्रति गमनम् । देवैःशक्तिस्तवनम् । घासुदेवांशावतारकथा ।
 देवक्या सप्तानां पुत्राणां वधः । देवानामंशावतारणम् । कृष्ण-
 जन्मकथनम् । कृष्णकथा । पराशक्तेः सर्वज्ञत्वकथनम् ।

पञ्चमं स्कन्धे :—

विष्णोरपेक्षया रुद्रस्य श्रेष्ठत्वम् । देवीमाहात्म्यवर्णनम्
 महिपोत्पत्तिः । देवेन्द्रेण सह समरोद्योगः । देवानां ससदिविमर्शः ।
 देवसेनापराजयः । देवदानवयुद्धम् । पराभूतानां देवानां कैलास-
 गमनम् । जगदम्बायाः पलाशसमिधांज्वालनयोत्पत्ति कथनम् ।
 देवैर्महायुधैर्देव्यर्चनम् । रक्तदूतसंघादकीर्तनम् । महिपासुर-
 संसदि विमृश्यानाम्नोदूतस्यप्रेषणम् । ताम्रस्यागमनोत्तरं वाष्कल
 दुर्मुखयोः प्रेषणम् । वाष्कलदुर्मुखयोर्वधः । ताम्रचिक्षुरयो-
 र्देव्यावधः । महारणेऽसिलोमादीनां निधनम् । महिपासुरस्य

देव्या संवादः । मंदोदर्याः कथानकम् । महिषस्यवधः । देवैः कृता-
 महादेवीस्तुतिः अन्तर्धानोत्तरं वृत्तकथनम् । शुम्भासुरकथा ।
 परादेव्याः सुरकार्यार्थं प्रादुर्भावः । कौशिकीति प्रसिद्धाया देव्या-
 गिरौप्रादुर्भावः । दूतसंवादकीर्तनम् । धूम्रलोचनवधः । चण्ड-
 मुण्डयोः श्रीदेव्यासहयुद्धम् । रक्तबीजयुद्धम् । रक्तबीजवधः ।
 शुम्भस्य युद्धस्यविस्तारः । शुम्भस्ययुद्धोद्योगः । निशुम्भवधः ।
 शुम्भासुरवधाश्रितकथा । राजवैश्योश्चरित्रत्रय सेवक्यौर्वार्ता ।
 भुवनसुन्दर्या राज्ञेकथनम् । राज्ञे तापसोपदेशः । राजवैश्ययोर्देव्याः
 प्रत्यक्षदर्शनम् ।

पष्ठ स्कन्धे :—

वृत्रदैत्यवधकथारम्भः । विशिरोधधर्षणनम् । मित्राजया-
 वृत्रस्य तपोर्थंवनगमनम् । वृत्रेण धरगर्वेण पराभूतानां देवानां
 शंकरसमीपेगमनम् । देवीस्तुत्या देवैर्वरप्रापणम् । वृत्यदैत्यवधा-
 श्रिता कथा । घासवस्य गुप्तवासो नहुषस्य चेन्द्रपद्रेऽभिषेकः ।
 नहुषेण प्रार्थितायाः शच्याश्चिता, देवीप्रसादतस्तम्या इन्द्रदर्शनम् ।
 नहुषस्याधःपातः त्रिविधस्य कर्मणो रूपकथनम् । युगोद्भवानां
 धर्माणां कथनं सदसद्गमविनिर्णयश्च । आडोवकमहायुद्धस्य-
 तीर्थयात्रा प्रसङ्गत उपवर्णनम् । शुनःशेपकथान्ते युद्धस्यस्मरणम् ।
 घसिष्ठस्य मित्रावरुणापत्यत्वविस्तरः । निमेर्देहान्तरैगतिः हैहया-
 नां कथा । हैहयेन भार्गवाणां वधः । देवीरूपया भृगुवंशस्तुतिः ।
 हैह्यस्यकथा । हरेरश्विन्यां जन्म । ह्यीजातस्य हरेः कथानकम् ।
 एकवीरामिषेचनोद्ध्वंसकथनम् । एकावल्याः कथानकम् ।

हैहयभूभृत कालकेतुना महायुद्धम् । विश्वेषशक्ति कथनम् ।
 व्यासेन स्वमोहोपपादनम् । नारदेनापि तथाकरणम् । नारदस्य
 विवाह । पुरनपि तस्यैव विस्तारः । स्त्रीभाव गतस्यनारदस्य
 पुन पुष्ट्यत्वप्राप्ति । हरिणा महामाया प्रभावकथनम् । भगवनी-
 ध्यानादिकम् ।

सप्तम स्कन्धे :—

सूर्य सोमोद्भुभवाना कथारम्भ । तदन्यस्यविस्तार । सुक
 न्यकाया च्यवनाय प्रदानम् । सुकन्या देवभिपजो सम्वाद ।
 रविपुत्रप्रसादजा च्यवनस्य युवावस्था । शर्यातिर्यज्ञकरणम् ।
 तत्राश्विनो सोमप नम् । तद्वशकथनम् । ककुत्स्थादीनामुत्पत्ति ।
 सत्यव्रतकथा । त्रिशङ्को कथानकम् । त्रिशङ्को स्वर्गवास ।
 हरिश्चन्द्रेनृपे सतित्रिशङ्कोर्विश्वामित्रेण समागम । हरिश्चन्द्र
 कथा । राज्ञ पुत्रोत्सव । शन शेषवधाश्रयाकथा । विश्वा-
 मित्रेण शन शेषस्य मोचनम् । हरिश्चन्द्रेण विश्वामित्रवैरम् ।
 हरिश्चन्द्रस्य राज्यविध्वंस । नृपस्य दक्षिणा दानयज्ञ । तत्कृत
 शोक । हरिश्चन्द्रेणात्मविषय । चाण्डालेन हरिश्चन्द्रवध ।
 हरिश्चन्द्रस्य चाण्डालगृहेऽवस्थानम् । भूभृत पुत्रभार्याकथा ।
 पत्न्यामभिषाय हरिश्चन्द्रस्य शोक । हरिश्चन्द्रस्य स्वर्गवास ।
 शताक्षा महिमा । राजवार्ताया प्रश्न । गौरीजन्म नानापीडो
 दुभयश्च । पार्वत्या हिमाग्याजन्म । आत्मतत्त्वनिरूपणम् ।
 विश्वरूपदर्शनम् । ज्ञानस्य मोक्षार्थत्वम् । मन्त्रसिद्धेसाधनम् ।

ब्रह्मतत्त्वम् । भक्तिमहिमा । देव्या महोत्सवव्रतानि स्थानानि च ।
भगवती पूजनम् । ब्रह्मपूजा विधानम् ।

अष्टमस्कन्धे :—

मनये देव्या वरदानम् । वराहेण धरोद्धरणम् । मनुवंशघर्षणम् ।
प्रियव्रतकथानकम् । भूमण्डलस्य विस्तारः । देवीघर्षणं देव्यु-
पास्तिश्च । मूलादूर्ध्वमहार्यघर्षणम् । इलावृत्तघर्षणम् । घर्षान्तर्गत
सेव्यसेवकत्वकथनम् । तत्र सेव्यसेवकरूपाणां घर्षणम् । घर्षान्तरे
क्रमप्राप्ता सेव्यसेवकता । द्वीपान्तरसमाचारः । शिष्टद्वीप
समाचारः । लोकालोकगिरिव्यवस्था । रवेर्गमनमांद्यादिप्रकारः ।
सोमादीनां गत्यनुसारेण विविधं फलम् । ध्रुवमण्डलसंस्थानम् ।
राहुमण्डलस्य सूर्यचन्द्रोपरागश्च । तलादेवर्षणम् । तलातलस्थितिः ।
नरकस्वरूपम् । पातकोपपादनम् । शिष्टानां नरकाणां घर्षणम् ।
देव्याराधनम् ।

नवमस्कन्धे :—

संक्षेपेण शक्तिघर्षणम् । पंचप्रकृतिसंभवः । देवतादिसृष्टिः ।
सरस्वतीस्तोत्र पूजादि । धर्मात्मज्ञेन नारदाय सरस्वती महास्तोत्र
कथनम् । लक्ष्मीगंगा भारतीनां जन्म पृथ्वील्लोके । तासां
शापोद्धारप्रकारः । गङ्गादीनां समुत्पत्तिः कर्ली यर्त्तनञ्च । शक्यु-
त्पत्तिप्रसङ्गतोभूमिशक्तेः समुत्पत्तिः । घरादेव्या अपराधेष्टेसति-
नरकादि फलप्राप्तिकथनम् । गङ्गोत्पत्तिः । ५१ -
संभवाया गङ्गाया गोलोके समुत्पत्तिः । जाह्नवी नारदाय

जातेति कथनम् । गङ्गाविष्णवोः परपर सम्बन्धकरणम् । तुलस्युपाख्यानप्रश्नः । महालक्ष्म्या राजगृहे जन्म । धर्मध्वज-सुतायास्तुलस्याः कथा । शङ्खचूडेनतुलस्याः सङ्गतिः संवादश्च । तयोर्विवाहानन्तरं देवानां वैकुण्ठगमनम् । शङ्खचूडस्य देवैः सह संग्रामः । शङ्खचूडमहेशयोर्युद्धम् । युद्धारम्भः । जनार्दनेन शङ्खचूडस्य कवचहरणम् । तुलसीसंगमवर्णनं तन्माहात्म्यञ्च । महामन्त्र सहितं तुलसीपूजनम् । सावित्र्याख्यानम् । तस्या राजोदरेजन्म । अध्यात्मप्रश्नः । दानधर्म फलम् । नानादान फलम् । सावित्र्य-मूलशक्ति महामन्त्रदानम् । पातकानां फलानि । कुण्डेषु ये पतन्ति तेषां लक्षणम् । अवशिष्टानां कुण्डानां कथनम् । पुनरपि शिष्टानां कुण्डानां कथनम् । देवीभक्त्या यमपुरीत्रयनाश कथनम् । कुण्डानां लक्षणम् । देवीमहोत्कर्षः । महालक्ष्म्याख्यानम् । लक्ष्मी-जन्मादेर्नारदाय कथनम् । शक्रस्य ब्रह्मलोकं प्रति गमनम् । महालक्ष्म्यर्चनक्रमादि । स्वाहाशक्तिरूपाख्यानम् । स्वधायाः समुपाख्यानम् । दक्षिणाया उपाख्यानम् । षष्ठी देव्याउपाख्यानम् । मंगलचण्ड्याः कथा । मनसायाः कथास्तोत्रादि । सुरभ्याख्यानम् । राधाया दुर्गायाश्च चरित्रम् ।

दशमस्कन्धे :—

मनो.स्वायम्भुवस्याख्यानम् । भगवत्या विन्ध्याद्रिगमनम् । विन्ध्येन भानुमार्गनिरोधः । वृषध्वजस्तुतिस्तस्मै वृत्तान्तकथनञ्च । महाविष्णुस्तोत्रम् । भगस्त्येन देवी प्रार्थनातोविन्ध्याद्रेर्वृद्धि कुण्टनम् । मुनिता विन्ध्यवृद्धिकुण्टनम् । स्वारोचिपस्य मनोः कथा ।

चाक्षुषस्य मनोः कथा । सावर्णेर्मनोः कथा । महाकालीचरितम् ।
महालक्ष्मीमहासरस्वत्योश्चरितम् । नवमादि मनूनां चरित्र
घर्णनम् ।

एकादशस्कन्धे :—

प्रातःशुच्यम् । शौचादि विधिः । स्नानादि विधिः स्नात
धारण महिमा च । शूद्राक्षाणां वदुविधन्व कथनम् । जपमाला
विधानम् । स्नात महिमा । एकवक्त्रादि स्नाक्षाणां घर्णनम् ।
भूत शुद्धिः । शिरोव्रतविधानम् । गौण भस्मादि घर्णनम् ।
तस्य त्रिविधत्वं माहात्म्यञ्च । भस्म धारण विस्तरः । भस्मनो-
महिमा । विभूति धारण माहात्म्यम् । त्रिपुंड्रोर्ध्व पुण्ड्रयोर्महिमा ।
सन्ध्योपासनम् । सन्ध्यादि शुच्यम् । पूर्णोपचारादि कथनम् ।
मध्याह्न संध्या करणम् । ब्रह्मयज्ञादिकम् । गायत्री पुरश्चरणम् ।
वैश्वदेवादिकम् । भोजनान्ते करणीयं तप्तशुद्धादि लक्षणञ्च ।
फाम्यकर्म संग्रहणं प्रायश्चित्तविधानञ्च ।

द्वादशस्कन्धे :—

गायत्र्या ऋष्यादि कथनम् । घर्णानां शस्त्र्यादि । जगन्मानुः
कथनम् । गायत्री हृदयम् । गायत्री स्तोत्रम् । गायत्री नाम
सहस्रम् । व्रीक्षा विधिः । केनोपनिषत्कथा । गौतम शापेन
ब्राह्मणानामन्यदेवतोपासनश्रद्धा । द्वीप घर्णनम् । पद्मरागादि
निर्मित प्राकार घर्णनम् । चिन्तामणि गृह घर्णनम् । जनमेजयेन
देर्वा मरयकरणम् । उपसंहारः पुराण फलदर्शनञ्च ।

संस्काराणाञ्च सर्वेषां लक्षणञ्चात्रकीर्तितम् ।
 पक्षत्यादितिर्यानाञ्च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः ।
 अष्टमाद्याः शेषकल्पा वैष्णवेपर्वणि स्मृताः ।
 शैवे च कामतोभिन्ना सौरेर्यान्त्यकथाचयः ।
 प्रतिसर्गाब्दयं पश्चाद्भानाग्न्यानसमाचितम् ।
 पुराणस्योपसंहारः सहितं पर्व पञ्चमम् ।
 एषु पञ्चसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणो महिमाधिकः ।

द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चम पर्वणुः—

“धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापिशिवस्य च ।
 द्वितीये च तृतीये च सौरो धर्मं चतुष्टये ।
 प्रतिसर्गाब्दयन्त्वान्त्यं प्रोक्तं सर्वं कथाचितम् ।
 एतद्भविष्यं निर्दिष्टं पर्वत्यासेन धीमता ।
 चतुर्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम् ।
 भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम् ।
 गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि श्रुतिः” ।

तत्फलश्रुतिः :—

तद्विष्णुत्वा तु यो दद्यात्सौम्यां विद्वान्विमन्सरः ।
 गुडधेनुयुतं हेम घस्रमाल्यविभूषणैः ।
 पाचकम्पुस्तकञ्चापि पूजयित्वा विधानतः ।
 गन्धाद्यैर्मौज्यमश्वैश्च कृत्वानीराजनादिकम् ।
 यो वै जितेन्द्रियो भूत्वा सोपवासः समाहितः ।
 अथवा यो नरो भक्त्या कांतयेच्छृणुयादपि ।

भविष्यपुराणम्

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च नारदीय पुराणे ४ पा० १०० अ

उक्ता यथा .—

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि पुराणसर्वसिद्धिदम् ।
भविष्य भवत सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम् ॥
तत्राह सर्वदेवानामादिकर्ता समुद्यत ।
सृष्ट्यर्थं तत्र सञ्जातोमनु स्वायम्भुव पुरा ॥
स मा प्रणम्यपप्रच्छ धर्मं सर्वार्थसाधकम् ।
अह तस्मै तदाप्रीत प्रावीच धर्मसहिताम् ॥
पुराणाना यदाव्यासो व्यासञ्चक्रेमहामति ।
तदा ता सहिता सर्वा पञ्चधा व्यभजन्मुनि ॥
अधोऽरकल्पवृत्तान्तनानाश्चर्यकथाचिताम् ।’

तत्र प्रथम पर्वाणि :—

“तत्रादिम रमृत पर्वा ग्राह्य यत्रास्त्युपक्रम ।
सुतशानकसम्वादे पुराणप्रश्न सध्रम ।
आद्रित्य चरित प्राय सचारयान समाचित ।
सृष्ट्यादि लक्षणोपेत शास्त्रसर्वसरूपक ।
पुस्तकेष्वेतेषां लक्षणञ्च ततपरम् ।

प्रयोगाः कथञ्चैव सहस्रं स्तोत्रमेव च ।
गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात् ।
सनत्कुमार मुनिना नारदाय तृतीयके ।”

पूर्वभागे चतुर्थपादे :—

पुराण लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च ।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकाल पुरःसरम् ।
त्रैत्रादि सर्वमासेषु तिथीनां च पृथक् पृथक् ।
प्रोक्तम्प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम् ।
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके ।
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यान सञ्ज्ञितः ।”

तदुत्तरभागे :—

अस्योत्तरेविभागेतु प्रश्न एकादशी व्रते ।
घशिष्टेनाथ सम्पादो मान्धातुः परिकीर्तितः ।
श्वमाङ्गद् कथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
घसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ।
गंगा कथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्यामाहान्म्यमनुलम्पुरगोत्तम घर्षणम् ।
यात्रा विधानं क्षेत्रस्य घद्गात्र्यानसमन्वितम् ।
प्रयागम्याथ माहान्म्यं कुरुक्षेत्रस्यत्तपरम् ।
हरिद्वारस्य चारुधानं कामोदात्र्यानकन्तया ।
यदरीर्तयमाहान्म्यं कामात्र्यायास्तथैव च ।

स मुक्तं पातकैर्घोरैः प्रयाति ब्रह्मण पदम् ।
योऽप्यनुक्रमणीमेता भविष्यस्य निरूपिताम् ।
पठेद्वा शृणुयाच्चैतौ भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दत ।

नारदीय पुराणम्

तद्विषयाश्च :—

“शृणु विप्र । प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहच्चित्रकथाश्रयम् ॥ १ ॥

तत्रपूर्वभागे प्रथमपादे :—

“सूत शौनक सम्वाद सृष्टि सक्षेप घर्णनम् ।
नानाधर्मकथा पुण्या प्रवृत्ते समुदाहृता ।
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना ।”

पूर्वभागे द्वितीयपादे :—

“द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ।
वेदाङ्गानाञ्च कथन शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् ।
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ।”

पूर्वभागे तृतीयपादे :—

महातन्त्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम् ।
मन्त्रार्णा शोधन दीक्षा मन्त्रोद्धारश्च पूजनम् ।

प्रयोगाः फघचंचैव सहस्रं स्तोत्रमेव च ।
गणेशसूर्यचिष्णूनां शिवशक्त्योरनुकमात् ।
सनत्कुमार मुनिना नारदाय तृतीयके ।”

पूर्वभागे चतुर्थपादे :—

पुराण लक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च ।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकाल पुरःसरम् ।
चैत्रादि सधमासेषु तिथीनां च पृथक् पृथक् ।
श्रोक्तप्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम् ।
सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके ।
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदारण्यक सञ्ज्ञितः ।”

तदुत्तरभागे :—

अस्योत्तरेचिभागेतु प्रश्न एकादशी व्रते ।
वशिष्टेनाथ सम्वादी मान्धातुः परिकीर्तितः ।
रुद्रमाङ्गद कथापुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
चमुरशापश्च मोहिन्यै पञ्चादुद्धरणक्रिया ।
गंगा कथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
फाश्यामाहान्म्यमतुलम्पुरुशोत्तम घर्षणम् ।
यात्रा विधानं श्रेयस्य बह्वारण्यकसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथ माहान्म्यं कुरुश्रेयस्यत्परम् ।
हरिद्वारस्य चारण्यकं कामोद्राग्यानकन्तथा ।
बदरीतीर्थमाहान्म्यं कामारण्यायास्तथैव च ।

प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणारव्यानकन्तथा ।
गौतमाख्यानकम् पश्चाद् वेदपादस्तवस्ततः ।
गोकर्णक्षेत्र माहात्म्यं लक्ष्मणारव्यानकं तथा ।
सेतु माहात्म्य कथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ।
अचन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्तत परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसो ईह्यान्तिरेगतिः ।
मोहिनीचरितम् पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

तत्फलश्रुतिः :—

यः शृणोति नरोभक्त्या श्रावये द्वासमाहितः ।
स याति ब्रह्मणो धाम नात्र कार्याधिचारणा ।
यस्त्वेतदिपपूर्णायां धेनूना सप्तकाचितम् ।
प्रदद्याद्द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च ।
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत् ।
शृणुयाद्द्वैक चित्तेन सोऽपिस्वर्गगतिलभेत् ।

मार्कण्डेय पुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च नारदपुराणे पूर्वभागे

८७ अ० उक्ता यथा :—

“यत्राधिरुत्य शकुनीन् सर्वधर्म निरूपणम् ।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम् ॥

पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्म निरूपणम् ।
 पूर्वजन्मकथा चैषां विप्रिया च दिवस्पतेः ॥
 तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रोपदेयकथानकम् ।
 हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीवकाभिधम् ॥
 पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा नतः ।
 द्रुह्यस्याथ चरितं महाख्यानसमाचितम् ॥
 मदालसाकथा प्रोक्ता ह्यलकाचरिताचिता ।
 सृष्टिमंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम् ॥
 कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षमसृष्टिनिरूपणम् ।
 शूद्रादिस्त्रिप्युक्ता द्रोपदपर्यानुकीर्तनम् ॥
 मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः ।
 तासु दुर्गाकथान्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे ॥
 तत्पश्चात्प्रणयोत्पत्तिस्त्रयोतेजः समुद्भवः ।
 मार्त्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमाचिता ॥
 वैषस्यतान्ययश्चापि घटसव्याश्चरितं ततः ।
 घनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः ॥
 अविक्षिण्णरितं चैव किमिच्छ्य द्रुतकीर्तनम् ।
 नरिष्यन्तस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः ॥
 तुलस्याश्चरितं पद्मद्रामचन्द्रस्य सत्कथा ।
 कुरावंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ॥
 पुरुरवः कथा पुण्या नद्रूपस्य कथादुता ।
 यथाति चरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ॥

श्रीकृष्ण बालचरितं माशुरं चरितं ततः ।
 द्वारकाचरितञ्चाय कथा सर्वाघतारजा ॥
 ततः सांख्यसमुद्देश प्रपञ्चासत्वकीर्त्तनम् ।
 मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।
 यः शृणोति नरोभक्त्या पुराणमिदमादरात् ।
 मार्कण्डेयाभिधं वत्स स लभेत्परमां गतिम् ॥
 यस्तु व्याकुरुने चेतच्छैवं स लभते पदम् ।
 तत्प्रयच्छेद्द्वि खित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ॥
 कार्त्तिक्यां द्विजवर्षाय स लभेद्ब्रह्मणः पदम् ।
 शृणाति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणामिमाम् ॥
 मार्कण्डेय पुराणस्य सलभेद्वाञ्छितम्फलम् ।

अग्निपुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च—

भगवतोऽवतारः, सृष्टिप्रकारः, विष्णुपूजा, अग्निपूजा, मुद्रादि-
 लक्षणम्, दीक्षा, अभिषेकः, मण्डपलक्षणम्, कुशमार्जनविधिः,
 पवित्रारोपः, देवतायतनादिनिर्माणप्रकारः, शालग्रामलक्षणपूजे,
 देवप्रतिष्ठानियामरुदीक्षा, देवप्रतिष्ठाविधि, ब्रह्माण्डस्वरूपं, गङ्गा-
 दितीर्थमाहात्म्यं, दीपार्णनम्, ऊर्ध्वाधोलोकवर्णनम्, ज्योतिश्चक्र-
 स्वरूपम् । युद्धजयोपायशुक्रमविधानम्, यन्त्रमन्त्रीषधप्रकारः,

कुञ्जिकार्चनविधिः, कोटिहोमविधानम्, ब्रह्मचर्यधर्मः, श्राद्ध-
 कल्पः, ग्रहयज्ञः, वैदिकस्मार्त्तकर्मणी, प्रायश्चित्तम्, तिथिभेदे-
 यतमेदः, चारयत नक्षत्रव्रते, मासव्रतम्, दीपदानविधि, नूतन-
 व्यूहारम्मादि, नरक निरूपणम्, ढानत्रतम्, नाडी चक्रम् । सन्ध्या-
 विधिः, गायत्र्यर्थः, शिखस्तोत्रं, राज्याभिषेकः, राजधर्मः,
 राजाध्येय शास्त्रम्, शुभाशुभशकुनादि, मण्डलादि, रमणदीक्षा-
 विधिः, श्रीरामनति, रत्नलक्षणम्, धनुर्विद्या, व्यवहारविधिः,
 देवासुरयोर्युद्धम्, आयुर्वेदः, गजादिचिकित्सा, पूजाप्रकारः ।
 शान्तिविधि, छन्द शास्त्रम्, साहित्यम्, शिष्टानुशासनम्,
 सृष्ट्यादि प्रलयवर्णने, शारीरिकरूपम्, नरकवर्णनम्, योग, ब्रह्म-
 ज्ञानम्, पुराणमाहात्म्यञ्च ।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणम्

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च बृहन्नारदीये ४ पा० १०१ अ०

उक्ता यथा—

ब्रह्मोवाच— शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव ।
 ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम वेदमार्गानुदर्शकम् । सावर्णिर्यत्र भगवान्
 साक्षाद्देवर्षयेऽतिथिः । नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम् ।
 धर्मार्थं काममोक्षान् सारं प्रीतिर्हरी हरे । तयोस्मेदसिद्धयर्थं
 ब्रह्मवैवर्त्तमुत्तमम् ।

- रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
शतकोटि पुराणं तत् संक्षिप्य ग्राह्येदचित् ॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्ते संज्ञितम् ।
अष्टादश सहस्रन्तत्पुराणं परिकीर्तितम् ॥
ब्रह्म १ प्रकृति २ विष्णेश ३ कृष्ण खण्ड ४ समाचितम् ।
तत्र सूतर्षिसम्वादः पुराणोपक्रमो मतः ॥

तत्रप्रथमे ब्रह्मखण्डे :—

सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः ।
विवादः सुमहान् यत्र द्वयोरासीत्पराभवः ॥
शिवलोकगतिं पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवान्मुनेः ।
शिववाक्येन तत्पश्चात् मरीचेनारदस्य तु ॥
मननञ्चैव सार्वर्णिर्ज्ञानार्थं सिद्धसेविते ।
आश्रमे सुमहापुण्ये त्रैलोक्याश्चर्यकारिणि ॥
एतद्धि ब्रह्मखण्डं हि श्रुतं पापविनाशनम् ।

द्वितीये प्रकृति खण्डे :—

“ततः सार्वर्णिसम्वादो नारदस्य समीरितः ।
कृष्णमाहात्म्यसंगुक्तो नानाध्यानकथोत्तरः ॥
प्रकृतेरंशभूतानां फलानाञ्चापि घटितम् ।
माहात्म्यं पूजनाद्यञ्च विस्तरेण यथास्थितम् ॥
एतत्प्रकृतिखण्डं हि श्रुतं भूतिविधायकम् ।

तृतीये गणेश खण्डे :—

गणेशजन्मसम्प्रश्न. सपुण्यकमहावृतम् ।

पार्वत्या कार्त्तिभेदेन सह चिञ्जेशसम्भव ॥
 चरित कार्त्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् ।
 विवाद सुमहान्पश्चाज्जामदग्न्यगणेशयो ॥
 एतद्विञ्जेशखण्ड हि सर्वं विघ्नचिनाशनम् ।”

चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डे :—

“श्रीकृष्णजन्म सम्प्रश्नो जन्मारयात् ततोऽद्भुतम् ।
 गोकुले गमन पश्चात्पूतनादिवधोऽद्भुत ॥
 बाल्यकौमारजा लीलाविविधास्तत्र वर्णिता ।
 रासक्रीडा च गोपीभि शारदी समुदाहृता ॥
 रहस्ये राधया क्रीडा वर्णिता बहुविस्तरा ।
 सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरा गमन हरे ॥
 कसादीना वधे घृत्ते सन्स्यद्विजससृष्टि ।
 काश्य सान्दीपने पश्चाद् विद्योपादानमद्भुतम् ॥
 यवनस्य वध पश्चाद् द्वारकागमन हरे ।
 नरकादि वधस्तत्र वृष्णेन विहितोऽद्भुत ॥
 कृष्णखण्डमिद् विप्र । नृणां ससार खण्डनम् ।

तत्फलश्रुति :—

“पठितञ्च श्रुत ध्यातं पूजित चाभिवर्णितम् ।
 इत्येतद् ग्रहयैवत्तं पुराण चात्यलौकिकम् ॥
 व्यासोक्तं चादिसम्भूत पठन् शृण्वन् विमुच्यते ।
 विज्ञानज्ञानशमनाद् घोरात्ससारसागरात् ॥

लिखित्वेदं च यो दद्यान्माध्यां धेनुसमाचितम् ।
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति स मुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ॥
 यश्चानुक्रमणी चाऽपि पठेद् वा शृणुयादपि ।
 सोऽपि कृष्णप्रसादेन लभते चाञ्छितम्फलम् ॥

लिङ्गपुराणम्

व्यास प्रणीते महापुराणे प्रतिपाद्य विषयाः

नारदपुराणे १०२ अ० उक्ता यथा :—

ब्रह्मोवाच ।

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि पुराणं लिङ्गसंज्ञितम् ।
 षट्तरं शृण्वताञ्चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥
 यच्चलिङ्गाभिधे तिष्ठन् घट्टिलिङ्गे हरोऽभ्यधात् ।
 मह्यं धर्मादिसिद्धपर्यमग्निकल्पकथाश्रयम् ॥
 तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम् ।
 पुराणं लिङ्गमुदितं यद्वाऽप्यानविचित्रितम् ।
 तदेकादशासाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम् ।
 परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये ।
 पुराणोपक्रमेप्रश्नः सृष्टि संक्षेपतः पुरा ॥

सत्र पूर्वभागे—

योगाख्यानं ततः प्रोक्तं ब्रह्माख्यानं ततः परम् ।
 लिङ्गोद्घपरस्तदर्शा च कीर्तिता हि ततः परम् ॥

सनत्कुमारशैलादि संवाद्श्चाथ पावनः ।
 ततो दधीचिचरितं युगधर्मनिरूपणम् ॥
 ततो भुवनकोपाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः ।
 ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकस्तथा ॥
 लिगप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ।
 शिवत्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम् ॥
 प्रायश्चित्तान्परिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम् ।
 अन्धकारख्यानकंपश्चात् धाराहचरितं पुनः ॥
 नृसिंहचरितं पश्चाज्जलन्धरवधस्ततः ।
 शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम् ॥
 कामस्य दहनं पश्चात् गिरिजायाः करग्रह ।
 ततो विनायकाख्यानं नृत्याख्यानं शिवस्य च ॥
 उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः ।”

उत्तर भागे—

विष्णुमाहात्म्यकथनमभ्यरीपकथा ततः ।
 सनत्कुमारनन्दीशसम्वाद्श्चपुनर्मुने ॥
 शिवमाहात्म्यसंयुक्तस्नानयागादिकं ततः ।
 सूर्यपूजाविधिश्चैत्र शिवपूजा च मुक्तिदा ॥
 दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणन्ततः ।
 प्रतिष्ठा तत्र गदिता ततोऽघोरस्य फीर्त्तनम् ॥
 ब्रह्मेश्वरी महाविद्या गायत्री महिमा ततः ।
 श्रम्यकस्य च माहात्म्यं पुराणध्रुवणस्य च ॥

एतस्योपरिभागस्ते लिंगस्य कथितो मया ।
 व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचिनः ॥
 लिखित्वैतत्पुराणन्तु तिलधेनुसमाचितम् ।
 फाल्गुन्यां पूर्णिमायां यो दद्याद्भक्त्या द्विजातये ॥
 यःपठेच्छृणुयाद्वापि लेङ्गं पापापहं नरः ।
 समुक्तभोगोलोकेऽस्मिन्नन्ते शिवपुरम्भजेत् ॥
 लिंगानुकमणीमेतां पठेद्यः शृणुयात्तथा ।
 तावुमौ शिवभक्तौ तु लोकद्वितयमोगिनौ ॥
 जायेतां गिरिजाभर्तुः प्रसादान्नात्र संशयः ।

वराहपुराणम्

तद्विषयाश्च नारदीय पुराणे पूर्वभागे बृहद्गुपाख्यानै
 चतुर्थभागे १०३ अध्याये उक्ता यथा :-

श्री ब्रह्मोवाच

'शृणु घटस ! प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम् ।
 भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम् ।
 मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा ।
 निययन्च पुराणेऽस्मिन्नुत्तुर्विंशसहस्रके ॥
 व्यासो हि चिदुपां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि ।
 तत्रादौशुमसंघादःस्मृतोभूमिधराहयोः ।'

तत्र पूर्व भागे :—

“अथादिकृतवृत्तान्ते रम्यस्यचरितं ततः ।
 दुर्जयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्पउदीरितः ॥ :
 महातपस आर्यानं गौर्युत्पत्तिस्तत परम् ।
 विनायकम्य नागाना सेनान्यादित्ययोरपि ॥
 गणानाञ्च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च ।
 आर्यानं सत्यतपसो ब्रतार्यानसमन्वितम् ॥
 अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्बुद्धगीता प्रकीर्तिता ।
 महिषासुरविध्वंसे माहात्म्यञ्च त्रिशक्तिजम् ।
 पर्व्याध्यायस्तत श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम् ।
 इत्यादिकृतवृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम् ॥
 भगवद्भ्रमरं पश्चाद्बुद्धतार्थकथानकम् ।
 द्वात्रिंशदपराधानां प्रायाश्चित्तं शरीरम् ॥
 तीर्थानाञ्चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम् ।
 मथुराया विदोषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः ॥
 घर्णनं धमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः ।
 विपाकः कर्मणाश्चैव विष्णव्रत निरूपणम् ॥
 गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम् ।
 इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य निरूपितः ॥

उत्तरभागे :—

उत्तरे प्रथिभागे तु पुत्रस्त्यक्रुराजयो ।
 संवादे सर्वतीर्थाना माहात्म्यं विस्तरात्पृथक् ॥

अशेषधर्माश्चारयाता पौष्करपुण्यपर्व च ।
इत्येव तव धाराह प्रोक्तं पापविनाशनम् ।

तत्फलश्रुतिः :—

पठता शृण्वताञ्चैव भगवद्भक्ति रद्धानम् ।
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमाचितम् ॥
लिखित्वैतच्च यो दद्याच्चैत्र्या विप्राय भक्तिः ।
स लभेद्विष्णव धाम देवर्षिगणवन्दित ॥
यो घानुकमणीमेता शृणोत्यपि पठत्यपि ।
सोऽपि भक्तिं लभेद्विष्णौ संसारोच्छेदकारिणीम् ॥

वामन पुराणम्

तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च नारद पुराणे उक्ता यथा :—

ब्रह्मोवाच ।

“शृणुवत्स ! प्रवक्ष्यामि पुराण वामनाभिधम् ।
त्रिधिक्रम चरित्राढ्य दशसाहस्रसरयकम् ॥
कूर्मकल्प समारुयान धर्मत्रयकथानकम् ।
भागद्वय समायुक्त चकृत् श्रोतु शुभावहम् ॥”

तत्र पूर्वं भागे :—

“पुराणप्रश्न प्रथम ब्रह्मशीर्षच्छिदा तत ।
कपालमोचनारुयान दक्षयज्ञविहिंसनम् ॥
हरस्य कालरुवारुया कामस्य दहनन्तत ।

प्रह्लाद नारायणयो र्युद्धं देवासुराह्वयम् ॥
 सुकैश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोपकम् ।
 ततः काम्यव्रतारण्यं श्रीदुर्गाचरितं ततः ॥
 तपती चरितं पश्चात्कुल्लेत्रस्य घर्षणम् ।
 सरोमाहात्म्यमतुलं पार्वती जन्म कीर्त्तनम् ॥
 तपस्तस्या विवाहश्च गौर्युपाख्यानकन्ततः ।
 ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः
 ततोऽन्धकघ्नाख्यानं साध्योपाख्यानकन्ततः ।
 जाबालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता ॥
 अन्धशेखरयोर्युद्धं गणत्वंचान्धकस्य च ।
 मरुतां जन्म कथनं बलेश्च चरितं ततः ॥
 ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममत परम् ।
 प्रह्लाद तीर्थ यात्रायां प्रोच्यन्ते तत्कथाः शुभाः ॥
 ततश्च धुन्धु चरितं प्रेतोपाख्यानकततः ।
 नक्षत्र पुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ॥
 त्रिविक्रम चरित्रान्ते ब्रह्मप्रोक्तः स्तमोत्तमः ।
 प्रह्लादबलिसंवादे सुतले हस्त्रिसनम् ॥
 इत्येष पूर्वं भागोऽस्य पुराणस्य ततोदितः ॥”

तदुचरे भागे बृहद्दामनाख्ये :—

शृणुतस्योत्तरं भागं बृहद्दुयामन सञ्ज्ञकम् ।
 मादेश्वरी भगवती सौरी गणेश्वरी तथा ॥
 चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ।

माहेश्वर्यान्तु कृष्णस्य सद्भक्तानाञ्च कीर्तनम् ॥
 भागवत्याजगन्मातुरवतारकथाद्भुता ।
 सौर्व्या सूर्यस्य महिमा गदित पापनाशन ॥
 गणेश्वर्यां गणेशस्य चरितश्च महेशितु ।
 इत्येतद् घामन नाम पुराण सुविचित्रकम् ॥
 पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ।
 ततो नारदत प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ॥
 व्यासात्तु लब्धवान् घत्स तच्छिष्यो रोमहर्षण ।
 स चाख्यास्यति विप्रेभ्योनैमिषीयेभ्य एव च ॥
 एव परम्पराप्राप्तं पुराण घामनं शुभम् ॥”

तत्फलश्रुति :—

“ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेऽपियान्ति परागतिम् ।
 लिखित्वैतत्पुराणन्तु य शरद्विपुत्रेऽर्पयेत् ॥
 विषाय वेदविदुष घृत्रेणुसमाचितम् ।
 स समृद्धय नरकान्तयेत्स्वर्गं पितृन् स्वकान् ॥
 देहान्ते भुक्तभोगोऽसौ याति विष्णो परम्पदम् ।

मत्स्यपुराणम्

तत्प्रतिपाद्य त्रिपयाश्च तत्रैव २६० अध्याय उक्ता यथा—

सूतउवाच ।

एतद् कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।

मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥
 यत्रादौ मनुसम्वादे ब्रह्माण्ड कथनन्तथा ।
 सांख्यं शरीरकम्प्रोक्तं चतुर्मुखासुखोद्भवम् ॥
 देवासुराणामुत्पत्तिर्मास्तोत्पत्तिरेव च ।
 मदनद्वादशीतद्वल्लोकपालामिपूजनम् ॥
 मन्यन्तराणामुद्देशो वैश्वराजाभिवर्णनम् ।
 सूर्याष्टैवस्यतोत्पत्तिर्बुधस्यागमनन्तथा ।
 पितृवंशानुकथनं ध्राद्वकाऽस्तथैव च ॥
 पितृतीर्थप्रयासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च ।
 कीर्त्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा ॥
 कार्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्त्तनम् ।
 भृगुशापस्तथा विष्णोर्द्वैत्यशापस्तथैव च ॥
 कीर्त्तनं पुरुपेशस्य वंशो हौताशनस्तथा ।
 पुराणकीर्त्तनं तद्वन् क्रियायोगस्तथैव च ॥
 व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्कण्डशयनं तथा ।
 कृष्णाष्टमीव्रतंतद्वद्रौहिणी चन्द्रसंज्ञितम् ॥
 तडागविधिमाहात्म्यं पादयोःसर्ग एव च ।
 सौभाग्य शयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च ॥
 तथानन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा ।
 आर्द्रानन्दकरी तद्वदुव्रतं सारस्वतं पुनः ॥
 उपरागामिपेकश्च सप्तमीग्नपनं पुन ।
 भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयन तथा ॥

अशून्यशयन तद्वत्तथैवागारक व्रतम् ।
 सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशी तथा ॥
 मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च ।
 ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी ॥
 तथा सर्वफलत्याग सूर्यवारव्रत तथा ।
 सक्रान्तिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशी व्रतम् ।
 षष्टि व्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः ॥
 प्रयागस्य तु माहात्म्यं सर्वतीर्थानुकीर्तनम् ।
 पैलाश्रमफलं तद्वद् द्वीपलोकानुकीर्तनम् ॥
 तथान्तरिक्षवारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च ।
 भवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुरायोधनं तथा ॥
 पितृपिण्डदमाहात्म्यं मन्वन्तर चिनिर्णय ।
 घञ्जाङ्गस्य तु सम्भूति तारकोत्पत्तिरेव च ॥
 तारकासुरमाहात्म्यं ग्रहदेवानुकीर्तनम् ।
 पार्वतीसम्भवस्तद्वत् तथा शिवतपोवनम् ॥
 अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च ।
 गौरीतपोवनं तद्वद्विश्वनाथप्रसादनम् ॥
 पार्वतऋषिसम्पादस्तथैवोद्गाहमङ्गलम् ।
 कुमारभग्मपतद्वत् कुमारविजयस्तथा ॥
 तारकस्य घघो घोरो नरसिंहोपवर्जनम् ।
 पद्मोद्भवपिसर्गस्तु तथेयान्ध्रपघातनम् ॥
 पाराजस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदापारतथैव च ।

प्रवरानुक्रमस्तद्वचत् पितृनाथानुकीर्त्तनम् ॥
 ततोभयमुखोदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ।
 तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च ॥
 यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्त्तनम् ।
 धामनस्य तु माहात्म्यं तथैवादिवराहकम् ॥
 क्षोरोदमथनं तद्वत्कालकूटामिशासनम् ।
 प्रासादलक्षगन्तद्वन्मण्डपानान्तु लक्षणम् ॥
 पुरुवंशे तु सम्प्रोक्तं भविष्यद्राजवर्णनम् ।
 तुलादानादि बहुशो महादानानुकीर्त्तनम् ॥
 कल्पानुकीर्त्तनं तद्वद्दुप्रन्थानुक्रमणी तथा ।
 एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्त्तिविवर्धनम् ॥
 एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ।

अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः ।
 नारायणारत्यं पदमेति नूतमनद्गवद्विष्यसुखानि भुङ्क्ते ॥

कूर्म पुराणम्

व्यास प्रणीतेषु अष्टादश महापुराणेषु पञ्चदशे पुराणे
 तत्प्रतिपाद्य विषयाश्च बृहन्नारदीये दर्शिता यथा :—
 श्री ब्रह्मोवाच—

शृणु वत्स ! मरीचेऽद्य पुराणं कूर्मं संक्षिप्तम् ।
 लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यञ्च पृथक् पृथक् ।

इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन प्राहर्षिभ्यो दयाधिकम् ॥

तत्सप्तदशसाहस्रं सचतुःसंहितं शुभम् ।

यत्र ब्राह्मणा(संहिता)पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने ॥

नानाकथाप्रसङ्गेन नृणां सदुक्तदायकाः ।”

तत्पूर्व भागे—

“तत्र पूर्व विभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा ।

लक्ष्मीप्रद्युम्नसम्वादः कूर्मर्षिगणसङ्ख्या ॥

वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्तनम् ।

कालसंहया समासेन लयान्ते स्तवनं विभोः ॥

ततः सङ्क्षेपतः सर्गः शाङ्करचरितं तथा ।

सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम् ॥

भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च ।

देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञाहृतिस्ततः ॥

दक्षसृष्टि कथा पश्चात् कश्यपान्वयकीर्तनम् ।

आत्रेयवंशकथनं कृष्णाय चरितं शुभम् ॥

माकर्कण्डरुष्णसंवादो व्यासपाण्डवसंकथा ।

युगधर्मानुकथनं व्यासजैमिनिकी कथा ॥

घाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम् ।

त्रैलोक्यवर्गनञ्चैव वेदशास्त्रानिरूपणम् ॥”

तदुत्तर भागे—

उत्तरेणस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ।

व्यासपाता ततः प्रोक्ता नाना धर्मप्रबोधिनी ॥

नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यञ्च पृथक् ततः ।

नानाधर्म प्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता ॥

अतः परं भगवती संहितार्थनिरूपणे ।

कथिता यत्र घर्णानां पृथग् वृत्तिरुदाहृता ॥

तदुत्तर भागे भगवत्याख्यद्वितीयसंहितायाः पञ्चसु पादेषु—

“पादेऽस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।

सदाचारात्मिका घत्स ! भोगसौख्यविवर्दिना ॥

द्वितीये क्षत्रियाणान्तु वृत्तिः सम्यक्प्रकीर्तिता ।

यया त्वाध्रितया पापं विघ्नयेह व्रजेद्विचम् ।

तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ।

यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम् ॥

चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।

यया सन्तुष्यति भ्राशो नृणां श्रेयो विचर्द्धनः ॥

पञ्चमेऽस्यान्ततः पादे वृत्ति सङ्करजन्मनाम् ।

यया चरितयाऽऽप्नोति भाविनोनुत्तमांजनिम् ॥

इत्येण पञ्चपाद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ।

तृतीयाप्रोदिता सौरो नृणां कामविधायिनी ।

षोढा षट्कर्मसिद्धि सा चाध्रयन्ती च कामिनाम् ।

चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता ।

चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षाद् ग्लस्यरूपिणी ।

ताः श्रमात् षट्चतुर्दशैः साहस्राः परिकीर्तिताः ॥

तत्फलश्रुतिः :—

“एतत्कूर्मपुराणन्तु चतुर्वर्गफलप्रदम् ।

पठता शृण्वता नृणा सर्वोत्कृष्टगतिप्रदम् ॥

लिखित्वैतत्तु यो भक्त्या हेमकूर्मसमन्वितम् ।

ब्राह्मणायायने दद्यात् स याति परमागतिम् ॥

स्कन्दपुराणम्

तन्प्रतिपाद्यविषयाश्च

श्री नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे

१०४ अध्याये उक्ता यथा

ब्रह्मोवाच ।

शृणु षड्ये मरीचे च पुराण स्कन्दसञ्ज्ञितम् ।

यस्मिन् प्रतिपद् साक्षान्महादेवो व्यवस्थित ॥

पुराणे शतकोटीं तु यच्छैव वर्णित मया ।

लक्षितस्यार्थंजातस्य सारो व्यासेन कीर्तित ॥

स्कन्दाह्वयस्यत्र खण्डा सप्तैव परिकल्पिता ।

एकाशीति सहस्रन्तु स्कान्द सर्वाववृन्तनम् ॥

य शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिव स्थित ।

यत्र माहेश्वरा धर्मा पण्मुनेन प्रकाशिता ।

षण्पे त पुराणैवृत्ता सर्वसिद्धिविधायिका ॥

तत्र माहेश्वर खण्डे :—

“तस्य माहेश्वरश्चाद्य खण्ड पापप्रणाशा ॥

किञ्चिन्न्यूनार्कसाहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः ।
 सुचरित्रशतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः ॥
 यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा ।
 दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिङ्गार्चनेफलम् ॥
 समद्रमथनारयानं देवेन्द्रचरितं ततः ।
 पार्वत्या समुपाख्यानं विवाहस्तदनन्तरम् ॥
 कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसङ्करः ।
 ततः पशुपताख्यानं बण्डाख्यानसमाचितम् ॥
 द्यूतप्रवर्त्तनारयानं नारदेन समागम ।
 ततः कुमारमाहात्म्ये पञ्चतीर्थकथानकम् ॥
 धर्मवर्म्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्त्तनम् ।
 इन्द्रद्युम्नकथा पञ्चात्राडीजङ्घकथाचिता ॥
 प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च ।
 महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः ॥
 ततस्तारकयुद्धञ्च नानारयानसमाचितम् ।
 घघश्च तारकस्याथ पञ्चलिङ्गनिवेशनम् ॥
 द्वीपाख्यानं ततः पुण्यं ऊर्ध्वलीफव्यवस्थितः ।
 ब्रह्माण्डस्थितिमानञ्च वर्करेशकथानकम् ॥
 महाकालसमुद्रभूतिः कथा चास्य महादुभुता ।
 घासुदेवस्य माहात्म्यं कोरितीर्थं ततः परम् ॥
 नानार्तीर्थसमाख्यानं गुनश्रेत्रे प्रकीर्त्तितम् ।
 पाण्डवानां कथापुण्या महाविद्या प्रसाधनम् ॥

तीर्थयात्रासमानिश्च फौमारमिदमद्भुतम् ।
 अरुणाचलमाहात्म्ये सनकब्रह्मसंकथा ॥
 गौरीतपःसमारुपानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम् ।
 महिषासुरजाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ॥
 शोणाचलेशिवारुपानं नित्यदा परिकीर्त्तनम् ।
 इत्येष कथितः स्कान्दे खण्डो माहेश्वरोऽद्भुतः ॥

द्वितीये वैष्णव खण्डे :—

द्वितीयो वैष्णवः खण्डस्तस्याख्यानानि मे शृणु ।
 प्रथमं भूमिवाराहं समारुपानं प्रकीर्त्तितम् ॥
 यत्र घोचकमुग्रस्य माहात्म्यं पापनाशनम् ।
 कमलाद्याः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥
 कुलालाख्यानकञ्चात्र सुवर्णमुखरी कथा ।
 नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता ॥
 मत्तद्भ्राज्जनसंवादः कीर्त्तितः पापनाशनः ।
 पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्त्तितं चोत्कले ततः ॥
 मार्कण्डेयसमारुपानमम्बरापस्य भूपते ।
 इन्द्रद्युम्नस्य चारुपानं विद्यापतिकथा शुभा ॥
 जैमिनेः समुपारुपानं नारदस्यापि वाडव ।
 नीलकण्ठसमारुपानं नारसिंहोपवर्गनम् ॥
 अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा ।
 रथयात्राविधिः पञ्चाङ्गनमस्नानविधिस्तथा ॥
 दक्षिणामूर्त्युंपारुपानं गुण्डवारुपानकं ततः ॥

रथरक्षा विधानञ्च शयनोत्सवकीर्तनम् ॥
 श्वेतोपायानमत्रोक्तं घट्टन्युत्सवनिरूपणम् ।
 श्लोत्सवो भगवतो घ्नं सांवत्सराभिधम् ॥
 पूजा च कामिमिर्विणोरुदालकनियोगकः ।
 मोक्षसाधनमत्रोक्तं तानायोगनिरूपणम् ॥
 दशावतारकथनं स्नानादि परिकीर्तनम् ।
 ततो बटुरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ॥
 शम्भ्यादि तीर्थमाहात्म्यं चैनेयशिलाभवम् ।
 कारणं भगवद्भासे तीर्थं कापालमोचनम् ॥
 पञ्चधाराभिधं तीर्थं मेरुमन्थापनं तथा ।
 ततः कार्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम् ॥
 धूम्रकोशसमाख्यानं दिनवृत्त्यानि कार्तिके ।
 पञ्चभीष्मप्रताख्यानं कीर्त्तिदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥
 तद्द्वयतस्य च माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा ।
 पुण्ड्रादिकीर्त्तनञ्चात्र मालाधारणपुण्यकम् ॥
 पञ्चामृतस्नानपुण्यं घण्टानादादिजं फलम् ।
 नानापुष्पाञ्चनफलं तुलसीदलजम्फलम् ॥
 नैरेयस्य च माहात्म्यं हरिवासन (२) कीर्त्तनम् ।
 श्रवण्डैकादशी पुण्यं तथा जागरणस्य च ॥
 मत्स्योत्सवविधानञ्च नाम माहात्म्यकीर्त्तनम् ।
 ध्यानादि पुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥

वनानां द्वादशानाञ्च माहात्म्यं कीर्तितं तत ॥
 श्रीमद्भुवणवतस्यात्र माहात्म्यं कीर्तितं परम् ।
 वज्रशाण्डिल्यसम्वाद्मन्तलीलाप्रकाशकम् ॥
 ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् ।
 नानारथानसमायुक्तं दशाध्याये निरूपितम् ॥
 ततो वैशाखमाहात्म्ये शय्यादानादिजम्फलम् ।
 जलदानादि विधयः कामारुख्यानमतः परम् ॥
 श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपारयानमद्भुतम् ॥
 तथाक्षयतृनायादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम् ।
 ततस्त्वयोध्या माहात्म्ये चक्रप्रह्लादहृतीर्थके ॥
 ऋणपापविमोक्षारथे तथाधारसहस्रकम् ।
 स्वर्गद्वारचन्द्रहरिधर्महृद्युपवर्णनम् ॥
 स्वर्णवृष्टेरुपारयानतिलोदासरयूयुति ।
 सीताकुण्डगुप्तहरिसरयूर्ध्वराज्य ॥
 गोप्रचारञ्च दुग्धोद्गुरुकुण्डादिपञ्चकम् ।
 घोषार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदशततः परम् ॥
 गयावृषस्य माहात्म्यं सर्वार्थविनिवर्तकम् ।
 माण्ड्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् ॥
 अजितादिमानसादितीर्थानि गदितानि च ।
 इत्येव वैष्णवखण्डो द्वितीयपरिकीर्तितः ॥

तृतीये ब्रह्मखण्डे—

“अतः परं ब्रह्मखण्डं मरीचे शृणु पुण्यदम् ।

यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नानेश्मणोद्भवम् ॥
 गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं तत ।
 चक्रतीर्थादि माहात्म्य देवीपतनमयुतम् ॥
 वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादि कीर्तनम् ।
 मङ्गलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुण्डादि वर्णनम् ॥
 हनुमत् कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थमवम्फलम् ।
 रामतीर्थादि कथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् ॥
 शङ्खादितीर्थमहिमा तथासाध्यामृतादिज ।
 घनुष्कोट्यादि माहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा ॥
 गायत्र्यादिक तीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्तितम् ।
 रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् ॥
 यात्राविधानकथनं सेतो मुक्तिग्रहं नृणाम् ।
 धर्मारण्यस्य माहात्म्यं तत परमुदीरितम् ॥
 स्थाणु स्कन्दाय भगवान् यत्र तत्त्वमुपादिशत ।
 धर्मारण्यसुसंभृतिस्तत्पुण्य परिकीर्तनम् ॥
 कर्मसिद्धे समाख्यानं ऋषिवंश निरूपणम् ।
 अप्सरातीर्थमुखाणां माहात्म्यं यत्र कीर्तनम् ॥
 वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मतत्त्वनिरूपणम् ।
 देवस्थानविभागश्च घनुष्कार्क कथा शुभा ॥
 छत्रा नन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतङ्गिनी ।
 पुण्यदात्र्य. समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिता ॥
 इन्द्रेश्वरादि माहात्म्यं द्वारकादि निरूपणम् ।

लोहासुरसमाख्यानं गङ्गाकूपनिरूपणम् ॥
 श्रीरामचरितञ्चैव सत्यमन्दिरवर्णनम् ।
 जीर्णोद्धारस्यकथनं शासनप्रतिपादनम् ॥
 जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम् ।
 ततस्तु वैष्णवा धर्मा नानाख्यानैस्तीरिताः ॥
 चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ।
 दानप्रशंसा तत्पश्चाद् व्रतस्य महिमा ततः ॥
 तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनन्ततः ।
 प्रकृतीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् ॥
 तारकस्य घघोपायो ऽयक्षार्चामहिमा तथा ।
 विष्णोः शापश्च वृक्षं पार्वत्यनुनयस्ततः ॥
 हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम् ।
 हरस्य लिङ्गपतनं कथायै जवनस्य च ॥
 पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य घघोऽद्भुतः ।
 प्रणवैश्वर्यं कथनं तारकाचरितं पुनः ॥
 दक्षयज्ञ समाप्तिश्च द्वादशाक्षररूपणम् ।
 ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशार्णजः ॥
 श्रवणादिकं पुण्यञ्च फीर्त्तितं शर्मदं नृणाम् ।

तृतीय ब्रह्मण्डस्तोत्र भागे—

“ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिषस्य महिमाद्भुतः ।
 पञ्चाक्षरस्य महिमा गोफर्णमहिमा स्तः ॥
 शिषरात्रेद्य महिमा प्रदोषप्रतकीर्त्तनम् ।

सोमवारव्रतञ्चापि सोमन्तिन्याः कथानकम् ॥
 भद्रायुत्पत्ति कथनं सदाचारनिरूपणम् ।
 शिववर्म समुद्देशो भद्रायुद्वाहवर्णनम् ॥
 भद्रायुमहिमा चापि मस्ममाहात्म्य कीर्तनम् ।
 शचरान्यानकञ्चैव उमामाहेश्वर व्रतम् ॥
 रुद्राक्षस्य च माहात्म्य रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् ।
 ध्रुवणादिक पुण्यञ्च ब्रह्मखण्डोऽयमरिणः ॥”

चतुर्थे काशी खण्डे—

“अतः परं चतुर्यन्तु काशीखण्डं नूतनम् ।
 विन्ध्यनारदयोर्यत्र सम्वादः परिकीर्तितः ॥
 सत्यलोकप्रभावश्चागम्यावासे सुरागमः ।
 पतिव्रता चरित्रञ्च तीर्थचर्या प्रशसनम् ॥
 ततश्च सत पूर्याम्या संयमिन्या निरूपणम् ।
 ब्रह्मस्य च तयेन्द्राक्षयोर्लोकान्तिः शिववर्मणः ॥
 अग्नेः समुद्भवञ्चैव क्रव्याद्वरुणसम्मवः ।
 गन्धवत्यलकापुष्योरीश्वर्याश्च समुद्भवः ॥
 चन्द्रोडुबुधलोकानां कुजेज्यार्कमुवां क्रमान् ।
 सतर्पिणां ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥
 ध्रुवलोक कथा पुण्या सत्यलोक निरीक्षणम् ।
 म्बन्दागम्य समालापो मणिकर्णो समुद्भवः ॥
 प्रभावश्चापि गङ्गाया गङ्गानाम सहस्रकम् ।
 धाराणसी प्रशसा च भेरवाविर्भवस्ततः ॥

दण्डपाणी ज्ञान्वाप्योरुद्वयः समनन्तरम् ।
 तत कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम् ॥
 ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च ।
 कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥
 गृहस्थयोगिनो धर्म्माः कालज्ञानं ततः परम् ।
 द्विविदोदास कथा पुण्या काशीवर्णनमेव च ॥
 योगिचर्चा च लोलाकौत्तरशाम्यर्कजा कथा ।
 द्रुपदारकस्य ताक्ष्यार्याणार्कस्योदयस्ततः ॥
 दशाश्वमेधतीर्थाख्या मन्दराच्च गणागमः ।
 पिशाचमोचनाख्या गणेशप्रेषणन्ततः ॥
 मायागणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः ।
 विष्णुमाया प्रपञ्चोऽथ द्विविदोदासविमोक्षणम् ॥
 तत पञ्चतदोत्पत्तिर्बिन्दुमाधय सम्भवः ।
 ततो वैष्णवतीर्थाख्या शूलिनः काशिकागमः ॥
 जैमीपत्र्येण सम्वादे ज्येष्ठे शाखा महेशितुः ।
 क्षेत्राख्यानं फन्दुकेशव्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥
 शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः ।
 देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुर पराक्रमः ॥
 दुर्गाया विजयश्चाथ श्रीकृष्णेशस्य वर्णनम् ।
 पुनरोद्धारमाहात्म्यं त्रिलोचन समुद्भवः ॥
 वेदाराख्या च धर्म्मेश कथा विश्वभुजोद्भवा ।
 परेश्वरसमाख्यानं गङ्गामाहात्म्यकीर्तनम् ॥

विश्वकर्म्मेश महिमा दक्षयज्ञोद्भवस्तथा
 सर्वाशम्यामृतेगादेर्भुजस्तम्मः पराशरे ॥
 क्षेत्रनार्थं कदम्बश्च मुक्तिमण्डपसकथा ।
 विश्वेश विभवश्चाथ ततो यात्रा परिक्रमः ॥

पञ्चमे अग्रन्ती स्रष्टे :—

“अतः पर न्यवन्त्यास्य शृणु क्षण्डञ्च पञ्चकम्
 महाकालवनाग्यान ब्रह्मशीर्षच्छिद्रा ततः ॥
 प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरूपत्तिश्च समागमः ।
 देवदीक्षा शिवस्तोत्र नानापातकनाशनम् ॥
 कपालमौचनाग्यान महाकालवनस्थितिः ।
 तीर्थं कलकलेशम्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥
 कुण्डमप्सरसञ्जञ्च सर्गे रुद्रम्य पुण्यदम् ।
 कुट्टुभ्रैगञ्च विद्याभ्रमर्केश्वरतीर्थकम् ॥
 स्वर्गद्वार चतुःसिन्धुतीर्थं शङ्करवापिका ।
 सकरार्कं गन्धवनी तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥
 शशाभ्रमेधैकानशा तीर्थे च हरिसिद्धिदम् ।
 पिशाचकादि यात्रा च हनूमन्कथमेश्वरी ॥
 महाकालेशयात्रा च चल्मीकेश्वरतीर्थकम् ।
 शक्रेशमेशोपाग्यान कुशाम्बल्याः प्रदक्षिणम् ॥
 अरुरमन्दाकिन्यद्रुपादचन्द्रार्कवैभवम् ।
 कर्मेश कुम्कुटेश लड्डुडुक्केशादि तीर्थकम् ॥
 मार्कण्डेश यक्षवापी सोमेश नरकान्तकम् ।

केदारेश्वर रामेश सौभाग्येश नरार्ककम् ॥
 केशार्कं शक्तिभेदञ्च स्वर्णक्षरमुत्पानि च ।
 ओङ्कारैशादि तीर्थानि अन्धकस्तुतिकीर्त्तनम् ॥
 कालारण्ये लिङ्गसरया स्वर्णशृङ्गाभिधानकम् ।
 कुशस्थलया अवन्त्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् ॥
 पद्मावती कुमुद्वत्यमरावतीति नामकम् ।
 विशाला प्रतिकल्पाभिधाने च ज्वरशान्तिकम् ॥
 शिप्रास्नानादिकफलं नागोन्मीता शिवस्तुति ।
 हिरण्याक्षवधारयान तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥
 नोलगङ्गा पुष्कराख्यं विन्ध्यावासन तीर्थकम् ।
 पुरुषोत्तमाधिमासं तत्तीर्थञ्चाघनाशनम् ॥
 गोमती घामने कुण्डे विष्णोर्नाम सहस्रकम् ।
 वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थके ॥
 महिमा नागपञ्चम्यां नृसिंहस्य जयन्तिका ।
 कुटुवेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्त्तनम् ॥
 कर्कराजारयतीर्थञ्च विघ्नेशादि सुरोहनम् ।
 र्द्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥
 यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुच्यते ।
 धर्मपुण्यस्यवैराग्ये मार्कण्डेयेन सङ्गमः ॥
 प्राग्लयानुभवार्थान् अमृता परिकीर्त्तनम् ।
 कल्पे कल्पे पृथक् नाम नर्मदायाः प्रकीर्त्तितम् ॥
 -स्तवमार्यं नार्मदञ्च फालरात्रिकया ततः ।

महादेवस्तुतिः पश्चात् पृथक्कल्पकथाद्भुता ॥
 विशल्यास्यानरुं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा ।
 गौरीत्रयसमाख्यान त्रिपुरज्वालनन्तत ॥
 देहपातविधानञ्च कावेरीसद्गमस्तत ।
 शम्भुनाथं ब्रह्मवर्जं यत्रेश्वरं कथानकम् ॥
 अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनाद् दिदारुकम् ।
 देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलास्य करञ्जकम् ।
 कुण्डलेश पिप्पलाट विमलेशञ्च शलभिन ॥
 शर्चीहरणमारुघातमन्धकस्यवधस्तत ।
 शूलमेघोद्भुमवो यत्र दातधर्मा पृथग्विधा ॥
 आस्थान दीर्घनपसऋष्यशृङ्ग कथा तत ।
 चित्रसेनकथा पुण्या काशिराजस्य मोक्षणम् ॥
 ततो देवशिलास्थान शवरी चरिताचितम् ।
 व्याघ्रास्थान तत पुण्य पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् ॥
 आपियेश्वर तीर्थञ्च शत्रुतीर्थं करोटिकम् ।
 कुमारेशमगस्त्येश व्यघनेशञ्च मातृजम् ॥
 लोकेश धनदेशञ्च मङ्गलेशञ्च कामजम् ।
 नागेशञ्चापि गोपां गौतमं शङ्खचूडजम् ॥
 नारदेश नन्दिशेष वरुणेश्वरतीर्थकम् ।
 दक्षिस्कन्दादितीर्थानि हनूमन्तेश्वरस्तत ॥
 रामेश्वरादि तीर्थानि सोमेशं पिङ्गलेश्वरम् ।
 ऋणमोहनं कपिलेशं पूतिशं जलेशयम् ॥

चण्डार्कयमतीर्थञ्च फल्होटीशञ्च नान्दिकम् ।
 नारायणञ्च कोटीश व्यासतीर्थं प्रभासिकम् ॥
 नागेश सङ्कर्षणकं मन्मथेश्वरतीर्थकम् ।
 एरण्डीसङ्गम पुण्य सुवर्णशिलतीर्थकम् ॥
 करञ्ज कामह तीर्थं भाण्डीर रोहिणीभवम् ।
 चक्रतीर्थं धौतपापं स्कान्दमाङ्गिरसाह्वयम् ॥
 कोटितीर्थमपोन्यायमङ्गाराख्यं त्रिलोचनम् ।
 इन्द्रेश कम्बुकेशञ्च सोमेशं कोहनेशकम् ॥
 नाम्मर्द चार्कमाग्नेय भार्गवेश्वरसत्तमम् ।
 ब्राह्म दैव च भागेशमाद्रि चाराहणंकवे ॥
 रामेशमथ सिद्धेश माहात्म्य कङ्कटेश्वरम् ।
 शाक सौम्यञ्च नान्देश तापेश रक्षिमणीभवम् ॥
 योजनेश वराहेश द्वादशी शिव तीर्थके ।
 सिद्धेश मङ्गलेशञ्च लिङ्गवाराहतीर्थकम् ॥
 कुण्डेश श्वेतवाराह भार्गवेश रवीश्वरम् ।
 शुक्लादीनि च तीर्थानि ह्यकारस्वामितीर्थकम् ॥
 सङ्गमेगं नारकेशं मोक्ष सार्पञ्च गोपकम् ।
 नाग साम्बञ्च सिद्धेश मार्कण्डाकूरतीर्थके ॥
 कामोदशूलारोपायो माण्डव्य गोपकेश्वरम् ।
 फणिलेश पिंगलेश भूतेश गागगीतमे ॥
 आश्वमेधं भृगुकच्छं वेदारेशञ्च पापनुत् ।
 फनखलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम् ॥

चन्द्रप्रभासमादित्य श्रीपन्यास्यञ्च हंसकम् ।
 मूलस्थानञ्च शृङ्गेशमाग्रायाचित्रद्वैकम् ॥
 शिखीशं कोटितीर्थञ्च दशकन्य सुवर्णकम् ।
 ऋणमोक्षं भारभूतिरत्रान्ते पुत्रमुण्डमम् ॥
 आमलेश कपालेश शृङ्गेरुर्डीमवन्तत ।
 कोटितीर्थं लोटनेश फल्स्तुतिरत परम् ।
 तृमिजङ्गन्माहान्म्ये रोहिताश्वकथातत ॥
 धुन्धुमारसमान्ध्यान घघोपायस्ततोऽप्य च ।
 घघो धुन्धोस्तत पश्चात् सतञ्चित्रवहोद्वव ।
 महिमाप्य ततश्चण्डोशप्रभाषोरतोऽपर ॥
 केदारेशो लक्ष्मीतीर्थं ततो विष्णुपर्दीमवम् ।
 मुखार च्यवनान्धास्यं ब्रह्मणश्च सरस्तत ॥
 चक्रास्य ललिताप्यान तीर्थञ्चरुगोमथम् ।
 स्टावत्तञ्च मार्कण्ड तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥
 रावणेश शुद्धपट देवान्पुत्रैततार्थकम् ।
 जिहोडनार्यसम्मूति शिवोद्भेदं फल्स्तुति ॥
 एष खण्डो ह्यवन्यास्य शृण्वता पापनाशन ।

पष्टे नागरखण्डे :—

“अत पर नागरास्य खण्डं षष्ठोऽभिधायते ।
 त्रिदोन्पत्तिसमार्यान हरिश्चन्द्रकथा शुभा ॥
 विज्वामित्रस्य माहान्म्य त्रिशङ्कम्वर्गतिस्तथा ।
 हाटकेऽपरमाहा म्ये वृत्रासुरवधस्तथा ॥

नागविलं शङ्खतीर्थमन्वलेश्वरघर्षणम् ।
 चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् ।
 गयशीर्षं घालशाख्यं घालमण्डं मृगाह्वयम् ॥
 विष्णुपादञ्च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः ।
 सिद्धेश्वरं नागसरः सप्तार्षियं ह्यगस्तकम् ॥
 भ्रूणगर्जनलेशञ्च भोष्मं दुर्वैरमर्ककम् ।
 शार्मिष्ठं सोमनाथञ्च दौर्गमानर्केश्वरम् ॥
 जमदग्निवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम् ।
 रामहृदं नागपुरं जडलिङ्गञ्च यज्ञभूः ॥
 मुण्डीरादि त्रिकार्कञ्च सतीपरिणयस्तथा ।
 बालखिल्यञ्च यागेशं बालखिल्यञ्च गारुडम् ॥
 लक्ष्मीशापः सानधिशः सोमप्रासादमेव च ।
 अम्बावृद्धं पादुकाख्यमाग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ॥
 गोमुखं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा ।
 शानैश्वरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ।
 कुशेशाख्यं लवेपाख्यं लिङ्गं सर्वोत्तमोत्तमम् ।
 अष्टपष्टिसमाख्यानं दमयन्त्यास्त्रिजातकम् ॥
 ततोऽम्बारैचती चात्र भद्रिकातीर्थसम्भवम् ।
 क्षेमट्टुरी च केदारं शुक्लतीर्थं मुखारकम् ॥
 सत्यसन्धेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पला कथा ।
 अष्टेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्ष्यं गाणेशमेव च ॥
 ततोवास्तुपदाख्यानमजागहकथानकम् ।

सौभाग्यान्त्रकशूलेशं धर्मराजकथ्याचक्रम् ॥ ६८ ॥
 मिश्राभ्रदेश्वरारुपानं गाणपत्यत्रयं ततः ।
 जागलिचरितञ्चैव मकरेश्वरकथा ततः ॥
 कालेश्वरं च काण्वान कुण्डमाप्सरसन्तया ।
 पुण्यादित्य रौहिताक्षं नागरोत्पत्तिकीर्त्तनम् ॥
 भार्गव चरितं चैव वैश्यामैत्रं तत परम् ॥
 सारम्बन पैप्पलादं कंसारीशञ्च पैण्डिकम् ॥
 ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याण्वानमंयुतम् ॥
 रैवतं भर्तृयज्ञाण्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ।
 कौरवं हाट्टकेशाण्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम् ॥
 पौष्कल नैमिष धार्म्ममरण्यत्रितयं मृतम् ।
 धाराणसीद्वारकाख्यावन्धार्येति पुरीत्रयम् ॥
 वृन्दावनं ग्राण्डवारय मट्टिकाण्यं चनत्रयम् ।
 कल्प शालस्तया नन्दोग्रामत्रयमनुत्तमम् ॥
 असिशुद्रपिनृसञ्ज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ।
 श्यमुद्रौ रैवतञ्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् ॥
 नदाना त्रिनयं गङ्गा नर्मदा च सरम्बती ॥
 सार्द्धफोटित्रयफलमेकैकञ्चैषु कीर्तितम् ।
 वृषिका शङ्खतीर्थञ्चामरक चालमण्डनम् ।
 हाट्टकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् ॥ १ ॥
 शान्वादिस्थं ध्राद्वकल्पं यौविष्टिरमथान्धकम् ।
 जलशायि चतुर्मास्यमृगयशयनत्रयम् ॥ २ ॥

मङ्कणेशं शिचरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ।
पृथ्वीदानं घाणकेशं कपालमोचनेश्वरम् ।
पापपिण्डं साप्तलैङ्गं युगमानादिकीर्तनम् ।
निर्म्येशशाकम्भर्याख्या रुद्रैकादश कीर्तनम् ।
दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्तनम् ।
इत्येष नागरः खण्डः प्रभासारयोऽधुनोच्यते ।

सप्तमे प्रभास खण्डे :—

“सोमेशो यत्र विश्वेशोऽर्कस्थलं पुण्यदं महत् ।
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम् ॥
अग्नितीर्थं कपर्दीशं केदारेशं गतिप्रदम् ।
भीमभैरवचण्डीशभास्कराङ्गारकेश्वराः ।
बुधेज्यभृगुसौरैन्द्रशिखीशाहरविग्रहाः ।
सिद्धेश्वराद्या पञ्चान्ये रद्रास्तत्र व्यवस्थिताः ।
वरारोहा ह्यजापाला मंगला ललितेश्वरी ।
लक्ष्मीशोऽवाडवेशश्चाधीशः कामेश्वरस्तथा ॥
गौरीशवरणेशास्यमुशीपञ्च गणेश्वरम् ।
कुमारेशञ्च शाकल्यं शकुलोत्कृगौतमम् ॥
दैत्यघ्नेशं चक्रतीर्थं सन्निहत्यान्वहयन्तथा ।
भूतेशादीनि लिङ्गानि आदिनारायणाह्वयम् ॥
ततश्चक्रधराख्यानं शाम्यादित्यकथानकम् ।
कथा फण्टकशोधिन्या महिषघ्न्यास्ततः परम् ॥
कपालीश्वरकोटीशयालग्रहणाह्वसत् क्रथा ।

नरकेश सम्यर्त्तेश निर्वाश्वरकथा तत ।
 बलमद्रेश्वरस्याथ गंगाया गणपत्य च ।
 जाम्बवत्याप्यसगित् पाण्डुदृपस्यसन्कथा ।
 शतमेघलक्षमेघकोटिमेघकथा तथा ।
 दुर्ध्वासार्कयदुस्थान हिरण्यामंगमोन्कथा ॥
 नगरार्कम्य कृष्णम्य सङ्कर्यणसमुद्रयोः ।
 कुमार्यां क्षेत्रपालम्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् ॥
 पिंगला मंगमेशम्य शंकरार्कप्रदेशयोः ।
 ऋषितोर्थम्य नन्दार्कत्रितकृष्णम्य कौर्त्तनम् ॥
 शशोपानम्य पर्णार्कन्यङ्कमन्यो कथाद्रुता ।
 वाराहम्यामिभूत्तान्त द्यारालिगाख्यगुप्तयोः ।
 कथा कनकनन्दायाः कुन्तीगंगेशयोस्तथा ॥
 चमसोद्दे दचिदुरत्रिलोकेशकथा तत ।
 मङ्कमेश त्रैपुरेश पण्डितार्थ कथा तथा ॥
 सूर्यशार्चात्रीक्षणयोस्मानाथ कथा तथा ।
 भृङ्गारालम्यलयोश्च्यवनाकेगयोस्तथा ।
 अत्रापालेशरालार्कमुपैरम्यरजा कथा ॥
 ऋषितोया कथा पुण्या मंगालेश्वरकौर्त्तनम् ।
 नारदादिन्यकथनं नारायणनिम्पणम् ॥
 ततकुण्डम्य माहान्मयं मूलचण्डीशवर्गनम् ।
 चतुर्भुज गंगाध्यक्ष कलम्येश्वरयो कथा ।
 गोपालम्यामिभूत्तम्यामिनोर्मन्ना कथा ।

क्षेमाकोत्ततधिन्नेशजलस्वामिकथा तथा ।
 फालमेधस्य रुक्मिण्या ऊर्ध्वशीश्वरभद्रयोः ।
 शङ्खावर्त्तमोक्षतीर्थं गोप्पदाच्युतसन्ननाम् ।
 जालेश्वरस्य हृङ्कारकूपचण्डीशयोः कथा ।
 आशापुरस्थविन्नेशकलानुण्डकथाऽद्भुता ॥
 कपिलेशस्य च कथा जरद्गवशिवस्य च ।
 नलककोटकेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा ॥
 नारदेशमन्त्रभूषा दुर्गकूटगणेशजा ।
 सुपर्णैलाख्यभैरवयोर्मल्लतीर्थभवा कथा ॥
 कीर्त्तनं कर्द्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ।
 बहुस्वर्णेशशृंगेश कोटीश्वरकथा ततः ।
 मार्कण्डेश्वरकोटीश दामोदरगृहोत्कथा ।
 स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तोभीमेश्वरी तथा ॥
 मृगीकुण्डञ्च सर्वस्यं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ।
 दुन्नाविल्वेशगंगेशरैघतानां कथाऽद्भुता ॥
 ततोऽर्बुदेश्वरकथा अचलेश्वरकीर्त्तनम् ।
 नागतीर्थस्य च कथा वशिष्ठाश्रमवर्णनम् ।
 भद्रं कर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रम्य ततः परम् ॥
 केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्त्तनम् ।
 कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथा ततः ।
 सिद्धेश शुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णोशकीर्त्तनम् ॥
 पंडुतीर्थ-यमतीर्थ-वाराहतीर्थवर्णनम् ।

चन्द्रप्रभासपिण्डोद् श्रीमाता शुक्लतीर्थजम् ॥
 कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिण्डारकस्य च ।
 ततः कनकलस्याथ चक्रमानुपतीर्थयोः ॥
 कपिलान्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबन्धजा ।
 गणेशपार्येश्वरयोर्प्राया मुद्गलस्य च ॥
 चण्डीस्थानं नागमयशिरः कुण्डमहेशजा ।
 कामेश्वरस्य मार्कण्डेयोत्पत्तेश्च कथा ततः ॥
 उद्दालकेश सिद्धेश गततीर्थकथा पृथक् ।
 श्रीदेवमातोत्पत्तिश्च व्यासगौतमतोर्थयोः ॥
 कुलसन्तारमाहात्म्य रामकोट्याहतीर्थयो ।
 चन्द्रोद्देशात्शुद्धं ब्रह्मस्थानोद्भवोद्भवम् ॥
 त्रिपुष्कर-रद्रहद-गुहेश्वर-कथा शुभा ।
 अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च ॥
 महौजसः प्रभावश्च जम्बुतीर्थस्य वर्णनम् ।
 गङ्गाधरमिश्रकयोः कथाचाय फलश्रुतिः ॥
 ढाण्कायाश्च माहात्म्ये चन्द्रशर्मकथातकम् ।
 जागराद्यान्घनतश्च व्रतमेकादशीभवम् ।
 महाढादशीकार्ग्यान प्रह्लादपि समागमः ।
 दुर्व्यासस उपारग्यान यात्रोपक्रमकीर्तनम् ॥
 गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्यां स्नानादिजम्फलम् ।
 चन्द्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसङ्गमः ॥
 सनकादिहडाण्यानं नृगतीर्थकथा ततः ।

एकोनविंशत्याहम्नं तार्क्ष्यकल्पकथाचितम् ॥

तत्र पूर्वखण्डं :—

पुराणोपक्रमो यत्र सर्गः संक्षेपतन्तः ।
 सूर्यादिपूजनविधि दीक्षाविधिरतः परम् ।
 श्यादिपूजा ततः पञ्चान्नवभ्यूहार्चनं द्विज ।
 पूजाविधानञ्च वैष्णवं तथा पञ्चरन्ततः ।
 योगाश्रयस्तनो विष्णो नामसाहस्रकीर्तनम् ।
 ध्यानं विष्णोस्तनः सूर्यपूजामृत्युञ्जयार्चनम् ।
 माला मंत्रा शिवाद्याथ गणपूजा ततः परम् ।
 गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनं श्रीधरार्चनम् ।
 विण्वर्चा पञ्चनत्त्वाद्या चक्रार्चा देवपूजनम् ।
 न्यासादि मन्थ्योपाम्तिश्च दुर्गाद्याथमुरार्चनम् ।
 पूजा भार्गवश्री चानः पवित्रारोहणार्चनम् ।
 मूर्तिध्यानं चाम्नुमानं प्रासादानाञ्च लक्षणम् ।
 प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक् पूजाविधानतः ।
 योगोऽष्टाङ्गो दानधर्मः प्रायश्चित्तविधिक्रिया ।
 द्वीपेशनरकाम्यानं सूर्यभ्यूहश्च ज्योतिषम् ।
 सामुद्रिकं म्वरध्यानं नवरत्नपरीक्षणम् ।
 माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
 तनो मन्वन्तरान्यानं पृथक्पृथग्विभागशः ।
 पित्राख्यानं घर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिःसमर्पणम् ।
 श्राद्धं विनायकस्यार्चा प्रहयत्रस्तथाऽऽग्रमाः ।

मलहास्या प्रेताशौचं नीचिसारोद्यतोक्तयः ।
 सूर्यवंश सोमवंशोऽघतारकथनं हरैः ।
 रामायणं हरिवंशो भारताख्यानकन्तनः ।
 आयुर्वेदे निदानम्प्राक् चिकित्साद्रव्यजागुणाः ।
 रोगघ्नं कवचं विष्णो गारुडस्त्रैपुरोमनुः ।
 प्रश्नचूडामणिध्वान्ते हयायुर्वेदकीर्त्तनम् ।
 शोषधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम् ।
 छन्दः शास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधि स्मृतः ।
 तर्पणं वैश्वदेवञ्च सध्यापार्यणकर्म च ।
 नित्यश्राद्धं सपिण्डार्यं धर्मसारोऽघनिष्टृतिः ।
 प्रतिसङ्क्रम उक्तोऽस्माद् युगधर्माः कृतेः फलम् ।
 योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृति फलं हरैः ।
 माहात्म्यं वैष्णवञ्चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ।
 ज्ञानामृतं गृह्याष्टकं स्तोत्रं विष्णवर्च्यनाह्वयम् ।
 वेदान्तसांख्यसिद्धान्तं ब्रह्मज्ञानात्मकं तथा ।
 गीतासारः फलोत्कीर्त्तिः पूर्वखण्डोऽयमीरितः ।

उत्तरखण्डे प्रेतकल्पे :—

अथास्यैवोत्तरे खण्डे प्रेतकल्पः पुरोदितः ।
 यत्र ताक्ष्येण संस्पृष्टो भगवानाह वाडव ।
 धर्मप्रकटर्नं पूर्वं योनीनां गतिकारणम् ।
 दानादिकम्फलञ्चापि प्रोक्तमत्रौर्ध्वदेहिकम् । ३

यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनञ्च ततः परम् ।
 पोटशश्राद्धफलकं वृत्तानाञ्चात्र वर्णितम् ।
 निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम् ।
 प्रेतपीडा विनिर्देशः प्रेतचिन्हनिरूपणम् ।
 प्रेतानां चरितार्यानं कारणभ्रेततां प्रति ।
 प्रेतमृत्युविचारश्च सपिण्डीकरणोक्तयः ।
 प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानिच विमुक्तये ।
 आचक्ष्यकोत्तरं दानं प्रेतसौर्यकरं हितम् ।
 शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम् ।
 प्रेतन्योद्धारकथनं कर्मकर्तृ विनिर्णयः ।
 मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ।
 मथ्यं पोटशकं श्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम् ।
 मृतकस्याथ संख्यानं नारायणबलिक्रिया ।
 वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम् ।
 अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम् ।
 शून्यामृत्युविचारश्च विष्णुध्यानं विमुक्तये ।
 स्वर्गतां विहिताख्यानं स्वर्गसौर्यनिरूपणम् ।
 भूर्लोकवर्णनञ्चैव सप्तधालोक वर्णनम् ।
 पञ्चोर्ध्वलोककथनं ब्रह्माण्डस्थिति कीर्तनम् ।
 ब्रह्माण्डानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम् ।
 आत्यन्तिकलयाम्यानं फलस्तुतिनिरूपणम् ।
 इत्येनद्गारुडनाम पुराणभुक्तिमुक्तिदम् ॥

तत्फलश्रुतिः—

कीर्तितं पापशमनं पठतां शृण्वतां नृणाम् ।
लिखित्वैत्पुराणन्तु विपुत्रे यः प्रयच्छति ॥
सौवर्णं हंसयुग्माढ्यं विप्राय स दिवं व्रजेत् ।

ब्रह्माण्डपुराणम्

नारदीय पुराणे ४ पा० १०६ अध्याय उक्ता
अस्य विषयाः ।

शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यं पुरातनम् ।
तच्च षाडशस्ताहस्रं भाविकल्पकधायुतम् ॥
प्रक्रियाख्योऽनुपङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः ।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः ।
तृतीयोमव्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरोमतः ॥

तत्रपूर्वभागे प्रक्रियापादे :—

“आदौ रृत्यसमुद्देशो नैमिषारूयानकं ततः ।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च ॥
एव वै प्रथमःपादो द्वितीयं शृणु नारद ।

पूर्वभागेऽनुपङ्गपादे :—

कल्पमन्यन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम् ।
मानस सृष्टिकथनं स्रष्टृप्रसववर्णनम् ॥

महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम् ।
 अग्निनां विचयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम् ॥
 प्रियव्रताच्च योद्देशः पृथिव्या याम विस्तरः ।
 वर्णनं भारतम्याम्य ततोऽन्येषां निरूपणम् ॥
 जम्बादिसप्तद्वीपारण्या ततोऽधोलोकवर्णनम् ।
 ऊर्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् ॥
 आद्रिन्यत्र्यहकथनं देवप्रहानुकीर्तनम् ।
 नीलकण्ठाह्याख्यानां महादेवस्य वैभवम् ॥
 यमावाम्यानुकथनं युगतत्वनिरूपणम् ।
 यत्रप्रवर्तनञ्चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः ॥
 युगप्रजालक्षणञ्च ऋषिप्रवरवर्णनम् ।
 वेदाना व्यमनाख्यानां स्यावम्भुवनिरूपणम् ॥
 शेषमन्वन्तराख्यानां पृथिवीदोहनन्ततः ।
 चाक्षुषेऽद्यने सगोद्वितीयोऽङ्घ्रि पुरोदले ॥

मध्यभागे उपोद्घात पादे :—

“अथोपोद्घातपादे च सतर्षिपरिकीर्तनम् ।
 राजाफन्यत्रयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः ॥
 ततो जयाभिव्याहारी मरुदुत्पत्तिकीर्तनम् ।
 फाण्यपेयानुकथनं ऋषिवंशानिरूपणम् ॥
 पितृकव्यानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ।
 वैवश्वतममुत्पत्तिस्मृष्टिस्तम्य ततः परम् ॥
 मनुषुत्राचयश्चातो गान्धर्वश्च निरूपणम् ।

इक्ष्वाकुवशकथन वशोऽग्रे सुमहान्मन ॥
 अमावसोराचयश्च रजेश्चरितमद्भुतम् ।
 ययातिचरितञ्चाथ यदुवशनिरूपणम् ॥
 फातवीर्यस्यचरित जामदग्न्य तत परम् ।
 वृष्णिवशानुकथन सगरस्याथ सम्भव ॥
 भार्गवस्यानुचरित तथार्यकवधाश्रयम् ।
 सगरस्याथचरित भार्गवस्य कथा पुन ॥
 देवासुराहवकथा वृष्णाविर्भाववर्णनम् ।
 इनस्य च स्तव पुण्य शुक्रेण परिकीर्तित ॥
 विष्णुमाहात्म्यकथन वतीवशनिरूपणम् ।
 भविष्यराजचरित सम्प्राप्तेऽथकलौ युगे ॥
 एवमुद्धातपादोऽय तृतीयो मध्यमे दले ।

उत्तरभागे उपसहार पादे :—

चतुर्थमुपसहार वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे ॥
 वैवस्वतान्तराख्यान विस्तरेण यथातथम् ।
 पूर्वमेव समुद्दिष्ट सक्षेपादिह कथ्यते ॥
 भविष्याणा मनूनाच चरित हि तत परम् ।
 कल्पप्रलय निर्देश कालमान तत परम् ॥
 लोकाश्चतुर्दश तत कथिता मानलक्षणे ।
 वर्णन नरकाणाञ्च विकर्माचरणैस्तत ॥
 मनोमयपुराख्यान लय प्राकृतिकस्तत ।
 शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनञ्च तत परम् ॥

त्रिविधाद् गुणसम्बन्धाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः ।-
 धनिर्दृश्या प्रत्नर्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
 धन्वय ध्यतिरेकाम्यां घर्णनं हि ततः परम् ।
 इत्येव उपसंहारः पादो वृत्तः सचोत्तरः ॥
 चतुर्पादं पुराणन्ते ब्रह्माण्ड समुदाहृतम् ।
 अष्टादशमनोपम्यं सारान्सारतरं द्विजः ! ॥
 ब्रह्मांडञ्चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पद्यते ।
 तदेव ध्यम्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ॥
 पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद् ।
 घन्तुद्रुप्राथ तेनैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥
 मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरं ।
 मुनयो धर्मशीलाम्ने दीनानुग्रहकारिणः ॥
 मया चेदं पुराणन्तु वशिष्ठाय पुरोहितम् ।
 तेन शक्तिमुनायोक्तं जानूकार्णाय तेन च ॥
 ध्यासो लब्ध्वा ततश्चेतन् प्रमञ्जनमुखोद्भूतम् ।-
 प्रमाणादृत्यलोकेऽस्मिन् प्रावर्त्तयदनुत्तमम् ॥

तत्फलश्रुतिः—

य इदं कीर्तयेद्वत्सं ! शृणोति च समाहितः ।
 स विधूयेह पापानि याति लोकमनामयम् ॥
 लिगित्यै तत् पुराणन्तु म्घर्णसिंहासनस्थितम् ।
 पात्रेणाच्छादितं यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति ॥
 स याति ब्रह्मणोलोकं नात्र कार्या विचारणा ।

मरीचे ! ऽष्टादशैतानि मया प्रोक्तानि यानि नै ॥
 पुराणानि तु संक्षेपाच्छ्रौतव्यानि च क्षिप्तरात् ।
 अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः ॥
 कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते ।
 सूत्रमेतत्पुराणानां यन्मयोक्तं तवाऽधुना ॥
 तन्नित्यं शीलनीयं हि पुराणं फलमिच्छता ।
 न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वनुसूयवे ।
 देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च ।
 शान्तायारागिचित्ताय शुश्रूपाभिरताय च ॥
 निर्मत्सराय शुचये देयं सद्द्वैष्णवाय च ।

विष्णुभागवतम् ।

तत्प्रतिपाद्यविषयाश्च नारद पु० ६६ अ० उक्ता यथा—

मरीचे ! शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम् ।
 श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥
 तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम् ।
 सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः ॥
 भगवानेव विप्रेन्द्र ! विश्वरूपी समीरितः ।

तस्य प्रथमस्कन्धे :—

तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षेणां समागमः ।
 व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥
 पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ।”

द्वितीयस्कन्धे :—

“परीक्षित्शुकसन्वादे सृतिद्वयनिष्पन्नम् ।
 ब्रह्मनारदसंवादेऽथतारचरितामृतम् ॥
 पुरागलक्षणञ्चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
 द्वितीयोऽयं समुद्रितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥”

तृतीयस्कन्धे :—

“चरितं विदुरम्याय मैत्रेयेणाम्य सङ्गम ।
 मृष्टिप्रकरणं पञ्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
 कापिलं सांग्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ।

चतुर्थस्कन्धे :—

“सत्याश्चरितमार्दो तु ध्रुवम्यचरितं ततः ।
 पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनवर्हिषः ॥
 इत्येष नृत्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ।”

पञ्चमस्कन्धे :—

“प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानाञ्च पुण्यदम् ।
 ब्रह्माण्डान्तर्गतानाञ्च लोकानां चर्गनन्ततः ॥
 नरकस्थितिरित्येव संस्थाने पञ्चमो मतः ।

षष्ठस्कन्धे :—

अज्ञामिलस्य चरितं दक्षमृष्टिनिष्पन्नम् ।
 वृत्राख्यानं ततः पद्भ्यान्मन्त्रां जन्म पुण्यदम् ॥
 षष्ठोऽयमुद्रितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ।

सप्तमस्कन्धे :—

“प्रहादचरितंपुण्यं घर्णाश्रमनिरूपणम् ।
सतमोगदितो वत्स ! वासनाकर्मकीर्त्तने ॥

अष्टमस्कन्धे :—

“गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ।
समुद्रमथनञ्चैव बलिवैभवचन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्त्तितः ।

नवमस्कन्धे :—

“सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ।
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ॥

दशमस्कन्धे :—

“कृणस्य बालचरितं कौमारञ्च व्रजस्थितिः ।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवने द्वारकास्थितिः ॥
भूभारहरणञ्चात्र निरोधे दशमं स्मृतः ।

एकादशस्कन्धे :—

“नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्त्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्भवस्य च ॥
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।

द्वादशस्कन्धे :—

“भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ।
वेदशास्त्राप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् ॥

सौरी विभूतिरुदिता सात्त्वती च तठ परम् ।
पुराणसंन्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्यहम् ॥
इत्येवं कथितं घत्स ! श्रीमद्भागवतं तव ।

तत्फलश्रुतिः :—

“वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनुमोदितुरेव च ।
साहाय्यकर्तृर्गद्गिनं भक्तिभुक्तिविमुक्तिदम् ॥
प्राष्टपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमाचितम् ।
देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम् ॥
सम्पूज्य चम्प्रहेमाद्यैर्मगवद्भक्तिमिच्छता ।
सोऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा ॥
स पुराणश्रवणं प्राप्नोति फलमुत्तमम् ।

अष्टादशपुराणानामनुक्रमतोऽ वतरणवर्णनम्वायुपुराणं

प्रतिपादितम् :—

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ जाम्बवमिदं पुराणं मातरिष्वने ॥ ५८ ॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पति ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सधित्रे तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥
सविता मृत्युरे प्राह मृत्युश्चन्द्राय वै पुनः ।
इन्द्रज्ञापि षशिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥ ६० ॥
सारम्बतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शङ्खने ।
शङ्खतस्त्रिषिष्ठाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥ ६१ ॥

वरिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि प्रव्याख्याय च ।
 प्रव्याख्यो धनञ्जये सच प्रादात्तृणञ्जये ॥ ६२ ॥
 वृत्तञ्जयात्तृणञ्जयो [भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।
 गौतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ॥ ६३ ॥
 निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च ।
 स ददौ सोममुष्माय स ददौ तृणविन्दवे ॥ ६४ ॥
 तृणविन्दुस्तु दक्षाय दक्ष प्रोवाच शक्तये ।
 शक्ते पराशरश्चापि गर्भस्य श्रुतवानिदम् ॥ ६५ ॥
 पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायन प्रभु ।
 द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्रोक्त द्विजोत्तमा ॥ ६६ ॥

शांशपायन उवाच :—

मया वै तत्पुन प्रोक्तं पुत्रायामित्तुद्धये ।
 इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ॥

पुराण परिचय (परिशिष्ट)

कतिपय सम्मतयः

एफ० मैक्समूलरः प्रतिपादयति स्वकीय ग्रन्थे

India what can it teach us

By Rt Hon

F Maxmuller,

(Longmans Green & Co.)

India, 1919.

COLLECTED WORKS

नामके

Page 3

“If I were to look over the whole world to find out the country richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were

यदि सारे संसार भर में मुझे ऐसे देश को खोजने के लिये कहा जाय जो धन, जन और प्राकृतिक सौन्दर्य साधन सम्पत्ति से परिपूर्ण हो और कुछ अंश में पृथ्वी पर स्वर्ग सदृश हो तो मेरा केन्द्र बिन्दु भारत होगा। यदि मुझे यह पूछा जाय कि विश्व में मानव मस्तिष्क के अधिकाधिक पवित्रतम

asked under what sky the human mind has most freely developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them which will deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant I should point to India

And if I were to ask myself from what literature we here in Europe, we, who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans and of one Semitic race the Jewish, may draw that

विकास की सुन्दरतम भेंट कौन से देश को प्राप्त हुई और किस देश के निवासियों ने जीवन को महती समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार किया है और उनका निश्चित समाधान भी पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया जिसके लिये प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिकों की रचनाओंके प्रेमी भी अपने को अध्ययन करने का अधिकारी मानते हैं तो मेरा सङ्केत भारत भूमि के लिये होगा ।

और यदि मुझे फिर एक प्रश्नवाचक चिन्ह द्वारा यह कहा जाय कि यूरोप में हमलोगों ने जिनके आदर्श पूर्णतया ग्रीस और रोमन जाति की विचार धारा पर आश्रित हैं और यहूदी जाति से भी प्रेरणा प्राप्त की है ऐसे सभी को किस साहित्य द्वारा

corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact, more lively human—a life not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.

14

That very Sanskrit the study of which may at first seem so tedious to you and so useless, if only you will carry it on, as you may carry it on here at Cambridge better than anywhere else, open before you large

पूर्णता प्राप्ति की आन्तरिक रूप से पूर्ण बनने की, सर्वांशतः सार्वभौम और विकसनशील बनने की प्रेरणा मिली है। वास्तव में ऐहिक जीवन के सम्यन्ध में ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक सत्य शाश्वत जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण साहित्य से देन मिली तो मेरा सङ्कल्प फिर भी भारत ही होगा।

१४

यह संस्कृत भाषा का अध्ययन ही है जो पहले आप लोगों की कठिन परिश्रमसाध्य और अनुपयोगी लगता है यदि इसका सतत स्वाध्याय जैसा आप लोग कैम्ब्रिज में करते हैं वैसी ही गति और उत्साह से सदा ही करते रहे तो आपके सामने ऐसा साहित्यिक उन्मेष की गवेषणा दृष्टिगोचर होगा जो अभी तक

layers of literature as yet almost unknown and unexplored and allow you an insight into strata of thought deeper than any you have known before and rich in lessons that appeal to the deepest sympathies of the human heart.

“India occupies a place second to no other country.”

15

Whatever sphere of the human mind you may select for your special study, whether it be language, or religion, or mythology or philosophy, whether it be laws or customs, primitive

अज्ञाय और अनुसन्धान रहित थी और अन्तर्दर्शन की ऐसी सूक्ष्म क्षमता प्रदान करेगी अब शिक्षाप्रद उपदेशों से हमें उदात्त मानव यत्न की बराबर प्रेरणा मिलती रहेगी, मानव हृदय की गम्भीर सहानुभूतियों को भी पूर्णतया प्रभावित करती है।

सत्यान्वेषण के मार्ग में भारत राष्ट्र का ही सर्व प्रथम प्रमुख स्थान है।

मानव मस्तिष्क के विकास की कोई भी देश को अपने विशेष अध्ययन के लिये हम क्यों न ले भले ही यह भाषा हो, धर्म हो, पौराणिक गाथा हो, दर्शन हो, व्यवहार हो, रीति नीति हो या आरम्भिक कला या विज्ञान हो हमें उसका स्रोत भारत ही

art or primitive science, everywhere you have to go to India ; whether you like it or not, because some of the most valuable and most instructive materials in the history of man are treasured up in India, and in India only."

August wilhelm fon Schleger :—

It is perhaps the deepest and loftiest thing the world has to show.

"Schopen Hauer. The production of the highest Human Wisdom."

"Almost Super—Human Conception."

"It is the most satisfying and elevating reading (with the exception of the original texts) which is possible in the world ; it has been the solace of my life and will be the solace of my death."

मिलेगा। आप इस में सहमत हों या न हों सबसे अधिक मूल्यवान् और सर्वाधिक शिक्षाप्रद सामग्री जो मानव के इतिहास में उपलब्ध होती है उसकी सञ्चित निधि केवल भारत में ही है अन्यत्र नहीं।

आगस्ट विन्हेल्म फोनश्लेजर कहते हैं—भारत की आध्यात्मिक विशेषता गम्भीर और उदात्त घस्नुतत्त्वों की संसार को देन है।

शोपेन हावर कहता है—भारतीय दर्शन मनुष्य की उच्चतम विकसित बुद्धि का अपूर्व आदर्श है जो कि विचारांश में अतिमानव प्रायः है।

“Now, if Einstein is right, or even partly right no physicists before his time knew quite well what they were talking about. When they used the ideas of distance and time and practically every statement that they made which purported to be accurate was false ”

Possible worlds by
J. B. S. Haldane

Science is not yet in contact with ultimate reality.

यह यह भी सम्मति देता है कि उपनिषद् साहित्य का अध्ययन सन्तोष दायक, उदायक चिन्तारों से पूर्ण है इसका म्याध्याय जैसे मुझे जीवन में शान्ति और स्फूर्तिदायक हुआ यह मृत्यु शय्या पर भी वैसे ही शान्तिदायक होगा ।

यदि सापेशवाद का अनुसन्धान कर्ता आइन्स्टीन ठीक हो या अंशतः ठीक हो तो कोई भी विज्ञान नेता इस के पूर्व इस से अनभिज्ञ था कि आजकल वैज्ञानिक लोग क्या क्या नई गवेषणा कर रहे हैं । जब उन्होंने दूरी समय औसतसमयन्धी प्रत्येक विपरण तैयार किया और जिसे उस समय बिल्कुल ठीक यत्नाने थे आज मिथ्या मालूम होता है ।

—जी० पी० एस० हाट्टे

विज्ञान धर्मी तक पूर्ण सत्य के सम्पर्क में नहीं आया है ।

Once more then, if we mean by primitive, people who inhabited this earth as soon as the vanishing of the glacial period made this earth inhabitable, the Vedic poets were certainly not primitive. If we mean by primitive, people who were without a knowledge of fire, who used unpolished flints, and ate raw flesh, the Vedic poets were not primitive. If we mean by primitive, people who did not cultivate soil, had no fixed abodes, no kings, no sacrifices, no laws, again I say, the Vedic poets were not primitive. But if we mean by primitive the people who have been the first of the Aryan race to leave behind literary relics of their existence

एक बार फिर यदि हम आरम्भिक से ऐसे लोगोंको समझें जिन्होंने आदि कालमें सृष्टिको निवास योग्य बनाया तो वैदिक ऋषि आरम्भिक नहीं थे। पुन यदि हमारा अभिप्राय आदि निवासी से ऐसी जातिका हो जिन्हें अग्निका ज्ञान नही था जो सरदरे चकमकसे अग्नि जलाते थे और फचा मास खाते थे तो इस अर्थ में वैदिक ऋषि आदिकालीन नहीं थे। पुन यदि हमारा यह अभिप्राय हो कि वे ऐसे आदिवासी थे जिन्होंने भूमि पर हल नही चलाया न स्थिरनिवासकी योजनाकी न उनके राजा थे न वे यज्ञकरते थे और न उनकेलिये राज्यके नियन्त्रण करनेवाले

on earth, then I say the Vedic poets are primitive, the Vedic language is primitive, the Vedic religion is primitive, and taken as a whole, more primitive than anything else that we are ever likely to recover in the whole history of our race

The prosperity of a country depends not on the abundance of its revenues, not on the strength of its fortifications not on the beauty of its public buildings but it consists in the number of its cultivated citizens, in the men of education, enlightenment and character

नियम थे तो वैदिक ऋषिप्राचीन नहीं थे । परन्तु यदि हमारा अभि-
प्राय यह हो कि आदिकालीन वही हैं, जिन्होंने आर्य जातिके आदि
पुर्य होकर अपनी स्थिति में एक ऐसा अखण्डसाहित्य छोड़ा
जिसको धानो से सभी गौरव अनुभव करते हैं, तो मैं कहूंगा
कि वैदिकऋषि आदि हैं वेदविद्या आदिकाल की है, वैदिक धर्म
आद्य है और वे ऋषि सम्पूर्ण मानव सभ्यसत्कार के इतिहास में
भा सर्वप्रथम सभ्य होने का गौरव रखते हैं ।

कि सी देशकी समृद्धि नतो इसके चरोंकी प्रभूत समग्र सम्पत्ति
पर आश्रित है; न इसका सुपुत्र रक्षा पडक्ति पर निर्भर है और न
इसके सार्वजनिक शोभायुक्त स्थानों पर अचल ग्नित है। परन्तु इसका
आधार तो सुसभ्य, नागरिक और शिक्षित जन जो नैतिक और
धार्मिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं और जो उन्नतिशील हैं वे ही
देश की समृद्धि के धाम्नायिक मापदण्ड हैं ।

Lecture II

Warren Hastings thus speaks of the Hindus general —

“They are gentle and benevolent, more susceptible of gratitude for kindness shown them, and less prompted to vengeance for wrongs inflicted than any people on the face of the earth, faithful, affectionate, submissive to legal authority

But it is not Europe alone that has profited from this revival of the study of Sanskrit India herself has lost the recollection of her past, her literature was sinking in oblivion numerous works of her celebrated writers had perished and others were annually perishing, her ancient language had died away and was

वारेन हिम्बिज्ज कहता है कि भारतीय भद्र, उदार, श्रम, सत्कार की सम्मत्त जातियों में जो बदला लेने की भावना है उसमें ऊपर उठे हुए विश्वासी, प्रेममय, और न्यायके लिये नतमस्तक होनेवाले मनुष्य हैं ।

संस्कृत विद्याके पुनरुद्धार एवं पुनरुज्जीवनका केवल यूरोपने श्रम नहीं उठाया बल्कि और देशोंने भी विशेषरूपेण पूर्ण ते प्राप्त की है । परन्तु भारत अपने गौरवपूर्ण अतीत के कारणों को स्वयं ग्यो चुका है । इस देश में प्रसिद्ध ग्रन्थों के महत्वपूर्ण ग्रन्थ सदा के लिये विलय हो गये और

cultivated merely by a few of her sons , and last but not least her social fabric and religious belief had come to rest on mediaeval and modern works professedly derived from, and in harmony with her most ancient sacred texts but in truth the composition of an interested degenerated priesthood , corrupting her faith depraving her morality and sapping the very foundations of her life

Introduction to Jaiminiya
Nyaya Mala Vistar
Edited by—Theoder Goldstucker
London Edition 1878

प्रतिवर्ष नष्ट हो रहे हैं। उसकी प्राचीन गौरवमयी भाषा मृत प्राय हो गई और केवल कुछ थोड़ेसे सरस्वतीके सुपुत्रों द्वारा पढ़ी जाती है। और अन्तमें, उसका सामाजिक ढांचा तथा धार्मिक विश्वास मध्यकालीन एवं वर्तमानकालीन ग्रन्थोंकी रचनापर आधारित है। कहनेको तो उनका स्रोत भी प्राचीन वैदिक साहित्य कहा जाता है परन्तु वास्तवमें यह सर्व निर्माण आधुनिक स्वार्थों पौरोहित्य फला विशों का है इससे उसके निवासियोंका धार्मिक विश्वास चिह्नित ; उसकी नैतिक पतनकी पराकाष्ठा एवं उसके जीवनकी आधारभूत शिलायें भी निष्प्राण एवं गतिहीन हो गई हैं।

थ्योडोर गोल्डस्टुकर द्वारा सम्पादित जैमिनीयन्यायमाला
विस्तरकी अंग्रेजी भूमिकासे लन्दन संस्करण १८७८ मन्

Religious experience is a reality.

Science and theology as art forms.

Reality seems to concern religious beliefs much more than any others.

Page 326. The nature of the physical world : Eddington.

(Cambridge University edition)

Science is not yet in contact with ultimate reality. [Encyclopedia of modern knowledge the world ; whence and how].

Sir James Jeans.

(साइन्स और थ्योलोजी: एज आर्ट फार्मस से)

धार्मिक विश्वासोंका सत्यके साथ अन्य वस्तुओंसे कहीं घनिष्ठतर सम्बन्ध है ।

३२६ पृ० (दी नेचर आव् दी फीजिकल वर्ल्ड)

एडिङ्गटन कृत (कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय संस्करण)

विज्ञान अन्तिम सत्यके सन्निकट नहीं पहुँचा है ।

धार्मिक अनुभव वास्तविक तथ्य है ।

इन्साइक्लोपिडिया ऑफ माडर्न नालेज ।

अभीतक हम वास्तविक तथ्यके सम्पर्कमें नहीं आये हैं

पदार्थका वस्तुतत्त्व हमारे मनस्तत्त्व और बुद्धितत्त्व के गम्य

नहीं हैं—

दी वर्ल्ड व्हेन्स अण्ड हाऊ: सर जेम्स जीन्स

We are not yet in contact with ultimate reality

Real essence of substance is beyond our knowledge

When we consider the modern estimates we may be inclined to sympathise rather with ancient Brahmins who thought that the world had always existed

Science News
Penguin Books 16

Bishop Auber said —

The Hindus are brave courteous, intelligent most eager for knowledge and improvement sober, industrious, dutiful to parents, affectionate to their children, uniformly gentle and

जब हम आधुनिक विवरण पर विचार करते हैं तो हमें प्राचीन ब्राह्मणों के विचारों में सत्य दीखता है जो ससार को शाश्वत बतलाते हैं ।

पेड्ग्विन न्यूज पेड्ग्विन बुक्स १०

बिशप ओबर कहते हैं ।

भारतीय हिन्दू धीर, यत्नशील, बुद्धिमान, विवेकी, ज्ञानकी अमर जिज्ञासा रखनेवाले और विकासशील जाति है जो गौरवपूर्ण परिश्रमशील, माता पिता के प्रति कर्तव्यपरायण और बालकोंकी

patient and more easily affected by kindness and attention to their wants and feelings than any people I ever met with.

Let us not forget that just as moral strength is the backbone of British prestige and power, as art is the backbone of life in France, so also religion is the bedrock of India's future prosperity and happiness. Religion plays a signal role in our lives in bringing the three hundred sixty two million people of India with numerous barriers of sects and castes in them together under one banner whether we are rich or poor, whether we are Hindus, Jains or Christians.

स्नेह भरी दृष्टि से देखनेवाले, एक समान उदार दयालु, धीर गम्भीर और सरलता पूर्वक मनाये जाने और सबकी भावनाओं का अधिकाधिक आदर करनेवाले राष्ट्र के व्यक्ति हैं ।

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जिस प्रकार ब्रिटिश गौरव और शक्तिका आधार उस राष्ट्र की नौ सेना है और फ्रांस देशवासियोंके जीवन का मेरुदण्ड कलानिर्माणकी श्रृंखला है इसी प्रकार भारतीय भार्या समृद्धि और आनन्द की आधारशिला धर्म है । ३६ करोड़ भारतीयों के विभिन्न जाति, भाषा, धर्म आदि की विभिन्न बाधाओं के रहते हुए भी एक पताका के नीचे लानेवाला तत्त्व धर्म ही है । फिर भले ही कोई धनी या

We are all in a sense receiving our vital sustenance from the pulse beat of faith in one God

Members of the Sanskrit Text Society —
Patron

His Royal Highness the Prince of Wales

Vice Patron

His Majesty the king of Belgians.

The Rt Hon the secretary of state for India
President

His Royal Highness the
Duc D' Aumala

निर्धन हो, चाहे कोई हिन्दू, जैन, फारसी या ईसाई हो हम सब, एक शब्द में, अपनी धमनियों की अव्यर्थ जीवनी शक्तिके स्रोत के लिये आत्मामें ईश्वर दृढ विश्वास को ही मानते हैं ।

इङ्ग्लैण्ड में स्थापित सस्कृत ग्रन्थ प्रकाशन समिति के सदस्यों की नामावलि—

संरक्षक—द्विज रायल हाइनेस वेल्स के राजकुमार ।

उपसंरक्षक—

द्विज मेजेस्टी वेल्जियन्स के राजा व माननीय भारत मंत्री ।

समापति—

द्विज रायल हाइनेस ड्यूक ड आमला ।

Vice Presidents :

His Excellency Mr. Van De Weyer.

The Right Hon. Lord Dufferin and Clanerboye

Treasurer :

David Salomons Esqr. M. M.

Honorary Secy :

Octane Depierre, Esqr.



उपसभापति—

द्विज एक्ससेलेन्सी श्री वानडेवेयर, माननीय लार्ड डफरिन और
क्लेनर बाय ।

कोषाध्यक्ष—डेविड सलोमन्स एम० एम० ।

अधैतनिक मंत्री—ओक्टैन डेपियर ।

अणुभाष्येऽपि :—

अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते ।
 तपसा वेद युक्त्या तु प्रसादात्परमात्मनः ॥
 सन्देहवारकं शास्त्रं धुद्धिदोपात्तदुद्भवः ।
 विरुद्धशास्त्रसम्भेदादङ्गैश्चाशम्भनिश्चयः ॥
 तस्मात्सूत्रानुसारेण कर्तव्यः सर्वनिर्णयः ।
 अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थान्मध्यमश्च तथाऽऽदिमः ॥
 “श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
 तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वेषे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥”

व्यास स्मृति १ अध्याय

वेदवेदाङ्गशास्त्राणि सेतिहासानि चाभ्यसेत् ।
 अध्यापयेच्च तच्छिष्यान् सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥
 इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ।

शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १०

स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात् । वेदेभ्योऽन्यत्र सत्
 स चिप्रः शूद्रतामियात् । तस्मादहरहर्षेदं द्विजोऽधीयीत धाम्ना

ब्रह्मपुराणेऽपि

इतिहासपुराणानि यदन्यच्छब्दगोचरम् । स्वतो मुखे मम
 यादभूच्च स्मृतिगोचरम् । वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसौ तत्त्वं
 नृच । ततः पुरुषसुक्तं तदस्मरं लोकचिभ्रुतम् । यज्ञोपक
 सर्वं तदुक्तञ्च त्वफलपयम् ।

१६१ अ० २७-२८ श

ब्राह्मणं च पुरस्सृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम् ।
 पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥
 पुराणं सर्पतीर्थेषु तीर्थञ्चाधिकमुच्यते ।
 यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ।
 सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ।
 तथैवान्त प्रकाशाय पुराणाधयवो हरिः ।
 विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ।
 तस्माद्यदि हरैः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
 श्रोतव्यमनिश पुष्मि पुराणं कृष्णरूपिणः ।
 विष्णुमत्तेन शान्तेन श्रोतव्यमिति दुर्लभम् ।
 पुराणाप्यानममलममलीकरणं परम् ।
 यस्मिन्वेदार्यमाहृत्य हरिणा व्यासमुपिणा ।
 पुराणं निर्मितं विप्रं तस्मात्तत्परमो भवेत् ।
 पुराणो निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
 तस्मान्मृती पुराणे हि श्रुते विष्णुमंवेदिति ।
 तथा गङ्गाम्बुसेनेन नाशयेत्किल्बिषं स्वयम् ।
 केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम् ।
 वैष्णवो विष्णुमजनस्याऽऽकाङ्क्षी यदि धर्तते ।
 गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत् ।
 विष्णुमक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते ।
 विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी ।

ब्राह्मणेषु पुराणेषु गङ्गाया गोपु पिप्पले ।
नारायणधियापुम्भिर्मक्ति कार्या ह्यहैतुकी ।

पद्मपुराण भादिखण्डे ६२ अध्याय—५८ ७०

योऽधीते श्रुतिमेवाऽऽदौ सम स्यात्तपसा मुने । श्रुतेऽध्यापनात्पुण्य
यदाप्नोति द्विजोत्तम । तद्भ्यायाच्च जप्याच्च द्विगुण फलमश्नुते ।
जगद्यथा निरालोक जायते शशिभास्करौ । विना तथा पुराण
हि ध्येयमस्मान्महामुने ॥ तपमान सदाज्ञानयो धारयति शास्त्रत
सम्बोधयति लोकञ्च तस्मात्पूज्यतमो गुरु । सर्वेपाञ्चैव पात्राणा
श्रेष्ठ पात्र पुराणवित् पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पात्रमुदाहृतम् ।

विष्णोरायतने यस्तु कारयेद्धर्म पुस्तक देव्या शम्भोर्गणेशस्य
धर्मस्यच तथा पुन ॥ राजसूयाश्वमेधाभ्या फलमप्राप्नोति मानव ।
इतिहासपुराणाना पुण्य पुस्तकवाचनम् सर्वान्कामानवाप्नोति
सूर्यलोकम्भिनित्ति स । सूर्यलोकञ्च भित्वाऽसौ ब्रह्मलोकञ्च गच्छति ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यम्पुस्तकवाचनम् । इतिहासपुराणाना

[पद्मपुराण उत्तर खण्ड]

वैष्णव दक्षिणो चाहु शैव घामो महेशितु ।
उरु भागवतमप्रोक्त नामि स्यान्नारदीयकम् ।
मार्कण्डेयञ्च दक्षाद्भिर्चामो ह्याग्नेयमुच्यते ।
भविष्य दक्षिणो जानुर्धिष्णोरेव महात्मन ।
ब्रह्मवैवर्तसम्प्रान्तु घामजानुर्दाहृत ।
लैङ्गन्तु गुल्फ दक्ष घाराह घामगुल्फकम् ।

स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य धामनं स्मृतम् ।
 कौमं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते ।
 मञ्जा तु गारुडम्प्रोक्तं ब्रह्माण्डमसि गीयते ।
 एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः ।

[पद्मपुराण आदिम खण्ड]

अथ विष्णोः परेशस्य नानाविग्रहधारिणः ।

एकं पुराणफलकं तच्छृणुभ्यं द्विजोत्तमाः ।

तत्र ब्रह्मकल्पवृत्तान्तोद्भवं ब्राह्मं हरेर्मस्तकं पद्मकल्पवृत्तान्तो-
 द्भवं पाद्मं हृदयं, चाराहकल्पवृत्तान्तोद्भवं वैष्णवं दक्षिणबाहुः,
 श्वेतकल्पवृत्तान्तोद्भवं शिवपुराणं धामबाहुः, सारम्बतकल्पवृत्ता-
 न्तोद्भवं भागवतं चक्षुःस्थलं, बृहत्कल्पवृत्तान्तोद्भवं नारदीयं नाभिः,
 श्वेतचाराहकल्पवृत्तान्तोद्भवं मार्कण्डेयं दक्षिणाट्टिः, ईशानकल्प-
 वृत्तान्तोद्भवं आग्नेयं धामाग्निः, अथोरकल्पवृत्तान्तोद्भवं भविष्यं
 दक्षिणजानुः, स्थन्तरकल्पवृत्तान्तोद्भवं ब्रह्मवैवर्तं धामजानुः,
 कल्पान्तवृत्तान्तोद्भवं लैङ्गं दक्षिणगुल्फः, मनुकल्पवृत्तान्तोद्भवं
 चाराहं धामगुल्फः, तत्पुरुषकल्पवृत्तान्तोद्भवं स्कान्दं हरेः रोमानि,
 शिवकल्पानुपद्भिं धामनं शरीरत्वक्, लक्ष्मीकल्पवृत्तान्तोद्भवं
 कौमं पृष्ठं, कल्पादीं सतकल्पवृत्तान्तोद्भवं मात्स्यं मेदम्, गरुड-
 कल्पवृत्तान्तोद्भवं गारुडं दक्षिणं पादाग्रं, भविष्यकल्पानां वृत्तान्तो-
 द्भवं ब्रह्माण्डं धामपादाग्रं, एवं सत्त्वरजस्तम आद्यान्मकमष्टादश
 पुराणरूपो हरिः पुराणेषु प्रकाशने । तत्र सात्त्विक पुराणे विष्णो
 रधिकमाहान्यं गजसे प्रकृतिप्रलसूर्याणां तामसेऽग्निशिव-

भैरवादीनां माहात्म्यम् । मिश्रे तु पितृणां माहात्म्यम् । एव-
मष्टादशं मुख्यपुराणसंख्यासमूहश्चतुर्लक्ष एव ।

(इतिपाद्ममात्स्ययोः)

अथ च अष्टादशम्यश्च पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते । विजानीध्वं
द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम् ।

तन्त्रवार्तिके प्रथमाध्यायस्य तृतीय पादेः—

एषेवेतिहासपुराणयोरप्युपदेशवाक्पानां गतिः ।

उपाख्यानानि त्वर्थवादेषु व्याख्यातानि ।

यस्तु पृथिवीविभागकथनं तद्धर्माधर्मसाधनफलोपभोग-
प्रदेशविवेकाय किञ्चिद्दर्शनपूर्वकं किञ्चिद्वेदमूलम् ।

वंशानुकमणमपि-ब्राह्मणक्षत्रियजातिगोत्रज्ञानार्थं
दर्शनस्मरणमूलम् । देशकालपरिमाणमपि लोकज्योतिः-
शास्त्रव्यवहारसिद्ध्यर्थं दर्शनगणितसम्प्रदायानुमान-
पूर्वकम् भाविकथनमपि त्वनादिकालप्रवृत्तयुगस्वभाव-
धर्माधर्मानुष्ठानफलविपाकवैचिश्यज्ञानद्वारेण वेदमूलम्
अद्भुतविद्यानामपिऋत्वर्थपुरुषार्थप्रतिपादनं लोकवेदपूर्वकत्वेन
विवेकव्यम्—

इससे स्पष्ट हो गया कि धर्मशास्त्रों के पढ़े बिना विशाल
भावना का निर्माण असम्भव है । विशाल भावना के बिना शान्ति,
ऐश्वर्य और सुशील की अभिवृद्धि कभी नहीं हुआ करती ।

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि पुराणों में अनेक स्थलों
पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने अपने अपने मतों के स्थापन तथा पुष्टि

लिये अनेक प्रक्षिप्त पाठ समाविष्ट कर दिये हैं; परन्तु जहाँ तक इन पुराणोंका पारायण व मनन किया है उससे मेरी तुच्छ इ इसी निष्कर्ष पर पहुँची है कि इन अष्टादश पुराणों में कहीं प्रक्षिप्त पाठ का समावेश नहीं किया है। अन्य श्रीमद्भागवत के उपपुराणोंमें चाहे प्रक्षिप्त श्लोक समाविष्ट कर दिये गये हों तु अष्टादश महापुराणों में महर्षिप्रणीत पुरातन पाठ ही ज्यों त्यों अपरिचर्चित तथा अपरिचिद्धित रूपमें चला आ रहा है में किसी प्रकार की वृद्धि साम्प्रदायिक आचार्यों के द्वारा की गई प्रतीत होती है। प्रन्युत बराहपुराण में तो महर्षि-त पूरा पाठ भी नहीं उपलब्ध हो रहा है। इनमें आया हुआ एक शब्द ध्रुव सन्ध तथा सृष्टि कल्याण भावना से ओत-है। उसमें किसी प्रकार आर्शका व सन्देह का अवकाश नहीं ईश्वरीय प्रकृति की मर्यादारूप से इनमें स्थिति है। इनकी कारी न होने के कारण ही आज का मानव मनमाने कर्म व नाना कष्टों का शिकार बना हुआ है, अतः आत्म कल्याण-ार्थी प्रत्येक मानव को इनका मनन करना नितान्त आवश्यक है।

आजकाल विशाल भावनायें कितनी संकुचित होती जा रही हैं इसी बातसे स्पष्ट है कि बालकों के असीम ज्ञान को थोड़े समय के लिये दिये गये प्रश्नपत्रों द्वारा ही परीक्षा कर लेनी योग्यता का प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। इससे आसन्नहीनता, प्राचीन गुरुशिष्य-परम्परा का अभाव और

और इतनी विशाल ज्ञान राशि पाने पर भी अज्ञानान्धकारमें आज-कालके नवयुवकों का मस्तिष्क भटकता है कि इन्हें केवल सङ्घर्ष, अशान्ति और कलह की चिनगारी सुलगानेमें ही आनन्द आता है।

आज काल हमारे बालकों को जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उससे विकास बिलकुल ही रुक जाता है। आज तो कुछ प्रश्नपत्र पढ़ाकर उनके अपेक्षित उत्तरों से सन्तोष माननेवाला अध्यापक सब शिष्य और उनके अभिभावकगण कृतकृत्य हो जाते हैं, सब एकही ध्येय धनाये रहते हैं; उत्तीर्ण होना। क्या बालक के माता पिता, क्या भाई बहिन क्या अन्य शुभचिन्तक एक ही बात कहते हैं कि हमारा बालक उत्तीर्ण हो।

इसका बुरा परिणाम यहाँ तक देखने में आता है कि नौनिहाल राष्ट्र की भावी उन्नति ये बालक और ये नवयुवक अपने जीवन तक की भी वाजी लगा देते हैं। अर्थात् इस पर भी दुर्भाग्य से उत्तीर्ण होने का सुसमाचार न मिला तो लज्जित होकर वह नवयुवक आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसे सुन्दर ज्ञान की प्राप्ति के लिये धृणित उपाय काम में लेते हैं जैसे, नकल करना, परीक्षक को अनाचार का शिकार बना उससे अनुचित रीति से अड्ड ले लेना। कहां तक कहें यदि कहीं थोड़ा सा भी प्रश्नपत्र कठिन आ जावे तो परीक्षा भवन में ही हल्ला मचा कर उड़ण्डता से प्रश्नपत्र के विरोध में हड़ताल कर देना अनुशासन तोड़ना, और यहांतक कि परीक्षा भवन के अध्यक्ष की हत्यातक भी की गई देखी गई है। ऐसे राष्ट्र की जड़ को खोखल

बनानेवाले दृष्टित तत्त्व इस शिक्षा के अनिर्धार्य अङ्ग बन चुके हैं। यस ऐसे विकास से भगवान ही रक्षा करें। हमें विकास की अवश्य आवश्यकता है परन्तु शक्तिहीन करने वाला विकास अनिच्छित है।

ऊपर निवेदन किया है कि सारा यह दोष आजके विद्यार्थी का ही नहीं है इसमें उनकी शिक्षा पद्धति का बाह्य और अन्त रूप बनाने वाली विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं का भी कम दोष नहीं है। वे सब समय एक ही दृष्टि से काम करने हैं। किसी प्रकार विश्व-विद्यालय के परीक्षार्थी छात्रों की संख्या बढ़े। ये यह कमी नहीं सोचते कि जहां पञ्चवर्षीय योजना के लिये बड़े भारी रूप में जो नदी बाध योजनायें विद्युत् उत्पादनशक्तिकेन्द्र और अन्नोत्पादनार्थ नहरें बनाई जा रही हैं उनके पीछे सब को चलाने वाले इस बौद्धिक केन्द्र मनुष्यरूपी शक्ति का सञ्चालन करने के लिये हमने क्यों उपेक्षा और अनवधानता कर रखी है ? आज तक इस शिक्षाको भारतीय रूपरेखा में ढालने का प्रयत्न हुआ अवश्य लेकिन सब ही नकार पाने में तृती की आघात ही सिद्ध हुई। आज उत्तीर्ण होने के लिये प्रयत्न जोगों से बालू है और संसार यात्रामें प्रवेश करने पर उस कर्तव्याकर्तव्यशून्य व्यक्ति का ज्ञान उसे सदा थपेड़ों से सीधा करता है।

इस प्रकार हमें अपने आपको भावी सन्तान की विकाश शील प्रवृत्ति के लिये सचेष्ट रूपमें प्रयत्न करना चाहिये इसीमें सब का कल्याण है।

और इतनी विशाल ज्ञान राशि पाने पर भी धननान्यपारमें धात्र फलके नवयुवकों का मस्तिष्क भटकता है कि इन्हें केवल सङ्घर्ष, अशान्ति और फलके चिनगारी सुगमने में ही धानन्द आता है।

राज फल हमारे बालकों को जो पुम्नरें पढाई जाती हैं उससे विफाश बिलकुल ही रफ जाता है। आज तो कुछ प्रश्नपत्र पढाकर उनके अपेक्षित उत्तरों से सन्तोष माननेवाग अध्यापक सब शिष्य और उनके अभिभावकगण कृतकृत्य हो जाने हैं, सब एकही ध्येय बनाये रहते हैं; उत्तीर्ण होना। क्या बालक के माता पिता, क्या भाई बहिन क्या अन्य शुभचिन्तक एष ही यात कहते हैं कि हमारा बालक उत्तीर्ण हो।

इसका घुरा परिणाम यहा तक देखने में आता है कि नौनिहाल राष्ट्र की भाषी उन्नति ये बालक और ये नवयुवक अपने जीवन तक का भी धार्जी लगा देते हैं। अर्थात् इस पर म दुर्भाग्य से उत्तीर्ण होने का सुसमाचार न मिला तो लड्डि होकर घह नवयुवक आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसे सुन्द ज्ञान की प्राप्ति के लिये घृणित उपाय काम में लेते हैं जैसे नकल करना, परीक्षक को अनाचार का शिकार बना उसरें अनुचित रीति से अड्डु ले लेना। कहा तक कहें यदि कहीं थोड सा भी प्रश्नपत्र कठिन आ जावे तो परीक्षा भवन में ही हल मचा कर उद्दण्डता से प्रश्नपत्र के विरोध में हडताल कर देना अनुशासन तोडना, और यहातक कि परीक्षा भवन के अध्यक्ष व हत्यातक भी की गई देखी गई हैं। ऐसे राष्ट्र की जड को खोर

घनानेवाले दूषित तत्त्व इस शिक्षा के अनिघार्थ अङ्ग बन चुके हैं। यस ऐसे विकास से भगवान ही रक्षा करे। हमें विकास की अवश्य आवश्यकता है परन्तु शक्तिश्रीण करने वाला विकास अनिच्छित है।

ऊपर निवेदन किया है कि सारा यह दोष आजके विद्यार्थी का ही नहीं है इसमें उनकी शिक्षा पद्धति का वाह्य और अन्त रूप घनाने वाली विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं का भी कम दोष नहीं है। वे सत्र समय एक ही दृष्टि से काम करते हैं। किसी प्रकार विश्व विद्यालय के परीक्षार्थी छात्रों की सरया बढे। ये यह कभी नहीं सोचते कि जहा पञ्चवर्षीय योजना के लिये बढे भारी रूप में जो नदी बाध योजनायें विद्युत् उत्पादनशक्तिकेन्द्र और अन्नोत्पादनार्थ नहरें बनाई जा रही हैं उनके पीछे सब को चलाने वाले इस धीन्द्रिक केन्द्र मनुष्यरूपी शक्ति का सञ्चालन करने के लिये हमने क्यों उपेक्षा और अनवधानता कर रखी है ? आज तक इस शिक्षाको भारतीय रूपरेखा में ढालने का प्रयत्न हुआ अवश्य लेकिन सब ही नक्कार खाने में तूती की आवाज ही सिद्ध हुई। आज उत्तीर्ण होने के लिये प्रयत्न जोरों से चालू है और सत्सार यात्रामें प्रवेश करने पर उस कर्तव्याकर्तव्यशून्य व्यक्ति का ज्ञान उसे सदा थपेडों से सीधा करता है।

इस प्रकार हमें अपने आपको भारी सन्तान की विकाश शील प्रवृत्ति के लिये सचेष्ट रूपमें प्रयत्न करना चाहिये इसीमें सब का कल्याण है।

धर्मशास्त्र ग्रन्थों में महर्षियों ने ज्ञान विज्ञान को कूट कूट पर भर दिया है। इन पुण्यश्लोक महर्षियों के लक्ष्य को उन्हीं के समान उदार लोकोपकारितापूर्ण बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति ही जानसकते हैं क्योंकि इनका निर्माण ही तप, पूत महर्षियों की कल्याणमयी प्रवृत्ति एवं सद्बिचारपूर्ण भावनाओं से हुआ है।

आधुनिक लोग सत्यमार्ग बताने वाले शास्त्रों के अध्ययन को एक किनारे छोड़ बड़ीर डिग्रियों के लिये एटी चोटी का पसीना एक कर देने हैं। अपनी चिह्नता की कसौटी उन्हीं उपाधियों के प्रमाण पत्रों को ही समझते हैं। परन्तु यह सब शास्त्रीय ज्ञान एवं साहित्य को सङ्कुचित करने में ही अधिक सहायक हुआ है और साथ ही उस सुन्दर ज्ञान की खिल्ली उड़ाने में भी। क्योंकि इन गम्भीर परोक्ष अर्थों से पूर्ण शास्त्रों को सङ्कुचित भावोंसे देखने से ही अपना पराया किसी का भी हित साधन नहीं हो सकता है। इसी का परिणाम है सृष्टि की अशान्ति। मुझे तो खेद और दुःख तब होता है जब मैं यह सोचता हूँ कि ऐसे महानुभाव श्रुति स्मृति एवं पुराणादि के बिना अपने को सङ्कीर्ण मनोवृत्ति का शिकार बना अपनी उपाधियों से गौरवान्वित होकर हमारी भावी पीढ़ी को किस प्रकार शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सर्वाङ्गीण शिक्षा देकर उन्नत बनाने के लिये शिक्षा के अधिकारी कर्णधारों द्वारा चुने जाते हैं। क्या ये कभी भावी सन्तान को उन्नत शिक्षा दे सकेंगे? यह सब

प्रभु ही साक्षात् रूप से जानें। मुझे तो किसी प्रकार भी उन भावी सन्तानों का उद्धार इनसे असम्भव सा ही लगता है।

शास्त्र स्पष्ट कहते हैं कि शास्त्रों के बिना जो भी कार्य करता है वह अपना एव अपने से सम्बन्धित सभी का अत्यधिक अहित करता है।

श्रुतिहीनाय विप्राय स्मृतिहीने तथैव च । दानम्मोजनमन्यश्च दत्त कुलविनाशनम् ।

अस्तु, सृष्टि में शान्ति स्थापना इनमें निहित भावों को व्यापक दृष्टि से प्रचार करने से ही हो सकती है। इसका एकमात्र उपाय है बहुश्रुतता, श्रुति स्मृति पुराणादि की पूरी सङ्गति विडाना एवं उदार प्राणिहित की भावना से अर्थ का प्रकाश करना।

बुद्धिबृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च । नित्य शास्त्राण्य-
वेक्षेत निगमाश्चैव वैदिकान् ॥ यथा यथा हि पुरुष शास्त्र
समधिगच्छति । तथा तथा विजानाति विज्ञानज्ञास्य रोचते ।
मनुस्मृति अ० ४।१६।२० ।

शास्त्रों को बुद्धिके द्वारा कसौटी पर कस कर पूर्ण सङ्गत बर्थ निकालना चाहिये जो सर्व प्राणि हित में पूर्ण सहायक हो क्योंकि इनका एक एक शब्द ईश्वरानु है जिसका स्वार्थमय अभिप्राय मानव की अपूर्णता और अवनति का द्योतक और हमारे लिये सदा ही घातक है।

जो लोग इस ज्ञानमें घञ्चित हैं उनकी ग्वाली डिप्रिया

उपाधिमात्र है। “ज्ञानं भारः क्रियाग्निना।” स्वरूपकी उपलब्धि युक्त क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है।

“शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स चिद्वान्” शास्त्राध्ययन करनेपर भी क्रिया रहित उच्च भाष्य से जीवनमें शास्त्र के सिद्धान्तों का आवरण न करने से प्राणिमात्र का उपकार न कर सकने के कारण ऐसे व्यक्ति के सब ग्रन्थों का पठन अपूर्ण ही माना जाता है। आज तो जब परीक्षा पिशाचिनी का जोर बढ़ रहा है तो ग्रन्थका उच्च लक्ष्य से भाष्य बिलकुल समझा ही नहीं जाता और “पुस्तकी भवति पण्डितः” होकर अपने को धन्य समझनेमें ही उनके लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है। फलतः शास्त्र जीवन शास्त्रबुद्धि और संस्कृति का रूप सब विकृत हो गया है ऐसे लोगोंको शास्त्र का तत्त्व दुरधिगम है।

गुरु प्रसाद, भगवत्कृपा और शास्त्र बुद्धिसे इनका स्वाध्याय उदार हृदय और लोकोपकारितापूर्ण भावना द्वारा अध्ययन करने से ही शास्त्र जीवनी प्रचलित हो सकती है। तभी प्राणिमात्र का पूर्ण फल्याण है।

इस लिये सभी से मेरी चिनम्र प्रार्थना है कि शास्त्रों में जो तत्त्व फूट फूटकर भरा है उसे यथार्थ रूपमें जानने का प्रयत्न हो इसी से शान्ति प्राप्त होकर अमरता, सफलता और स्थायिता मिलती है। अतः विशाल हृदय और उच्च भावना से इनका स्वाध्याय कर प्राणी मात्र के फल्याण में संलग्न रहें। साथही

यह ध्यान रहे बुद्धि के बिना तत्त्व परिणाम और ज्ञान की वृद्धि नहीं होती एवं ज्ञान की प्राप्ति के बिना मोक्ष असम्भव है। संस्कृत का अक्षर ज्ञान मुझे स्वल्प है न तो मैं स्वयं व्याकरण के व्युत्पत्ति लभ्य शब्द अर्थ का ज्ञाता हूँ, न ही मैंने साहित्य का किसी प्रकार से विशेष अध्ययन किया है परन्तु मेरा मन सदा से ही इधर लगा है। हां, गतदशकों से मैं संस्कृत साहित्य का यत्किञ्चिन् आस्वादन पण्डितों की सहायता से कर पाया हूँ। ज्यों ज्यों मेरा प्रवेश होता गया त्यों त्यों ज्ञानवृद्धि के साथ मेरा प्रेम और आकर्षण इस अलौकिक साहित्य के प्रति अधिकाधिक अगाध श्रद्धा के साथ बढ़ता गया। मुझे प्रति दिन अमित धन राशि मिलती जाती है। मेरा समय दूसरे व्यवहार के कार्यों में लगा रहनेपर भी अपना मन अहर्निश इनके स्वाध्याय में प्रवृत्त होकर अमित आनन्द लूटने का अभि लाषा करता है। अवश्य ही जीवन में इनका स्वाध्याय स्पृहणीय है।

इसी अगाध श्रद्धा एवं प्रेम का ही प्रत्यक्ष फल यह पुराण परिचयके रूपमें इन पृष्ठोंमें एकत्रित संग्रह थोड़ा बहुत सेवा में प्रस्तुत है। मैं अपने नित्य स्वाध्यायसे जो कुछ इस महान् अगाध समुद्र में से प्राप्त करता हूँ वह सब यथासमय पत्रों द्वारा निवेदन किया जाता ही है।

आशा है, उदार पाठकगण अभिनव, स्वतन्त्रता के विकसनशील घातावरण में सर्वाधिक शास्त्रमय जीवन बनाकर आदर्श

एवं यथार्थवादी कसौटी पर सिद्धान्तों का निर्धारण कर इन महान् ग्रन्थों में प्रस्तुत ज्ञान का सच्चे अर्थों में प्रचार करेंगे।

इनमें जो कुछ सुन्दर वन सका है वह आप उदार सज्जनोंकी महनीय कृपा का फल है और कोई ब्रुटिपूर्ण या असुन्दर वस्तु भूल से रह गई हो उसके लिये मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं अहर्निश आप सभी महानुभावों के शुभाशीर्वाद का इच्छुक हूँ जिससे प्रभु कृपा द्वारा शक्ति एवं सत्प्रेरणा से कर्तव्य पालन में लगा रहें। अपने विनम्र निवेदन का उपसंहार करते हुए प्रभु से हम सब को सद्बुद्धि प्रदान एवं कर्तव्य पालन क्षमता की सतत प्रार्थना है।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

श्रीब्रह्मपुराण में आये हुए विषयों का अनुक्रम

अध्याय

प्रधान विषय

पृष्ठाङ्क

१ नैमिषारण्यवर्णनम्, मुनिगणलोमहर्षणसंवाद-
वर्णनम् ।

मगलाचरण के श्लोक, नैमिषारण्य का वर्णन, मुनियों का शुभागमन, नैमिषारण्य में सूतजी का जाना तथा ऋषियों का उनके प्रति पुराण सुनाने के लिये सानुरोध प्रश्न, श्री लोमहर्षण द्वारा पुराणकथा का आरम्भ ।

१ आदिर्गर्गवर्णनम् ।

५

सृष्टि के सम्बन्ध में विवरण, जल की उत्पत्ति, ब्रह्माजी का आचिर्भाव, ब्रह्मा द्वारा अण्ड का दो भाग करना, ब्रह्मा से मरीचि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । रुद्र आदि का उद्भव, वैवस्वत मनु की उत्पत्ति, आदि सर्ग के सुतने का फल ।

२ स्वायम्भुवमनुवंशवर्णनम्, पृथ्वीत्पत्तिः, तद्वंशवर्णनञ्च,
दक्षवंशवर्णनम् ।

७

स्वायम्भुव मनु के साथ शतरूपा का विवाह, शतरूपासे प्रिय-
वतः उच्चावपाद दो एव एतं कामया नामक कन्या के जन्म

का आख्यान । उत्तानपाद् के वश का वर्णन । प्रसङ्ग से पृथुका जन्म । प्रचेताओं की उत्पत्ति प्रचेताओं के मुख से निकली हुई अग्नि से वृक्षों का जलना । उनका वृक्षकन्या के साथ विवाह । वृक्षकन्या में दक्ष की उत्पत्ति पर दक्ष का वशावर्णन एवं इस कथा के सुनने का फल ।

३ देवदानवोत्पत्तिवर्णनम् ।

१३

देवताओं की उत्पत्ति कथन । सर्व प्रथम दक्ष की मानसिक सन्तान का वर्णन पुन मैथुन धर्म से असिक्नी नामक पत्नी में हर्यश्वों का जन्म । पिता की आज्ञा से वश बढ़ाने के लिये इच्छुक हर्यश्वों को नारदजी का उपदेश और उनका घन में जाना । फिर शयलाश्व नाम पुत्रों की उत्पत्ति, उनका भी नारद जो के उपदेश से पूर्ववत् घन में जाना । शयलाश्व को नष्ट जान कर दक्ष ने फिर ६० कन्याओं का उत्पत्ति का उनका विवाह एवं उनका सन्तानों का वर्णन । मरुद्ग की उत्पत्ति ।

अकृत्वा पादयो शौच दिति शयनमाविशत् ।

निद्रा चाहारयामास तस्या कुक्षिं प्रविश्य स ॥

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सतथा त न्यकृन्तयत् ।

स पाट्यमानो गर्भाऽथ घञ्जेण प्रहरोदह ॥

मा रोदीरिति त शक्र पुन पुनरघात्रवीत् ।

सोऽभवत् सतथा गर्भं स्तमिन्द्रो रुषित पुन ॥

एकैव सप्तथा चक्रे घञ्जेणैवारिकर्षण ।

मरुतो नाम ते देवा बभूवु द्विजसत्तमाः ॥

भूत सर्ग के सुनने का फल ।

४ पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेकवर्णनम्
पृथुचरित्रवर्णनम्, पृथुपृथ्वीसंवादवर्णनम् २५

पितामह द्वारा उन-उन स्थलों पर किये गये देव दानवों का राज्याभिषेकवर्णन ।

पृथुचरित्र का आरम्भ । वेन का चरित्र । वेन के दुश्चरित्रों को देखकर ऋषियों द्वारा शाप देना । ऋषियों के शाप से मरे हुये वेन की वाहु के मथन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्यकी स्थितिका वर्णन, सूत, मागध एवं यन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति ।

थापस्तस्मिन्ने तस्य समुद्रममिथास्यतः ।

पर्यन्ताश्च द्दुर्भागं भवजमङ्गश्च नामवत् ॥

अरुणपत्न्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात् ।

सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ।

पृथु का पृथ्वी पर शासन ।

५ पृथ्वीदोहनवर्णनम् ३५

पृथु का पृथ्वी के दोहने का वर्णन ।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः ।

धनुष्कोट्या तदा वैश्वस्तेन शैला विषर्दिताः ॥

नहि पूर्वं विसर्गे वै विपमे पृथिवीतले ।

का आख्यान । उत्तानपाद के वंश का वर्णन । प्रसङ्ग से पृथुका जन्म । प्रचेताओं की उत्पत्ति प्रचेताओं के मुख से निकली हुई अग्नि से वृक्षों का जलना । उनका वृक्षकन्या के साथ विवाह । वृक्षकन्या में दक्ष की उत्पत्ति एवं दक्ष का वंशवर्णन एवं इस कथा के सुनने का फल ।

३ देवदानवोत्पत्तिवर्णनम् ।

१३

देवताओं की उत्पत्ति कथन । सर्व प्रथम दक्ष की मानसिक सन्तान का वर्णन पुनः मैथुन धर्म से असिक्ती नामक पत्नी में हर्यश्वो का जन्म । पिता की आज्ञा से वंश बढ़ाने के लिये इच्छुक हर्यश्वों को नारदजी का उपदेश और उनका घन में जाना । फिर शबलाश्व नाम पुत्रों की उत्पत्ति, उनका भी नारद जी के उपदेश से पूर्णवत् घन में जाना । शबलाश्वों को नष्ट जान कर दक्ष ने फिर ६० कन्याओं की उत्पत्ति की उनका विवाह एवं उनको सन्तानों का वर्णन । मरुद्गण की उत्पत्ति ।

अट्टत्वा पादयो. शौचं दिति शयनमाविशत् ।

निद्रा चाहारवामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥

घञ्जपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा त न्यवृन्तयत् ।

स पाट्यमानो गर्भाऽथ घञ्जेण प्ररुरोद्ध ॥

मा रोदीरिति त शक्र. पुन पुनरथाव्रवीत् ।

सोऽमघत् सप्तधा गर्भं स्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥

एकैक सप्तधा चक्रे घञ्जेणैवारिकर्षणः ।'

मरुतो नाम ते देवा यभूवु द्विजसत्तमाः ॥

भूत सर्ग के सुनने का फल ।

४ पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेकवर्णनम्

पृथुचरित्रवर्णनम्, पृथुपृथ्वीसंवादवर्णनम् २५

पितामह द्वारा उन-उन स्थलों पर किये गये देव दानवों का राज्याभिषेकवर्णन ।

पृथुचरित का आरम्भ । वेन का चरित । वेन के दुश्चरित्रों को देखकर ऋषियों द्वारा शाप देना । ऋषियों के शाप से मरे हुये वेन की बाहु के मथन से पृथु का जन्म, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु के राज्यकी स्थितिका वर्णन, सत्, मागध एवं वन्दी जन द्वारा पृथु की स्तुति ।

आपस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यत ।

पर्वताश्च द्दुर्भागं ध्वजमङ्गश्च नामवत् ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सिभ्यन्त्यज्ञानि चिन्तनात् ।

सर्वकामदुघा गाव पुटके पुटके मधु ।

पृथु का पृथ्वी पर शासन ।

४ पृथ्वीदोहनवर्णनम्

३५

पृथु का पृथ्वी के दोहने का वर्णन ।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रश ।

धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विघर्दिता ॥

नहि पूर्वं विसर्गे धै विपमे पृथिवीतले ।

सविभाग पुराणा वा ग्रामाणा धामयत्तदा ॥

न शस्यानि न गोरक्ष्य न वृषिर्न घणिक् पथ ।

नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सर ॥

यैषस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रत समुपस्थिते ।

यैग्यात्प्रभृति वै विप्रा सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥

यत्र यत्र सम त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजा ।

तत्र तत्र प्रजा सर्वा विवास समरोचयन् ॥

आहार फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।

वृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥

स कल्पयित्वा वत्स तु मनु स्वायम्भुव प्रभुम् ।

स्वपाणौ पुरुषय्याग्रो दुदोह पृथिवी तत ॥

शस्य जातानि सर्वाणि पृथुर्वैभ्य प्रतापवान् ।

तेनान्नेन प्रजा सर्वा वर्तन्तेऽद्यापि सर्वश ॥

दोहने में घत्स, पात्र, दुग्ध और दोहनेवालों का वर्णन ।

ऋषयश्च तदा देवा पितरोऽथ सरीसृपा । ६८

दैत्या यक्षा पुण्यजना गन्धर्वा यर्वतानगा ॥

पते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहूर्धरणी किल ।

क्षीर घत्सश्च पात्रञ्च तेषा दोग्धा पृथक् पृथक् ॥

ऋषीणामभवत्सोमो घत्सो दोग्धा बृहस्पति ।

क्षीर तेषा तपो ब्रह्म पात्र छन्दासि भो द्विजा ॥

देवाना काञ्चन पात्र घत्सस्तेषा शतक्रतु ।

क्षीरमोजस्करञ्चैष दोग्धा च भगवान् रवि ।

पितृणां राजतं पात्रं यमोवत्सः प्रतापवान् ।

अन्तकश्चाभवद् दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता ॥

नागानां तक्षकोवत्सः पात्रं चालावुसंज्ञकम् ।

दोग्धा त्वैरावती नागस्तेषां क्षीरं विषं स्मृतम् ॥

असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम् ।

विरोचनस्तु घत्सोऽभूदायसं पात्रमेव च ॥

यक्षाणामामपात्रं तु घत्सो वैश्रवणः प्रभुः ।

दोग्धा रजतनामस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥

सुमाली राक्षसेन्द्राणां घत्सं क्षीरञ्च शोणितम् ।

दोग्धा रजत नामस्तु कपालं पात्रमेव च ॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो घत्स पात्रं च पङ्कजम् ।

दोग्धा च सुरचिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥

शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नीपधीस्तथा ।

घत्सस्तु हिमवानासीद् दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥

प्लक्षो घत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः ।

पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम् ॥

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा ।

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥

सर्वकामदुग्धा दोग्धी सर्वशस्यप्ररोहिणी ।

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ।

मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा सममिप्लुता ।

तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥

- ५ मन्वन्तरवर्णनम् ३७
मन्वन्तरो में देवर्षि इन्द्रादिकों का निरूपण । महाप्रलय एवं अल्प प्रलय का वर्णन ।
- ६ आदित्योत्पत्तिवर्णनम् ४४
आदित्य के पुत्र एवं कन्या का वर्णन, छाया एवं संज्ञा का संवाद और उनका चरित्र वर्णन । विवस्वान् (सूर्य) एवं यम का संवाद । छाया का घोड़ी रूप धारण करना, सूर्य का अश्व रूप से छाया के साथ संगम । देववैद्य अश्विनी-कुमारों की उत्पत्ति । संक्षेप से सूर्य पुत्र यमुना, शनैश्चर सार्वर्षि का वर्णन, देव सृष्टि के सुनने का माहात्म्य ।
- ७ सूर्यवंशवर्णनम्, इलोपाख्यानवर्णनम्, कुवल्या-
श्वचरित्रवर्णनम्, मत्स्यव्रतचरित्रवर्णनञ्च ४६
सूर्य वंशमें इलाको उत्पत्ति इला एवं मैत्रावरुण का संवाद । इलाका बुधके साथ समागम । सुद्युम्नादिकों का जन्म उनका वंश वर्णन, इक्ष्वाकु आदि मनु पुत्रों का वंश वर्णन । कुश-स्थलीका निर्माण । बलदेव और रैवतीका विवाह । कुवल्याश्वके चरित्रका वर्णन । पिताके द्वारा कुवल्याश्वका चरित्र वर्णन । पिता के द्वारा कुवल्याश्व का राज्याभिषेक एवं कुवल्याश्वके घरमें उत्तङ्क मुनिका आगमन और उनकेद्वारा धुन्धु राक्षस के चरित्रका वर्णन । पिताकी आज्ञासे कुवल्याश्व का उत्तङ्क के साथ धुन्धु राक्षस को मारने के लिये जाना । धुन्धु राक्षस

का षष्ठ । धुन्धुमार को उत्तङ्क का घरदान । धुन्धुमार के वंशमें होने वाले राजाओं का संक्षेप में चरित्र वर्णन । सत्यव्रत राजाका चरित्र वर्णन एवं गालव चरित्र कथन ।

समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्मेण वै तदा ।
 दासस्तु तन्म्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥
 सन्यस्य सागरास्तेतु चकार विपुलं तपः ।
 तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥
 शेषस्य भरणार्थां व्यक्रीणाद् गोगते न वै ।
 तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रमार्थं नृपात्मजः ॥
 महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः ।
 सत्यव्रतो महाबाहुर्मरणं तस्य चाकरोत् ॥
 विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।
 सोऽभवद्गालवोनाम गलेबन्धान्महातपाः ॥
 महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन धीरेण मोक्षितः ।

८ सत्यव्रतचरित्रवर्णनम्, मगरोपाख्यानवर्णनम्, सगरवंश-
 वर्णनम् ६०

सत्यव्रतका त्रिशंकु नाम प्राप्ति करना, सशरीर त्रिशंकु का स्वर्ग जाना । हरिश्चन्द्र का जन्म कथन ।

बद्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
 यवनानां शिरः सर्वं काम्योजानां तथैव च ॥
 पारदा मुक्तकेशाश्च दत्त्वाः श्मश्रुधारिणः ।

नि स्वाध्यायघण्टाकारा वृषास्तेन महात्मना ॥
 शका यवनकाग्बोजा पारदाश्च द्विजोत्तमा ।
 कोणिसर्पा माहिषका दर्वाश्चोला सकेरलाः ॥

राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ करना । घोड़े को खोजने के लिये पृथ्वी को खोदते हुये साठ हजार सगर के पुत्रों को कपिल मुनिका शाप । अवशिष्ट चार पुत्रोंको कपिलजी का घरदान । साठ हजार पुत्रों का जन्मकथन ।

घृतपूर्णेपु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे तत ।
 धात्रीश्चैकैकश प्रादात्तावती पोषणे नृप ॥
 ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथा क्रमम् ।
 कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना ॥
 षष्टि पुत्र सहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजा ।

भगीरथ की उत्पत्ति गगाका भागीरथी नाम प्राप्त करना ।

६ सोमोत्पत्तिर्णनम्

७०

अत्रि ऋषि का तप करना एवं अत्रि के नेत्रों द्वारा दश तरह की सृष्टि का घर्णन । चन्द्र की उत्पत्ति । चन्द्र का बीज और औषधियोंका स्वामी बनना एवं राजसूय यज्ञारंभ । चन्द्र द्वारा बृहस्पतिजी की स्त्री तारा का हरण उसके निमित्त देव दानवों का युद्ध । बृहस्पति का तारा की प्राप्ति । गर्भ त्याग के लिये तारा के प्रति बृहस्पति का क्रोधयुक्त घचन कहना । इषीकास्तम्भ में तारा द्वारा गर्भ त्याग एवं बुधका पादुर्भाव ।

१० सोमवंशवर्णनम्

७३

सोम पुत्र युध के वंश से पुरूरवा की उत्पत्ति । पुरूरवा के पुत्र का आख्यान वर्णन । गाधिराजका जन्म । गाधि कन्या सतीका ऋचीक ऋषिके साथ विवाह । एक समय सत्यवती एवं उसकी माता ने पुत्र के लिये ऋचीक से प्रार्थना की । तदनन्तर ऋचीक ने दोनों के लिये दो चरुओं का निर्माण किया पुनः सत्यवती ने माता को अपना चरु दिया एवं माता का आप भक्षण कर गई इससे उलट-पलट सन्नानों का जन्म । सत्यवती के प्रति ऋचीक का घरदान । जमदग्नि की उत्पत्ति । रेणुका एवं जमदग्नि का विवाह । परशुराम की उत्पत्ति । विश्वामित्र का जन्म एव तप आदि का वर्णन ।

११ सोमवंशवर्णनमायुवंशवर्णनञ्च

८०

आयु के पांच पुत्रों की उत्पत्ति । रजिका चरित्र वर्णन । रजि से ५०० सौ पुत्रों की उत्पत्तिकथन । देव दानवों का युद्ध । दैत्यों को जीतने के लिये देवताओं द्वारा रजि की प्रार्थना करना । रजि द्वारा इन्द्रपद की मांग करना तदनन्तर रजि ने दैत्यों को हरा दिया पुनः रजिको इन्द्र पद की प्राप्ति । रजि और इन्द्र का प्रेमालाप । रजि के पुत्रों द्वारा इन्द्रपद का हरण करना एवं इन्द्र द्वारा उनका घथ । इन्द्र को अपने पद की प्राप्ति । राजा अनेता का

सन्तान का घर्षण । धनु नाम के राजा से धन्वन्तरि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति । आयुर्वेद के आठ भाग करके अपने शिष्यों को वितरण करना । काशी को निकुम्भ का शापदान तथा शाप के अन्त में अलर्क द्वारा पुनः स्थापना करना ।

१२ सोमवंशवर्णने ययातिचरित्रवर्णनम् ८६
 नहुष से ययाति आदि पुत्रों का जन्म । ययाति के वंश का घर्षण । ययाति से पञ्च पुत्रों की उत्पत्ति । "मज्जरां गृहाण" मेरी वृद्धावस्था को ग्रहण करो इस प्रकार यदु के प्रति ययाति की आज्ञा । जरा नहीं ग्रहण करने वाले यदु को ययातिका शाप । पुरुसे ययातिको युवावस्था का दान और भोगनेके बाद ययातिको ज्ञान ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हृदिषा कृष्णचर्मेव भूयष्वामिवर्द्धते ॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवःस्त्रियः ।

नाल मेकस्य तत्सर्वं मिति कृत्वा न मुह्यति ॥

१३ पुरुवंशवर्णनम् । ६२

पुरुवंश का घर्षण । पुरुवंश के अन्तर्गत चंगवंशकथन । दुष्यन्त का जन्म । दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति । "भरत प्रभृति वंशजातानां पुरुषार्णा भारता इति संज्ञा" । जह्नु के द्वारा गङ्गाजी को शाप । कुरु से निर्मित कुरुक्षेत्र का घर्षण । सोम वंश में प्रसिद्ध शान्तनु

आदि जनमेजय तक राजाओं का वर्णन। पुरु वंश की समाप्ति। कार्तवीर्यार्जुन का वर्णन कार्तवीर्य को आपव मुनि का शाप।

१४ यदुपुत्रक्रोष्टुवंशवर्णनम् ११२

यदु के पुत्र क्रोष्टु ने यशका वर्णन। वसुदेव का जन्म। वसुदेव की चौदह पत्नियों की नामावलि। सक्षप में कृष्ण जन्मवर्णन। कालयवन के भय से कृष्ण सहित यादवों का (पलायन) भाग जाना।

मानुष्यां गर्गमार्याया नियोगाच्छूलपाणिन ।

स कालयवनो नाम्ना जगे राजा महाबल ॥

१५ वृष्णिवंशवर्णनम् ११७

चमन्कार युक्त राजा ज्यामय का चरित्र वर्णन। वज्र ए ? देवावृध की महिमाका वर्णन। देवकके साथ कन्याओं का उत्पन्न होना एव कंस का जन्म।

१६ मन्त्राजिद्रुपाग्न्यानवर्णनम् । स्यमन्तक्रोपाग्न्यानम् १२४

सन्त्राजिन् के चरित्र का वर्णन। स्यमन्तक मणि का आख्यान। कृष्ण का जाम्बवती के साथ विवाह। ऋक्षराज जाम्बवान् से स्यमन्तक मणि का लाना। कृष्ण और सत्यमामा का विवाह वर्णन।

१७ स्यमन्तक्रोपाग्न्यानवर्णनम् १२६

स्यमन्तरु के लिये शतधन्वा के द्वारा सन्त्राजिन् की मृत्यु।

अकूर के पास स्यमन्तक मणि का मिलना ।

१८ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

१३४

मुनियों का लोमहर्षण के साथ सवाद । भूगोल का वर्णन ।
सप्त द्वीप का वर्णन ।

एते द्वीपा समुद्रेस्तु सप्तसप्तभिरावृता ।

लवणेशुसुरासर्विर्द्धिदुग्धजलै समम् ॥

जम्बू द्वीप का वर्णन एव मेरु पर्वत का वर्णन । भरतादि-
खण्डों का वर्णन ।

अनीलोत्तरमग्भोधि समन्येति द्विजोत्तमा ।

आनीलनिपधायामौ माल्यवदुग्धमादनी ॥

तयोर्मध्यगतौ मेरु कर्णिकाकारसस्थित ।

भारता वेतुमालाश्च भद्राश्वा कुरवस्तथा ॥

पत्राणि लोकशैलारय मर्यादा शैलवाहत ।

जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥

तौ दक्षिणोत्तरायामाघानीलनिपधायतौ ।

गन्धमादनकैलासी पूर्व पश्चात् तावुभौ ॥

अशीति य रेजनायामावर्णवान्तर्ध्ववस्थितौ ।

निपध पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥

तौ दक्षिणोत्तरायामाघानीलनिपधायतौ ।

मेरो पश्चिम दिग्भागे यथा पूर्वा तथा स्थितौ ॥

मर्यादा पर्वतों का वर्णन

१६ जम्बूद्वीपवर्णनम्

१४०

भारतवर्षका वर्णन । नदी एव उपनदियोंकी नामोत्पत्तिका कथन । जम्बूद्वीप की प्रशंसा वर्णन ।

गायन्तिदेवा किलगीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूने भवन्ति भूय पुरुषा मनुष्या ॥

कर्माण्यसकटिपततत्फलानि सन्यस्यधिष्णो परमात्मरूपे ।

अवाप्यता कर्म महीमनन्ते तस्मिँल्लयं ये त्वमला प्रयान्ति ॥

जानीम नो तत्तु धय धिलीने स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम् ।

प्राप्स्यन्तिधन्या खलु ते मनुष्या ये भारतेनेन्द्रियविप्रहीना ॥

२० जम्बूद्वीपवर्णनम्, ममुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनञ्च १४३

जम्बूद्वीपका वर्णन । प्लक्षद्वीपका वर्णन तथा घहा पर

रहने घाले मनुष्यों की आयु का प्रमाण । शाल्मलद्वीप,

कुशद्वीप, कौञ्चद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप और लोका

लोक पर्यंत का वर्णन ।

२१ पातालप्रमाणवर्णनम् ।

१४२

पातालादि सप्तलोकों का वर्णन तथा अनन्त का पराक्रम

वर्णन ।

२२ नरकवर्णनम् ।

१४५

रौरवादि नरकों की नामावलि । पापों का वर्णन । पाप से

नरक प्राप्ति ।

यावन्तो जन्तव स्वर्गे तावन्तो नरकाकस ।

पापट्टु याति नरकं प्रायश्चित्तपराट्मुग ॥

पापी पुरुषो के पापों को नाश करने के लिये हरि स्मरण ही प्रायश्चित्त बताया है ।

वृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुस प्रजायते ।
 प्रायश्चित्तन्तु तस्यैक हरिसस्मरणम्परम् ॥
 प्रातर्निशि तथा सन्ध्या मध्याह्नादिषु सस्मरन् ।
 नारायणमवाप्नोति सद्य पापक्षयान्नर ॥
 विष्णुसस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चय ।
 मुक्तिं प्रयाति मो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात् ॥
 घासुदेवे मनोयस्य जपहोमाचनादिषु ।
 तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिक फलम् ॥
 ष नाकपृष्ठगमन पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
 क जपो घासुदेवेति मुक्तियोजमनुत्तमम् ॥
 तस्मादहर्निश विष्णु सस्मरन् पुरुषो द्विज ।
 न याति नरक शुद्ध सक्षीणाखिलपातक ॥
 मन प्रीतिकरो स्वर्गो नरकस्तद्विपर्यय ।
 नरकस्वर्गसदो वै पापपुण्ये द्विजोत्तमा ॥
 घस्त्येकमेव दुःखाय सुखायेष्वोदयाय च ।
 कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं पुनः ॥
 तदेव प्रीतये भूया पुनर्दुःखाय जायते ।
 तदेव कोपाय यत प्रसादाय च जायते ॥
 तस्माद्दुःखात्मकं नाम्नि न च विश्वसुखात्मकम् ।
 मनस परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षण ॥

ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं यन्धाय चेप्यते ।

ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥

२३ भूर्भुवः स्वरादिलोकवर्णनम् । १६०

वाकाश और पृथ्वी का वर्णन । सौरादि मण्डलों का तथा भूर्भुवादि सप्तलोकों का प्रमाण वर्णन । महदादि की उत्पत्तिका वर्णन ।

२४ ध्रुवमंस्थितिनिरूपणम् । १६५

शिशुमार चक्रका वर्णन ध्रुवस्थिति का वर्णन ।
वृष्ट्या धृतमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
सापि निष्पद्यते वृष्टि सवित्रा मुनिसत्तमा ॥

२५ सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् । १६७

शरीर तीर्थ का वर्णन जैसे—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थं फलमश्नुते ॥

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं घाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।

पतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽधि जलैर्घातं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥

जितेन्द्रिय पुण्य की प्रशंसा वर्णन । संक्षेप से तीर्थों का नामकरण ।

प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ।

प्रयाग च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः ॥

लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ।

शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिहदम् ।

तीर्थों के माहात्म्य पढ़ने का फलवणन ।

२६ स्वयम्भूत्रहर्षिसंवादवर्णनम् । १७६

वेद व्यासजी का मुनियों का संवाद । ब्रह्माजी के प्रति मोक्ष के विषय में मुनियों का प्रश्न वर्णन ।

२७ भारतवर्षवर्णनम् । १८०

भरत खण्ड की प्रशंसा । भरत खण्ड में होने वाले पर्वत और नदियों का वर्णन और वहाँ पर होने वाले नाना देशों का वर्णन । भरत खण्ड के माहात्म्य का पठन एवं श्रवण का फल ।

२८ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम् । १८७

ओण्ड्र (उड़ीसा) का वर्णन तथा वहाँ पर रहनेवाले ब्राह्मणों की प्रशंसा । कोणादित्य नामक सूर्य की महिमा का वर्णन । सूर्य की पूजा विधि का वर्णन । मदनभञ्जिका नामक यात्रा की प्रशंसा । रामेश्वर नामक शिव लिंग की महिमा का वर्णन ।

२९ सूर्यपूजावर्णनम् । १९४

सूर्य के ध्यान, पूजा और भक्ति के माहात्म्य का वर्णन । "माघे च सित सप्तम्यां" माघ मास में सप्तमी के दिन सूर्य

की आराधना से विशेष फलप्राप्ति का वर्णन ।

३० आदित्यमाहात्म्यवर्णनम् । २००

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति सूर्यसे ही है ऐसा वर्णन आया है। इन्द्र, धाता आदि बारह सूर्यो से शत्रुनाश एवं त्रिविध प्रजा की उत्पत्ति । आदित्याप्यान का फलकथन ।

३१ आदित्य-नाममाहात्म्यवर्णनम् । २०६

त्रिलोकी का मूल एवं परम देव सूर्य ही है ऐसा बताया है ।

अग्नीं प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याञ्जायते वृष्टिर्बृष्टेरन्नं तत प्रजा ॥

सूर्यात्प्रसूयते सर्वं तत्र च य प्रलीयते ।

भाषामार्वा हि लोकानामादित्याग्निस्सृता पुरा ॥

आदित्य के सामान्यतः द्वादशनामों का वर्णन । विष्णु आदि बारह आदित्यों का क्षेत्र आदि द्वादश महिनों में तपन कथन अर्थात् कौनसा आदित्य कितनी किरणों से तपता है इसका वर्णन आया है । सूर्यके विकर्णनादि २१ नामों का वर्णन एवं फल कथन; इसका पाठ शरीर आरोग्य, धन और यशको बढ़ानेवाला है ।

३२ मार्तण्डजन्ममाहात्म्यवर्णनम् । २१३

दैत्यों से पीड़ित देवताओं के दुःख नाश के लिये अदिति द्वारा सूर्य की आराधना एवं स्तुति । अदिति को सूर्य का दर्शन । अदिति की प्रार्थना से सूर्य ने प्रसन्न होकर

“घरं वृष्णीष्व” (घर मांगो) ऐसा कहा । तब अदिति ने “मेरे पुत्रों को यज्ञभागी बनाओ ।” मैं तुम्हारे जन्म लेकर तुम्हारे शत्रुओं का नाश करूँगा ऐसा कहते हुए सूर्य का अलक्षित होना । देवमाता अदिति के गर्भमें सूर्यकी स्थिति । कृच्छ्र एवं चान्द्रायणादि व्रतों से गर्भ धारण करती हुई अदिति को कश्यपजी ने कहा “गर्भाण्डं मारयसि कि” अर्थात् इतने क्लिष्ट व्रतादिकों से गर्भ को क्यों नष्ट करती हो । तदनन्तर पति के बचनों से क्रोधित अदिति का गर्भ त्याग । गर्भाण्ड से प्रकट हुए आदित्य की कलाप (कश्यप) के द्वारा स्तुति । यह मार्तण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा इस प्रकार आकाशवाणी हुई । आकाशवाणी का बचन सुन कर देवताओं का आगमन । मार्तण्ड की सहायता से देवताओं का दैत्यों के साथ युद्ध । युद्ध में दैत्यों की पराजय । प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्यकी स्तुति । सूर्य का संज्ञा के साथ विवाह । सूर्य की सन्तानों का घर्षण । संज्ञा और छाया का संवाद । संज्ञा का पिता के घर जाना । तदनन्तर छाया की सन्तानों का घर्षण । छाया का संज्ञा की सन्तानों के साथ विषम भाव—

पदा तर्जयसे यस्मात्पितुर्भार्या गरीयसीम् ।

तस्मात्तयैव घरणः पतिप्यति न संशयः ॥

यमस्तु तेन शप्येन भृशं पीडितमानसः ।

मनुना सह धर्मात्मा पित्रे सद्यं न्ययेदयत् ॥

च्युता और संज्ञा के सवाद में सूर्य चरित्र वर्णन । देवगुप्त
सूर्यस्तुति । सूर्य के तेज का शान्ति (शमन) ।

मार्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

२२४

अन्वकार से विमृष्ट ब्रह्मादि देवों द्वारा सूर्य का स्तुति ।

नमो नम कारणाकारणाय नमो नम पापविमोचनाय ।

नमो नमस्ने दितिजार्दनाय नमो नमो रोगविनाशनाय ॥

नमो नम सर्ववरप्रदाय नमो नम सर्वसुखप्रदाय ।

नमो नम सर्वधनप्रदाय नमो नम सर्वमतिप्रदाय ॥

देवताओं को सूर्यदेव का वरदान । रवि के १०८ नामों का

माहात्म्य (ॐ सूर्योऽर्यमा इत्यादि से मंत्रेय करुणान्वित
इत्यन्त) और उसका फल ।

रुद्रारयानवर्णनम्

२३०

रुद्र की महिमा का वर्णन । मक्षेप से दक्षकथा । सती

आदि दक्ष पुत्रियों का यज्ञोत्सव देखने के लिये पिता के घर

जाना । दक्ष और सती का सवाद । क्रोधयुक्त सती का

योगाग्नि से शरीर टाह । शकर और दक्ष का परम्पर शाप

दान । ब्रह्मा और मुनियों का सवाद ।

पार्वत्युपाख्यानवर्णनम्

२३८

पार्वती के आख्यान का आरम्भ । हिमालय से उमा की

उत्पत्ति । कश्यप और हिमालय का सवाद । तप करने

हुए हिमालय को ब्रह्मा का वरदान । हिमालय से मेना

नामक पत्नी मे तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नामकरण । तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का घरदान ।

३५ पार्वत्युपाख्यानवर्णनम् २४१

उमा का देवताओं के साथ संवाद । विकृतरूपधारी महादेव का पार्वती के पास जाना । विकृत रूप का वर्णन जैसे—
विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो बाहुक एव च ।

विभग्ननासिको भूत्वा कुञ्जः केशान्तपिङ्गलः ॥

शिव पार्वती का संवाद ।

पार्वतीजी कहती है—

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीर्गृहे ।

स प्रभुर्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥

गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमत्रयम् ।

स चेद्दाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥

विकृत रूपी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप ।
“अयं शिव.” ऐसा जान कर पार्वती का शिवजी को वरण करना ।

अशोक वृक्ष के प्रति शिवजी का घरदान । शिवजी का अन्तर्धान होना । ब्राह्म से ग्रस्त बालक का रोदन एवं पार्वती तथा ब्राह्म का संवाद । “मेरा तप नष्ट हो गया” यह जान कर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती को शंका का घरदान ।

६ पार्वतीस्वयम्वरवर्णनम्

२४६

पार्वती के स्वयम्वर में सम्पूर्ण देवताओंका आना । देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा । शिशु रूप से पार्वती की गोद में शंकर का शयन । क्रोधयुक्त इन्द्रादि देवताओं द्वारा शिवजी पर शस्त्र प्रहार । शिवजी ने सम्पूर्ण देवताओं को अपनी माया से स्तम्भित (रोका) किया । सम्पूर्ण देवताओं को छुड़ाने के लिये ब्रह्माजी द्वारा शिवस्तुति ।

प्रधान पुरुषो यन्त्र ब्रह्म भ्येय तदक्षरम् ।

अमृत परमात्मा च ईश्वर कारण महत् ॥

ब्रह्म सृक् प्रकृते स्रष्टा सर्वकृत् प्रकृते परं ।

इयञ्च प्रकृति देवी सदा ते सृष्टि कारणम् ॥

पत्नी रूप समास्थाय जगत्कारणमागता ।

स्तुति सुन कर शंकर का प्रादुर्भाव । पार्वती के द्वारा शंकर के चरणों में माला का अर्पण । ब्रह्माजी का हिमालय की प्रशंसा करना । शिवजी के विवाह के लिये ब्रह्माके द्वारा नगर का निर्माण । देव गन्धर्वादिकों का आगमन एवं घसन्तादि पट्ट (छै) ऋतुओं का आना ।

असितजलधारीध्वानवित्रस्तहंसा ।

विमलसलिलधारोत्पातनघ्रोत्पलाग्रा ॥

सुरमिहुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा ।

गिरिदुदितृविवाहे प्रावृडाधिर्भूव ॥

निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुविम्बानता ।

नीलाम्मोज्ज्विलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ॥

नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रहादिनी चेतसां ।

तत्राऽऽसीत्कलहंसनूपूररघा देव्या विवाहे शरत् ॥

अत्यर्थं शीतलाम्भोमिः प्लावयन्ती दिशः सदा ।

ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतु रतियुती ॥

विवाहे गिरिकन्याया घसन्तः समगादृतुः ।

विधिपूर्वक पार्वती और शंकर का विवाह ।

३७ शिवस्तुतिवर्णनम्

२६५

देवकृत महेश्वर की स्तुति ।

पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च ।

नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे ॥

प्रवर्तकाय प्रकृतेः पुरुषस्य च सर्वशः ।

कृताकृतस्य सत्कर्त्रे फलसंयोगदाय च ॥

शिवजी के सम्मुख देवताओं का घर के लिये आना । अपने

गणों के साथ महादेवजी का अपने स्थान पर जाना ।

३८ मदनदहनवर्णनम्

२६६

कामदेव का महेश्वर की नेत्राग्नि से दाह । रति को महेश्वर

का घरदान । पार्वती और शंकर का क्रीडन । पार्वती

का माता के घर जाना । माता मेना के द्वारा पार्वती का

उपहास । महादेव के आगे माता के उपहास का वर्णन ।

पार्वतीके क्रोध शान्तिके लिये महादेवका सुन्दर हास्यालाप ।

३६ दक्षयज्ञविध्वंसनम्

२७४

इन्द्रादिक देवताओं का दक्ष के पास जाना, देवताओं के प्रति दर्धाचि का सवाह ।

दर्धाचिरवाच—

अपूज्यपूजने चैव पूयानाञ्चाप्यपूजने ।

नर पापमवाप्नोति महद्वै नात्र नशय ॥

ऋषि दर्धाचिका दक्षके साथ सवाह । पार्वता और महेश्वर का सवाह वर्णन । धीरमठ की उत्पत्ति और शिवजी की आज्ञा से धीरमठ का दक्ष के यज्ञ में जाना एव यज्ञ का विध्वंस ।

इन्द्रादिकों का धारमठ के प्रति प्रश्न “को भवानिति” । उत्तर में धीरमठ ने कहा ‘धारमठोऽहं’ अर्थात् महादेव की आज्ञा से यज्ञ नष्ट करने के लिये आया हूँ । मृगरूप धारण कर दक्ष का आकाश में जाना । क्रोधित गणेशजी के ललाटे के स्वेद चिन्दु (पर्माने) से अग्नि का उत्पत्ति । घहा पर उत्पन्न हुए पुरुष के द्वारा यज्ञका विध्वंस । यज्ञ कर्म में देवता आपको भाग देंगे इस प्रकार ब्रह्मा का शंकर के प्रति वचन । शंकर से दक्ष को वरप्राप्ति ।

४० दक्षकृतशिवस्तुतिवर्णनम्

२८५

दक्ष द्वारा शिव सहस्र (१०००) नामों का वर्णन तथा प्रसन्न होकर शंकर का दक्ष को वरदान । सम्पूर्ण धन्तुओं

में शंकर के द्वारा ज्वर का विभाजित करना । ज्वरोत्पत्ति के पठन और श्रवण का फल । दक्ष के स्तोत्र का फल कथन ।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीतमानसः,

वष्टेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।

चिमुक्त रोगः स नरो मुदायुतो,

लभेत कामांश्च यथा मनीषितान् ॥

४१ एकाग्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम् २६६

एकाग्रकक्षेत्र का माहात्म्य वर्णन ।

४२ उत्कलक्षेत्रवर्णनम् ३०८

विरजा देवी, वैतरणी और कपिलादि अष्ट तीर्थों का वर्णन । उत्कल तीर्थ का वर्णन और वहाँ पर पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य वहाँ ही छद्मादिक देवों के स्थानों का वर्णन ।

४३ अवन्तिकावर्णनम् ३१३

ब्रह्मा के प्रति मुनियों का प्रश्न और अवन्ति नगरी का वर्णन । महाकाल नामक शिव की महिमा का वर्णन तथा क्षिप्रा नदी का वर्णन । और वहाँ पर गोविन्द स्वामी नामक चिष्णु की महिमा का वर्णन ।

४४ इन्द्रद्युम्नस्यदक्षिणोदधितटगमनम् ३२१

अघन्तीदेश के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन और सम्पूर्ण नगर वासिर्या के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर जाना ।

४५ पुरुषोत्तमक्षेत्रप्रर्णनम्

३२६

ब्रह्मा के प्रति मुनियों का प्रश्न । मुनियों के सदेह दूर करने के लिये इतिहासकथन । सुमेरु पर्वत के ऊपर बैठे हुए श्रीलक्ष्मी और विष्णु का सवाद । विष्णु के द्वारा पुरुषोत्तम नामक तीर्थघर्णन के प्रसंग में सृष्टि का वर्णन । ब्रह्मा और विष्णु का वार्तालाप । पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थित न्यग्रोध (वट) वृक्ष का वर्णन । वटवृक्ष के दक्षिण की तरफ मन्दिर में विष्णु मूर्ति का दर्शन करने से सत्र मनुष्यों का वैकुण्ठगमन । तदनन्तर यम के द्वारा विष्णु की स्तुति । मूर्ति के आच्छादन (ढकने) के लिये यम की प्रार्थना । इसके बाद यमराज का अपनी नगरी सयमती को जाना ।

४६ पुरुषोत्तमक्षेत्रप्रर्णनम्

३३८

पुरुषोत्तम क्षेत्रका वर्णन और वहाँ पर स्वित्रोत्पला नामक नदीका माहात्म्य । नदी के दोनों तरफ के गाँवों, वहाँ पर रहनेवाले एव वर्णाश्रम धर्म को धारण करने वाले पुरुषों और स्त्रियों का वर्णन । राजा इन्द्रद्युम्न ने इतना रमणीय स्थान देख कर "सम्पूर्ण मन इच्छा पूर्ति करूँगा" ऐसा सकल्प किया ।

४७ इन्द्रद्युम्नस्य प्रामादकरणार्थं राजामाह्वानम् ३४१

महीपतीनामागमनम्, इन्द्रद्युम्नस्यप्रालिमेधयज्ञकरणम् ।

राजा इन्द्रद्युम्न ने कारीगरोंको बुलाकर शुभ मुहूर्तमें मन्दिर

का निर्माणआरम्भ किया । इन्द्रद्युम्न की आज्ञासे उत्तम शिला लाने के लिये कलिङ्गादि माण्डलिक राजाओंका चिन्ध्याचल के प्रति प्रस्थान । इन्द्रद्युम्न के दूत द्वारा संसार के सम्पूर्ण राजाओं को सूचना देने पर उन क्षेत्र में आने का घर्णन । इन्द्रद्युम्न का राजाओं के साथ सम्वाद । राजा के द्वारा यज्ञ सिद्धिके लिये सब सामग्रियों का जुटाना । इन्द्रद्युम्न का आज्ञा से उसके पुरोहित द्वारा यज्ञस्थल के बनवाने का और यज्ञस्थल में सब लोगों के प्रवेश का घर्णन । यज्ञ का आरंभ यज्ञ के सम्भार को देखकर राजा को हर्षप्राप्ति । यज्ञ के घोड़े आदि सब पदार्थ लाने के लिये राजा का आदेश । ब्राह्मणों को वस्त्र आभूषण आदि अनेक दान देने का घर्णन । सबकी अन्न के द्वारा तृप्ति । यज्ञ समाप्ति और प्रासाद समाप्ति ।

४८ इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम् ३५१

प्रतिमा प्राप्ति के लिये दिन रात चिन्ता से व्याकुल राजा का सब भोगों का परित्याग ।

४९ इन्द्रद्युम्नकृत भगवत्स्तुतिः ३५३

राजा के द्वारा भगवान् की स्तुति । स्तुति पाठ का फल ।

५० प्रतिमोत्पत्तिकथनम् ३६०

चिन्ताप्रस्त राजा को स्वप्न में भगवान् का दर्शन ।

प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बताना । प्रातः काल उठ कर

नित्यकर्म करने के बाद असहाय राजा का मूर्ति को खोजने के लिये जाना। बड़े वृक्ष को काटते हुए राजा के प्रति ब्राह्मण वेपथारी विष्णु एव विश्वकर्मा का प्रश्न। प्रतिमा निर्माण करता हूँ ऐसा कहने पर भगवान प्रसन्न हुए और विश्वकर्मा को तीन प्रतिमा बनाने की आज्ञा दी। विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्तियों का निर्माण। मूर्ति दर्शन को कौतुक भरा दृष्टि से देखते हुए राजा का “आप कौन हैं” यह प्रश्न।

५१ भगवद्इन्द्रद्युम्नसगाढकथनम् ३६६

सर्वजगन्निघन्तुत्व आदि गुणों से युक्त मैं हा पुरुषोत्तम हूँ ऐसा भगवान् का वचन। राजाका निर्गुण आदि गुण विशिष्ट भगवत्पद प्राप्ति के लिये स्तुति पूर्वक याचना। भगवान का धरदान तुम्हारी इच्छानुसार सब कुछ होगा इसके बाद भगवान् अन्तर्धान हो गये और पुरुषोत्तम क्षेत्र में तीनों मूर्तियाँ का शुभ मुहूर्त में स्थापन। इस प्रकार राजा के मनोरथ की पूर्ति एव विष्णुपद की प्राप्ति। ब्रह्माजी द्वारा पुरुषोत्तम मे आये हुए पाँच तीर्थों का धर्षण।

५२ मार्कण्डेयाख्यानम् ३७४

मार्कण्डेय आख्यान का आरम्भ षटपक्षय में अनेक तरह के क्लेशों से व्याकुल चित्त मार्कण्डेय की षटवृक्ष का दर्शन।

- ५३ मार्कण्डेयाख्यानम् ३७६
महाप्रलय के मैघों से आप्लावित पृथ्वी पर एकार्णव जल में स्नान करते हुए मार्कण्डेय को भगवान् के दर्शन । मार्कण्डेय को अभयदायक भगवान् के आश्वासन पूर्ण घचन । क्रोधयुक्त मार्कण्डेय को भगवान् की उक्ति । क्रोध के शान्त होने पर मार्कण्डेय को घटवृक्ष में भगवान् के दर्शन । मार्कण्डेय को भगवान् का आश्वासन ।
- ५४ मार्कण्डेयाख्यानम् ३८१
भगवान् के उदर में मार्कण्डेय का प्रवेश । उदरस्थ मार्कण्डेय को सम्पूर्ण लोकों का दर्शन ।
- ५५ मार्कण्डेयाख्यानम् ३८३
मार्कण्डेय का भगवान् के उदरसे बाहर निकलना । मार्कण्डेय कृत बालमुकुन्दस्तुति ।
- ५६ विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसम्वादवर्णनम् ३८७
विस्तार से विष्णु एव मार्कण्डेय का सम्वाद और भगवान् का अन्तर्धान ।
- ५७ पञ्चतीर्थविधिवर्णनम् ३९५
पञ्चतीर्थों का वर्णन तथा मार्कण्डेय तालाव की प्रशंसा ।
- ” वटवृक्ष पूजाविधि कथनम् ३९७
” कृष्णदर्शनमाहात्म्यवर्णनम् ”

घटवृक्ष की पूजाविधि, विशेष रूप से पञ्चतीर्था का घर्णन
वृष्णदर्शन का माहात्म्य ।

५८ नरसिंहमाहात्म्यर्णनम् ४०१

ब्रह्मा और मुनियों के सम्वादमें नरसिंह पूजा का विधान तथा
नरसिंहमाहात्म्य का घर्णन ।

५९ श्वेतमाधवमाहात्म्य र्णनम् ४०८

कपाल गौतम ऋषि के मृतपुत्र को जिलाने के लिये श्वेत
राजा की प्रतिज्ञा । ब्रह्मा के प्रति श्वेतमाधव की स्थापना
के लिये मुनियों का प्रश्न । वैष्णव पद का प्राप्ति के लिये
श्वेतवृत्र विष्णु स्तुति । श्वेत राजा को विष्णु का वरदान ।

६० समुद्रस्नानार्णविर्णनम् ४१८

अमृतस्यारणिस्त्व हि देवयोनिरपा पते ।

वृजिन हर मे सर्वं तार्थराज नमोऽस्तुते ॥

नारायण के अष्टाक्षर मंत्र का प्रणसा पर नारायण कवच
का घर्णन ।

किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकै ।

ॐ नमोनारायणायेति य वदन्ति मनीषिण ॥ (मन्त्र सर्वार्थसाधक) ॥

आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिता ।

विष्णोस्तास्त्वयन पूर्वं तेन नारायण स्मृत ॥

नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजा ।

नारायणपरा यज्ञा नारायणपरा क्रिया ॥

नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम् ।
 नारायणपरोवहिर्नारायणपरं नभः ॥
 नारायणपरो घायुर्नारायणपरं मनः ।
 अहकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके ॥
 जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽम्बरे नगे ।
 अवष्टभ्य इदं सर्वमास्तेनारायणः प्रभुः ॥
 किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम् ।
 ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वनारायणात्मकम् ॥
 नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः ।
 तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥
 आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवात्मसांपतिः ।
 तस्मादप्सुस्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम् ॥
 स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः ।
 स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत् ॥
 आस्तीर्य च कुशान्साप्रांस्तानावाह्य स्वमन्त्रतः ।
 प्राचीनाग्रेषु चै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितृन् ॥

समुद्र स्नान की विधि का वर्णन । जलमें ही स्नान के अङ्ग
 सन्ध्या आदि नित्य कर्म एवं देवता ऋषि पितृ तर्पण करे ।

६१ पूजाविधिकथनम्

४२४

शरीरशुद्धि का वर्णन । षोडशोपचार सहित पूजन विधि
 का वर्णन ।

यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ।

६२ समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम् ४३०

समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य ।

तावद्गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक् पृथक् ।

यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं चर्ष्यते द्विजाः ॥

६३ पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम् ४३३

पांच तीर्थों के माहात्म्यका वर्णन ।

अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थं सर्वाद्यनाशन ।

स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तुते ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च ।

पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कृपास्तथा हृदाः ।

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे ।

६४ महाज्यैष्ठीप्रशंसावर्णनम् ४३५

महाज्यैष्ठी (ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त जो तिथि है) की प्रशंसा का वर्णन । प्रयागादि तीर्थों तथा गङ्गादि नदियोंमें सूर्य और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान-दान करने से जो फल होता है उतना ही महाज्यैष्ठी में राम, कृष्ण और समुद्राका दर्शन करने से मिलता है ।

६५ कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्, कृष्णावलोकने फलप्राप्ति-
कथनम् ४३८

कृष्ण के स्नान की विधि तथा स्नानका माहात्म्य । देवताओं

का कृष्ण की स्तुति करना । कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल प्राप्ति ।

कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्जुस्थं सहलायुधम् ॥

सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः ।

भूमिदानेन विधिबद्यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्जुस्थं लभते नरः ॥

यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येन कीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्जुस्थं लभते नरः ॥

यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे घाऽन्यत्र कीर्तितम् ।

तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्जुस्थं लभते नरः ॥

ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम् ।

स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽत्माभिषिच्यते ॥

घन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता ।

राक्षसाद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैश्च संहताः ॥

सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिताः ।

प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ।

६६ गुडिवा यात्रामाहात्म्यवर्णनम्

४४८

गुडिवा यात्रा का माहात्म्य ।

राजा इन्द्रद्युम्न ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन् आपकी यात्रा सात दिन तक मेरे तालाबके पास होनी चाहिए ।

तदनन्तर भगवान् ने कहा ऐसा ही होगा उस यात्रा को गुडिचायात्रा कहने हैं ।

६७ द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम् ४५१

प्रत्येक यात्रा का फल कथन । यात्रा के प्रसंग से पूजा विधि वर्णन । द्वादश (१२) यात्राओं का फल वर्णन ।

६८ विष्णुलोकवर्णनम् ४५६

विष्णुमन्दिर, विष्णुस्वरूप और विष्णुलोक के महत्त्व का वर्णन । वहां पर जाने वालों का निर्णय ।

६९ पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम् ४६७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य ।

७० ब्रह्माणं प्रति तीर्थमंख्याविषयको नारदप्रश्नः ४७१

ब्रह्माजी के प्रति तीर्थ संख्या विषयक नारदजी का प्रश्न ।

७१ चतुर्विधतीर्थलक्षणकथनम् ४७३

चतुर्विध तीर्थों का लक्षण तथा स्वप्न एवं उनका भेद वर्णन । गौतमी माहात्म्य का अरंभ ।

७२ गङ्गोत्पत्ति कथोपक्रमः, तारकशीत्या देवकृता

विष्णुस्तुतिः ४७६

गङ्गा की उत्पत्ति का वर्णन । तारकासुर के भय से देवताओंका विष्णुकी स्तुति करना । विष्णुकी आज्ञासे देवताओंका हिमालय के प्रति गमन ।

७१ बृहस्पतेराज्ञया मदनस्य शिवान्तिकंगमनम् ४७६

बृहस्पति की आज्ञा से कामदेव का शकर के पास जाना और शकरकी नेत्राग्नि से कामदेव का दाह ।

७२ हिमवद्वर्णनम्, शम्भुविवाहविधिकथनम् ४८१

हिमालय का वर्णन । शम्भु के विवाह का वर्णन । गौरी के रूपदर्शन से प्रजापति का वीर्यपात तथा उसी वीर्य से बाल बिल्वो को उत्पत्ति ।

ममानुकम्पया चैव लोकानाहितकाम्यया ।

एतच्चकार लोकेश शृणु नारद यत्नत ॥

पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति ।

तयोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम् ।

एव निश्चित्य भगवास्तयो सारं समाहरत् ॥

आपो वै मानरोदेयो भूमिर्माता तथाऽपरा ।

स्थित्युत्पत्तिचिनाशाना हेतुत्वमुभयो स्थितिम् ॥

अत्र प्रतिष्ठितो धर्मो ह्यत्र यज्ञ सनातन ।

अत्र भुक्तिश्चमुक्तिश्च स्थावरंजङ्गमन्तथा ॥

स्मरणान्मानस पाप ध्वनाद्वाचिकं तथा ।

स्नानपानाभिपेकाद्य प्रणश्यत्यपि पापिकम् ॥

७३ बलिप्रशंसावर्णनम् ४८५

राजा बलि की प्रशंसा । राजा बलि के ऐश्वर्य को सहन न कर देवताओं का विष्णु के पास जाना ।

- ७३ देवकृता विष्णुस्तुतिः ४८७
 देवतार्था का विष्णु की स्तुति करना । माता अदिति के गर्भ से धामन की उत्पत्ति । राजा बलि के यज्ञ में धामनजी का गमन । राजा बलि और शुक्राचार्य का सवाद ।
- ७४ वामनाय भूमिदानम् ४८६
 धामनजी को भूमिदान तथा बलि और धामनजी का परस्पर सवाद । भगवान् धामन का राजा बलि को धरदान ।
- ७५ गङ्गायामहेश्वरजटागमननिरूपणम् ४६१
 गङ्गाजी का महेश्वर की जटा में गमन वर्णन ।
- ७६ गङ्गायाद्वैरूप्यकथनम् ४६३
 गङ्गाजी के दो रूपों का कथन । शकरको जटा से गंगा को अलग करने के लिये पार्वती और गणेश की धार्ता ।
 रसवृत्ती स्थितो यस्मात्त्रिममे रसमुत्तमम् ।
 रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वत ॥
- ७७ गौतमाश्रमप्रशंभावर्णनम् ४६५
 गौतम की प्रशंसा, तथा आश्रम का वर्णन ।
- ७८ गौतमाश्रमंप्रति विघ्नराडगमनम् ४६७
 गौतमाश्रमे गौरूपधारिण्याजयायापतनम्
 गौतमप्रिनायस्मवादकथनम् ।
 स्वामी कार्तिकेय के साथ गणेशजीका गौतमजी के आश्रम

में जाना । गणेशजी की धाक्षा से गोरूप धारण करके जया (गणेशजी की वहिन) का गौतमजी के आश्रम में जाना, गौतम के रोकने पर जया का गिरना । गोवध के पाप को दूर करने के लिये गौतमजी को उपाय बतलाना । अपने संकल्प की सिद्धि के लिये "भवतां प्रसादोऽस्तु" इस प्रकार गौतम की प्रार्थना । सम्पूर्ण जनों का अपने २ स्थान में जाना । शंकर को प्रसन्न करने के लिये गौतमजी का कैलास पर्वत पर गमन ।

७५ गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्, गौतमस्योमामहेश्वर-
दर्शनम् । ५०३
गंगाप्रशंसा, गौतम्यानयनञ्च ।

गौतम का उमामहेश्वर की स्तुति करना । गौतमजी को उमामहेश्वर का दर्शन । तदनन्तर गङ्गा प्राप्ति के लिये गौतम की प्रार्थना । गङ्गा की प्रशंसा और गौतमी का लाना ।

श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च ।

द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे ।

७६ स्वर्गादौषधदशाकृत्यागङ्गायागमनम् ५१०

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में विभाजित होकर १५ आकृति से गङ्गा का गमन । गोदावरी तीर्थ की स्नान विधि ।

ब्राह्मणान् भोजियत्या च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च ।

ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः ॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् । . . .
विद्यातपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

७७ गौतमीमहत्त्ववर्णनम्

५१३

गौतमी का महत्त्व वर्णन कर सब नदियों में गौतमी को श्रेष्ठ बताया है ।

७८ सगराख्यानवर्णनम्

५१५

पुत्रहीन राजा सगर का वशिष्ठजी के प्रति सन्तानविषयक प्रश्न । वशिष्ठ के वरदान से सगर को पुत्रों की प्राप्ति । इन्द्र द्वारा चुराये गये घोड़े की खोज के लिये सगर पुत्रोंका इधर उधर जाना । निद्रासुप्तके अनुभवके लिये देवताओं की धाजा से कपिलजी का रसातल में गमन । सगर पुत्रों की कपिल के प्रति कठोर उक्ति (वचन) । कपिलजीके क्रोधसे सगर के पुत्रों का भस्म होना । सगर को नारद से अपने पुत्रों के नष्ट होने का वृत्तश्रवण । असमञ्जस को स्वदेश से निकालना । कपिल की धाजा से पूर्वजों के उद्धार के लिये भगीरथ का कैलास के प्रति गमन । भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर का वरदान । कपिलजी के शाप से मृत पूर्वजों को पवित्र करने के लिये गङ्गाजी के साथ भगीरथ का रसातल में जाना ।

७९ वराहतीर्थवर्णनम्

५२३

वराह तीर्थ का माहात्म्य वर्णन ।

८० कपोततीर्थवर्णनम्

५२६

लुब्धक चरित्र का घणन । कपोती के विरह से दुःखित कपोत का विलाप । कपोत के विलाप को सुन कर पति के प्रति कपोतकी का घवन । कपोती द्वारा अतिथि की प्रशंसा । लुब्धक के लिये कपोत का अग्नि प्रवेश । लुब्धक से कपोतो की मुक्ति । कपोती वृत्त पतिव्रताधर्म की प्रशंसा । कपोती का देहत्याग । कपोत और कपोती का स्वर्ग गमन ।

गच्छावस्त्रिदशस्थानमाष्टोऽसि महामुने ।

आवयो.स्वर्गसोपानमतिथिस्त्वं नमोऽस्तुते ॥

पाप दूर करने के लिये लुब्धक की प्रार्थना, तदनन्तर गौतमी स्नान से तथा पाप कथन से स्वर्गप्राप्ति वर्णन ।

८१ कुमारतीर्थवर्णनम्

५३६

स्वामी कार्तिकेय की विषयों में आसक्ति । कुमारतीर्थ का वर्णन ।

८२ कृत्तिकातीर्थवर्णनम्

५३८

नारद के घवन से कृत्तिकाओं का षण्मुख के पास जाना, कृत्तिकातीर्थवर्णन का उपसंहार ।

८३ दशाश्रमेधतीर्थवर्णनम्

५४०

भौवन का कश्यपजी के प्रति प्रश्न ? किस देश में यह की सफलता प्राप्त होगी । गुरु और गौतमी के प्रसाद से भौवन

को एक अश्वमेध से दश अश्वमेधों के फल की प्राप्ति ।
आकाशवाणी का वचन । दशाश्वमेधतीर्थ का विधान ।

८४ पेशाचतीर्थवर्णनम् ५४४

केसरी धानर का दक्षिण समुद्र के प्रति गमन । अञ्जन पर्वत
के ऊपर अगस्त्यजी का आना । अगस्त्यजी से अञ्जना
और अद्रिका को पुत्र प्राप्ति का वरदान । निर्ऋति और
चायु के सम्पर्क से अञ्जना और अद्रिका को पुत्रप्राप्ति ।
पेशाच तीर्थ का विधान एवं प्रयोजन ।

८५ क्षुधातीर्थवर्णनम् ५४६

गौतमजी के पेश्वर्य को नहीं सहन करते हुए कण्व का
सम्पत्ति उपाजन के लिए गमन । कण्वरुन गङ्गा एवं क्षुधा
की स्तुति और उसकी संनिधि में दो वरदानों को प्रार्थना ।
क्षुधातार्थ का प्रयोजनकथन ।

८६ चक्रतीर्थगणिकामङ्गमवर्णनम् ५४८

विश्वधर वैश्य का पुत्र के मरने पर शोकाकुल होता । यम-
राजका संयमिनी से गौतमी के प्रति गमन । पृथ्वी का इन्द्र
के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का संवाद । इन्द्र की
आज्ञा से सिद्धकिन्नरों का वैवस्वतपुर से यमराज को लानेके
लिए जाना । इन्द्रका सूर्य के प्रति प्रश्न ? यम वहाँ है—
तब सूर्य ने कहा कि गौतमी पर तप करने के लिए गया है ।
यमराज के तप को नाश करने के लिये तुम्हारे में से कौनसी

अप्सरा की शक्ति है ऐसा प्रश्न। चक्रतीर्थ का कारण वर्णन। तप भंग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन। प्रजाओं के नाश करने वाला अपना कार्य करो ऐसी यमराज को सूर्य की उक्ति तदनन्तर यमराज ने कहा ऐसा निन्दित कर्म मैं नहीं करूँगा। पुन दोनों का अपने २ स्थानों पर गमन।

८७ अहल्यासगमेन्द्रतीर्थावर्णनम् ५५६
 ब्रह्माजी ने गौतम से कहा कि अहल्या की यौवन प्राप्ति पयन्त रक्षा करो फिर मेरे पास ले आना। जो पुरुष पृथिवी की परिक्रमा कर सर्व प्रथम मेरे पास आयेगा उसीको यह कन्या दी जायेगी ऐसी ब्रह्माजी की प्रतिज्ञा। तत अहिल्या प्राप्ति के लिए देवताओं का पृथ्वी की परिक्रमा करना। फिर ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण देवों को छोड़ कर गौतम का अहिल्याप्राप्ति का उपायकथन। विवाह के पश्चात् ब्रह्माजी के पास देवतार्थ का आगमन। विप्र वेश से इन्द्र का अहल्या के लिये गौतम के आश्रम में जाना। तदन्तर गौतम का इन्द्र को शाप पुन इन्द्र का गौतम से शापोद्धार के लिये प्रार्थना। गौतमी स्नान से पापों का दूरीकरण ऐसा गौतम का कथन। इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन।

८८ जनस्थानतीर्थावर्णनम् ५६३
 राजा जनक ने याज्ञवल्क्यजी से पूछा कि सुख से मुक्ति कैसे होगी? याज्ञवल्क्य ने कहा कि धरुण से पूछो ऐसा

कह कर जनक और याज्ञवल्क्य घरण के पास गये तदनन्तर घरण ने कहा—

द्विधा तु संस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि ।

वेदे च निश्चिनो मार्गः कर्म ज्याप्यो ह्यकर्मणः ॥

सर्वं च कर्मणा यद्दं पुण्यार्थं वतुष्टयम् ।

अकर्मणेवाऽऽप्यत इति मुक्ति मार्गो मृशोच्यते ॥

कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम ।

तस्मान्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृमिः ।

नेन भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च प्राप्नुवन्तोह मानवाः ॥

गृहम्य से ही भुक्ति एवं मुक्ति मिलनी है ऐसा घरण का मत दर्शन । जनक और याज्ञवल्क्य ने घरण से पूछा कि भुक्ति मुक्ति प्रदायक कौन देश, कौन तीर्थ है; इस पर घरण ने कहा गौतमी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है ऐसा सुन कर दोनों अपने २ स्थान पर चले गये । जनस्थान तीर्थ का प्रयोजन ।

८६ अरुणावहृणामंगमाश्वमानुतीर्थवर्णनम् ५६६

सूर्य पत्नी उषा ने छाया से कहा कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे ठाँठने तक बालकों का पालन करो । तदनन्तर छाया का पिता के घर जाना । त्वष्टा का पुनः पति के घर जानेका आदेश । उषा का उत्तर कुरुदेश में तप करने के लिए जाना । छाया की सन्तानों का जन्म कथन । छाया ने यमराज को शाप दिया इसका वर्णन । यमराज ने पिता से कहा कि यह मुझे क्रोध दृष्टि से देखती है अतः मेरी

माता नहीं है। उत्तर पुरु में घोड़ी का रूप धारण कर उपा रहती है ऐसा जान कर घोड़े के रूप को धारण कर सूर्य का बहा जाना। आत्मरक्षा के लिये गौतमी पर बडवा का जाना उसके बाद सूर्य का जाना। ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप कथन। पुन अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति। त्वष्टा ने सूर्य से कहा कि उपा के निमित्त तेज को शमन करो।

६० गरुडतीर्थावर्णनम्

५७१

गरुड से अभयदान प्राप्ति के लिये मणिनाग नामक शेष पुत्र द्वारा शिव की स्तुति। शकर से घरदान प्राप्त करके मणिनाग का इधर उधर भ्रमण। नन्दिकेश्वर ने शकर के प्रति कहा—मालूम होता है कि गरुड ने नागको भक्षण कर लिया है अथवा बाध लिया है इस लिये नहीं आया है। शकर की आज्ञा से नाग को लाने के लिये नन्दीश्वर विष्णु के पास गया। विष्णु ने गरुड से कहा कि नन्दी को सर्प दो तब गरुड ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया कि मेरे बल से ही दैत्याको पराजित करते हो तदनन्तर भगवान् ने गरुड का गर्व दूर किया। गरुड के द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु की आज्ञा से नाग सहित गरुड का शकर के पास गमन। शिव की आज्ञा से गरुड गौतमी पर स्नान करने को गया और उसका शरीर घड़ की तरह हो गया अपि च विष्णु की प्राप्ति हुई।

६१ गोवर्धनतीर्थवर्णनम् ५७६

नन्दी के द्वारा गायों का हरण । गायोंको लानेके लिये
देवताओंका शकर के पास जाना । देवताओं को गायों की
प्राप्ति । गोवर्धन तीर्थ का कथन ।

६२ पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम् ५७७

ध्रुवत का पत्ता महाका गालपाश्रम में जाना । पापप्रणा
शनतीर्थ का माहात्म्य ।

६३ त्रिशामित्रतीर्थवर्णनम् ५८३

त्रिशामित्र तीर्थ के स्वरूप का वर्णन । भूख से पीड़ित
त्रिशामित्र से प्रेरित शिष्योंका भिक्षा लाने के लिये जाना ।
शिष्यों द्वारा लाये गये मृत कुत्तेका पाक करण । इन्द्र और
त्रिशामित्रका सवाद । इन्द्रकी आज्ञासे मैत्रोंका अमृत
की वर्षा करना ।

६४ श्वेततीर्थवर्णनम् ५८६

शिवभक्त श्वेतविप्रको पूर्णायु होने पर यमदूत लानेको गये ।
यमदूतों के देरी करने पर विप्र ने मृत्यु से कहा कि
श्वेत विप्र कैसे नहीं आता है और दूत भी अभी तक नहीं
आये हैं । क्या कारण है ? मृत्यु और यमदूतों का सवाद ।
मृत्यु के वध को सुनकर क्रोधित यमराज का श्वेतके पास
जाना । शिवदूतों के साथ यमराज का युद्ध । कार्तिकेय
द्वारा यमराज का वध । विष्णु आदि देवताओं का यम-

राज के पास गमन । देवताओं द्वारा शिव स्तुति । देवताओं ने शंकर से प्रार्थना की कि यमराज को जीवदान दो फिर शंकर ने कहा मेरे भक्त की मृत्यु न हो इस घचन के पालन से यम को पुनः जीवदान ।

६५ शुक्रतीर्थवर्णनम्

५६२

भार्गव और अङ्गिरा का संवाद । गुरु की पुत्र और शिष्य में विषमता देख कर शुक्र का गौतम के पास जाना और उनकी आज्ञासे गंगा पर जाकर शुक्र ने शिवकी स्तुति की । शुक्राचार्यको शिव द्वारा मृतसंजीवनी विद्या की प्राप्ति ।

६६ पुण्यासिक्तासंगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम् ५६६

ब्रह्माहत्या से डरे हुए इन्द्र का कमलनाल में घास । ब्रह्मा की आज्ञा से देवताओंका गौतमी के प्रति जाना तदनन्तर गौतम के भय से नर्मदा के प्रति गमन । देवताओं द्वारा माण्डव्य ऋषि की प्रशंसा । मालवदेश का विधान तथा पुण्यासिक्तादि सातहजार तीर्थों का वर्णन ।

६७ पौलस्त्यतीर्थवर्णनम्

५६६

माता के वचन से रावण, कुम्भकरण और विभीषण का तप करने के लिये धन में जाना । रावण द्वारा कुबेर की पराजय । रावण को पुष्पकादि की प्राप्ति । भाई द्वारा निकाले गये वैश्रवण का पुलस्त्य के पास जाना । पुलस्त्य जी की आज्ञा से स्त्री सहित गौतमी पर गमन वहां कुबेर

द्वारा शंकर की स्तुति । पश्चात् आकाशघाणी हुई । शंकर का अपने स्थान पर गमन । पौलस्त्य तीर्थ का माहात्म्य ।

६८ अग्नितीर्थवर्णनम् ६०४

मधुदेत्य से जानवेदा और दक्ष का घघ । भाई के मरने पर अग्नि का गङ्गा में प्रवेश । अग्नि के पास देवताओं का जाना । देवताओं ने कहा—

देवाञ्जीवय हृद्येन कव्येन च पितृंस्तथा ।

मानुषानन्नपात्रेन योजाना कलेदनेन च ।

अग्नि तीर्थ का माहात्म्य वर्णन ।

६९ ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम् ६०६

कर्शवान् ने पुत्रों से कहा कि ऋणमय (तीनों ऋण) से मुक्त होने के लिये विवाह करो—पुत्रों को विवाह के लिये उदासीन देख कर स्नान के लिये गौतमी पर जाने की आज्ञा ऋण मोचन तीर्थ का माहात्म्य ।

७० कद्रूमुपर्णातीर्थवर्णनम् ६०८

यालखिल्यों ने कश्यपजी से कहा—हमारे दिये हुए आधे तपसे इन्द्र के दर्प (घमण्ड) को दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न करो । पुनः प्रजापति कश्यप ने अर्धतप को ग्रहण कर मुपर्णा एवं कद्रू में गर्भ की स्थापना कर कहीं भी न जाने की आज्ञा दी । कद्रू और मुपर्णाका ऋषियज्ञमें जाना । घटा पर शीशों की नदी होने का शाप । यालखिल्यों ने कश्यपजी से

गौतमी पर जाकर शंकर की स्तुति करने से फिर स्त्री होंगी। कश्यपजी को स्तुति करने पर स्त्रियों की प्राप्ति। कद्रू को ऋषि का शाप।

१०१ सरस्वतीसंगमपुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरतीर्थ-
वर्णनम् । ६१२

ब्रह्मा की सभा में पुरूरवा का जाना। उर्वशी और पुरूरवा का संभाषण। पुरूरवा के पास सरस्वती का गमन। ब्रह्मा के शाप से भयभीत सरस्वतीका गौतमी पर गमन। सरस्वती के शाप को दूर करने के लिए ब्रह्मा के प्रति गङ्गा का कथन। स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन।

१०२ पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ६१४

हरिण रूपधारी ब्रह्मा को व्याधरूपधारी शिव का वचन। सावित्री आदि पञ्चनदियोंका ब्रह्माके पास जाना। पञ्चतीर्थों का माहात्म्य।

१०३ शम्यादितीर्थवर्णनम् ६१६

प्रियव्रत के यज्ञ में हिरण्यक दानव के जाने पर इन्द्रादि देवताओं का भिन्न २ स्थानों पर पलायन (भागना)। दैत्य को रोकने के लिए वशिष्ठजी ने पुनः यज्ञारम्भ किया शम्यादि तीर्थों का वर्णन।

१०४ विश्वामित्रादि द्वाविंशतिमहस्रतीर्थवर्णनम् ६१७

हरिश्चन्द्र के घर नारद और पर्वत ऋषि का गमन। हरिश्चन्द्र

ने उनसे प्रश्न किया कि पुत्र से क्या होगा । पुत्रवान् पुरुष
की प्रशंसा ।

नापुत्रस्य परो लोको विद्यते नृपसत्तम ।

जाते पुत्रे पिता स्नान य करोति जनाधिप ॥

दशानामश्वमेधानामभिषेकफल लभेत् ।

आत्मप्रतिष्ठापुत्रात्स्यजायते चामरोत्तम ॥

अमृतेनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादय ।

त्रिराष्ट्रान्मोचयेत्पुत्र पितरञ्च पितामहान् ॥

पुत्रएव परो लोको धर्म कामोऽर्थ एव च ।

पुत्रो मुक्ति परञ्ज्योतिस्तारक सर्वदेहिनाम् ।

ऋषियों के प्रति पुत्रोत्पादन विषयक हरिश्चन्द्र का प्रश्न ।
पुत्र प्राप्ति के लिए घरुणाराधन कथन । घरुण की प्रसन्नता
से हरिश्चन्द्र को पुत्र प्राप्ति । घरुण और हरिश्चन्द्र की
परस्पर उक्ति प्रत्युक्ति । विष्णुयजन के लिए रोहित की
प्रार्थना । अजीगर्त और रोहित का प्रश्नोत्तर । रोहित का
घन में जाना । घरुण के कोप से हरिश्चन्द्र को जलोदर की
प्राप्ति । अजीगर्त की रोहित के साथ पुत्र खरीदने के
विषय में वातचीत । अजीगर्त के द्वारा पुत्र का विषय ।
रोहित ने अजीगर्त के पुत्र शुन शेष को हरिश्चन्द्र के लिए
दिया । शुन शेष के यज्ञ में आकाशवाणी से यज्ञ की समाप्ति
और विश्वामित्र को शुन शेष पर ऋषा परच पुत्रत्व स्वीकार
कर सब पुत्रों में शुन शेष को ज्येष्ठ बना दिया ।

१०५ सोमतीर्थवर्णनम् ६२८

सोमतीर्थ का वर्णन ।

१०६ देवदानवानां मेरुपर्वतं प्राप्य मन्त्रकरणम् ६३१

देव दानवों ने सुमेरु पर्वत पर मन्त्रणा की पश्चात् समुद्र मथन । सागर से अमृतप्राप्ति । अमृत चांटने के विषय में बृहस्पति से बातचीत । अमृत पीने के लिये विष्णु आदि देवताओं का सुमेरु पर गमन उनके साथ राहु का भी वहाँ जाना । विष्णु ने राहु का शिर काट दिया । पश्चात् राहु का अभिषेक ।

१०७ वृद्धासंगमतीर्थवर्णनम् । वृद्धगौतमाख्यानम् ६३८

एकान्त में ब्रह्मचर्य में अवस्थित वृद्धा के साथ वृद्ध गौतम का संवाद । गौतम का सूर्य से विद्या प्राप्त कर वृद्धा को पत्नीत्व रूप से स्वीकार । अगस्त्य और गौतम का सम्वाद । वृद्धा को गङ्गा के अभिषेक से यौवन प्राप्ति । गङ्गाजी के द्वारा घर प्राप्त करने से वृद्धा के साथ सुख प्राप्ति ।

१०८ इलातीर्थवर्णनम्-इलोपाख्यानम् ६४६

इलका हिमालय में निवास । यक्षोंका इल के समीप आना । यक्षों के साथ इलका युद्ध । इलका उमावत में जाना और वहाँ उसको स्त्री रूप की प्राप्ति । यक्षिणी का इल के साथ सम्वाद । इल के स्त्री रूप होने पर बुध

के आश्रम में जाना । इला का बुध के साथ सम्वाद और दोनों का विवाह । बुधसे इलामें पुत्रोत्पत्ति व देवताओं का वहाँ आना । बालक का पुरुरवा नामकरण । इला के साथ उसका सम्वाद । पुरुरवा को इक्ष्वाकु कुल का वर्णन और अपना पहले का वृत्तान्त कथन । बुध और ऐल का सम्वाद । इला की पुंस्त्व प्राप्ति के लिये पुरुरवाका प्रयत्न । ऐल और इला का हिमालय पर जाना वहाँ पर शकर को स्तुति । देवी से पुंस्त्व की याचना । शंकर और पार्वती के अनुग्रह से पुंस्त्व प्राप्ति । ऐल का अभिषेक ।

६ चक्रतीर्थवर्णनम्

६६०

पार्वती का दक्ष यज्ञ में जाना । वहाँ पर शिव निन्दा सुनकर—
पिनरं नाशये पापं क्षमेय न कथंचन ।

शृण्वती दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥

पत्युः शृण्वन्ति या निन्दा तासां पापावधिः कुतः ।

यादृशस्तादृशोवाऽपि पतिः स्त्रीणां परागतिः ॥

पार्वती का देह त्याग । महेश्वर का दक्ष यज्ञ में आना । यज्ञ का वर्णन । वीरभद्र द्वारा यज्ञ विध्वंस । देवताओं द्वारा शिव स्तुति । दक्षरत्न शिव स्तुति । देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति । दैत्यों से उत्पन्न भय को जान कर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श । विष्णु के द्वारा चक्र प्राप्ति के लिये शिव की आराधना । विष्णु को शंकर का घरदान और चक्र का होना ।

११० पिप्पलतीर्थवर्णनम्-दधीचिरुपाख्यानम् ६६७

पिप्पल तीर्थ का घर्णन । दधीचि ऋषि एवं लोपामुद्रा का घर्णन । दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओंका भागमन । अस्त्रों को रखने के लिये देवताओं का दधीचि से प्रश्न ? लोपामुद्रा का दधीचि के साथ घातालाप । देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों का रखना ।

एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम ।

तार्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम् ॥

दैत्यों के डरसे दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पान । दैत्यों से देवताओं को भय प्राप्ति । देवताओं का दधीचि पास अस्त्रों के लिये जाना । देवताओं के लिये दधीचि का अस्थि दान । देवताओं का अस्त्र घनाना । दधीचि प्राणी पक्षी का भागमन और उसका अग्नि के साथ सम्पादन तदनन्तर अग्निदत्त समाधान, प्रातिघेयी के द्वारा बुद्धि पुत्र का निकालना । प्रातिघेयी का अग्निप्रवेश, आश्रम गिरान वृक्षों का विट्पाप । दधीचि के पुत्र को अमृत प्राप्ति तथा पिप्पलाद् नाम की प्राप्ति ।

प्राप्ति और सोम की आज्ञा से शकर की स्तुति की। प्रसन्न हुए शकर से देवताओं को नाश करने के लिये घर मागना। पिप्पलाद के तप का घर्षण और शकर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न वृत्त्या की देवताओं के संहार के लिये आदेश। वृत्त्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डरसे देवताओं का शकर के पास जाना। देवताओं द्वारा शकर की स्तुति। शकर एवं देवताओं का संवाद। देवताओं का पिप्पलाद के साथ संवाद। पिप्पलाद ने देवताओं से कहा कि मेरे माता पिता को दिखाओ। पिप्पलाद का स्वर्गलोक में जाना वहाँ पर माता पिता का दर्शन। विवाह करने के लिये दधीचि और पिप्पलाद का सम्वाद। देवताओं के संहार के लिये उत्पन्न वृत्त्या का समाधान। वृत्त्या को नदी रूप की प्राप्ति। शकर के साथ देवताओं का सम्वाद। दधीचि की अस्थियों का एत देवताओं का तथा गायोंका पवित्र होना। देवताओं का अपने २ स्थानों पर जाना एत सर्पका वहीं रहना। पिप्पलाद का गौतम की पुत्री के साथ विवाह। पिप्पलाद तीर्थ पर पिप्पलेध्वर नामकी प्राप्ति।

११ नागतीर्थघर्षणम्

६६८

सोमप्रशमनशरसेनारयानम्, भोगमत्याःप्रियाहर्षणम्
भोगमत्या मह सर्पसंवादः ।

नागतीर्थ का घर्णन । सोमवंशीत्पन्न शूरसेन के चरित्र का घर्णन । शूरसेन से सर्प की उत्पत्ति । सर्प एवं शूरसेन का वैवाहिक विषय में सम्वाद ।

क्षत्रियाणां विवाहाश्च भवेयुर्यद्दुधा नृप ।
तस्माच्छस्त्रैरलंकारैर्विवाह स्यान्महामते ॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या घाच वदन्ति हि ।
तस्माच्छस्त्रैरलंकारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥

विजय की पुत्री भोगवती का शस्त्र के साथ विवाह । भोगवती के साथ सर्प का सम्वाद । सर्प के शाप का घर्णन और दिव्य रूप की प्राप्ति । नागतीर्थ की प्रसिद्धि ।

११२ मातृतीर्थवर्णनम् ७०७

मातृतीर्थ का घर्णन, देवदानवों का युद्ध । ब्रह्मा के द्वारा शंकर की स्तुति । राक्षसों का रसातल में जाना ।

११३ ब्रह्मतीर्थवर्णनम् ७११

ब्रह्मतीर्थ का घर्णन । ब्रह्मा के पाँचवें मुखका संहार कर शंकर ने उसको धारण किया ।

११४ अविघ्नतीर्थवर्णनम् ७१३

अविघ्न तीर्थ का घर्णन । देवताओं का यज्ञारंभ और गणेश की स्तुति । देवों का विनायक के साथ संवाद ।

५ शेषतीर्थवर्णनम् ७१७

शेषतीर्थ का वर्णन । शेष का ब्रह्मा के साथ संवाद । शेष ने शंकर की स्तुति की और उसको त्रिशूल की प्राप्ति हुई ।

६ वटवादिमहम्नतीर्थवर्णनम् ७२०

षड्वादि सहस्र तीर्थों का वर्णन । राक्षसों के द्वारा ऋषियों के यज्ञ में उत्पात । ऋषियों ने तथा मृत्यु ने शंकर की स्तुति की । देवदानवों का आपस में वैर ।

७ आन्मतीर्थवर्णनम् ७२३

दत्तात्रेय का अत्रि के साथ सम्वाद । दत्त द्वारा शिव स्तुति । शंकर द्वारा दत्त को आन्मज्ञानरूप धरदान ।

८ अश्वत्थादितीर्थवर्णनम् ७२७

अश्वत्थादि तीर्थों का वर्णन । अश्वत्थजी का दक्षिण दिशा में गमन । अश्वत्थ और विष्णु नामक राक्षसों का वर्णन । शनिश्चर के द्वारा राक्षस की मृत्यु ।

९ सोमतीर्थवर्णनम् ७३०

सोमतीर्थ का वर्णन । आप्तियों का ब्रह्मा के साथ संवाद । गङ्गादेव सोम और आप्तियों का विवाद ।

१० धान्यतीर्थवर्णनम् ७३३

धान्य तीर्थ का वर्णन । गङ्गा घट पर दान का माहात्म्य ।

१२१ विदर्भासंगमरेवतीमंगमादितीर्थवर्णनम् ७३५

विदर्भा और रेवती का गङ्गा के साथ संगम । रेवती के साथ फट का विवाह ।

१२२ पूर्णादितीर्थवर्णनम् ७३६

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन । ब्रह्मा के साथ राजा धन्वन्तरि का सवाद । धन्वन्तरि का तप भग । धन्वन्तरि वृत्र विष्णु स्तुति और उसको देवराज्य की प्राप्ति । ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र का सवाद । इन्द्र द्वारा हरिहर की स्तुति । हरिहर के साथ इन्द्र का सवाद । बृहस्पति के द्वारा इन्द्र का अभिषेक ।

१२३ रामतीर्थवर्णनम् । दशरथचरित्रवर्णनम् ७५०

रामकृतशिवस्तोत्रम् ।

रामतीर्थ का वर्णन । राजा दशरथ का वर्णन । देवदानवों का युद्ध । देवदानवों का दशरथ के पास आना । दशरथ द्वारा देवताओं की सहायता । युद्ध में कैकेयी का वर्णन । दशरथ के द्वारा मुनिपुत्र की मृत्यु । पुत्र की मृत्यु । माता पिता का विलाप और उसी शोकमें मृत्यु । रामादिकों का जन्म कथन । विश्वामित्र को पुत्र समर्पण । अहल्य का उद्धार और राक्षस का वध । सीता का विवाह । दशरथ की मृत्यु और नरकों की प्राप्ति तथा नरकों से मुक्ति । दशरथ का यमकिंकरों के साथ संवाद । राम लक्ष्मण और

दशरथ का सवाद और दशरथ का दुःख वर्णन करना ।
शोक निवृत्ति के लिये सीता का वचन । देवताओं के साथ
राम का सवाद । राम के द्वारा शंकर की स्तुति ।

१२४ पुत्रतीर्थार्णनम् । मरुतांजन्मकथनम् ७७४

पुत्र तीर्थ का वर्णन । कश्यप के माय दिति का सवाद ।
दिति और दनु का सवाद । मय के साथ इन्द्र का सवाद
और मरुतों का जन्म ।

अथ प्रभृति ये कुर्युरनयाद्वातृवातनम् ।

वशाच्छेदो विपत्तिश्च नित्यं तेषां भविष्यति ।

१२५ यमतीर्थार्णनम् ७६१

कपोत और उलूक का युद्ध । हेति नाम की कपोतकी का
अग्नि की स्तुति करना और उलूक के द्वारा यम की स्तुति ।
उलूकी के साथ यम का सवाद । यमतीर्थ का वर्णन ।

१२६ तपस्तीर्थार्णनम् ७६८

अग्नि का वर्णन । देव, ब्रह्मा और मुनियों का संवाद ।
तपस्तीर्थ का वर्णन ।

१२७ देवतीर्थार्णनम् ८०३

आर्षिणेज राजा का आश्रयान एव हयमेध का
वर्णन । मिथुनामक दैत्य द्वारा पुरोहित सहित दीक्षित
राजा को रसातलमें ले जाना । पुरोहित पुत्र देवापि ने अपनी
माता से पूछा कि पिता कहाँ है ? उत्तर में माता ने

पुत्रको पिता का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया । देवापि की प्रतिज्ञा । नन्दि द्वारा मिथु की मृत्यु । रसातल से देवापि के पिता का आगमन । हयमेध की समाप्ति । अनेक तीर्थों का घर्षण ।

१२८ तपोवनादितीर्थवर्णनम्

८१०

संक्षेप से कार्तिकेय का आख्यान । सन्तान के विषय में अग्नि और स्वाहा का सवाद । तारकामुर के भय से दुःखित देवों द्वारा अग्नि की प्रार्थना । शुक रूप से अग्नि का शिव के पास जाना । शिव पार्वती सवाद । अग्नि पत्नी स्वाहा के गर्भ से मिथुन (जोड़ा) की उत्पत्ति और उनका नामकरण (सुवर्ण सुवर्णा) एवं विवाह । सुवर्णा और सुवर्ण को सुरासुर का शाप । शाप विमोचन के लिये ब्रह्मा के वचन से अग्नि का गौतमी के पास जाना वहाँ पर अग्नि द्वारा शिव की स्तुति । शाप मुक्ति के लिये शंकर का घरदान । गौतमी तट पर शिवलिङ्ग की स्थापना । तपोवनादि तीर्थों का घर्षण ।

१२९ इन्द्रतीर्थवर्णनम्

८२०

गगा और फेना का संगम । इन्द्र द्वारा नमुचि दैत्य का वध । हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि से इन्द्र की पराजय । इन्द्र की पाताल में स्थिति । वरुण को पराजित करने के लिये महाशनि का प्रस्थान । घारुणी और महाशनि का

के वचन से इन्द्र ने विष्णु की आराधना को पुनः प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने महाशनि दैत्य को मार दिया ।

१३० आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्, आपस्तम्बोपाख्यानम् ८३५

आपस्तम्बकृत शिवस्तुतिः ।

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उन के आश्रम में अगस्त्य मुनि का गमन । आपस्तम्ब ने अगस्त्यकी पूजा की और पूछा कि तीनों देवों में कौन श्रेष्ठ है ? अगस्त्य ने कहा कि तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सर्वसिद्धियों को देने वाला है । अगस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहां पर शंकर की स्तुति तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का घरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा ।

१३१ यमतीर्थवर्णनम्, सरमाख्यानवर्णनम् ८४०

यमतीर्थ के प्रसंग में सरमा के आख्यान का कथन । देव-गायों की रक्षा करने वाली सरमा को द्रव्य देकर दैत्यों ने गो हरण किया । सरमा ने इन्द्र से कहा कि मेरे को बांध कर दैत्य गायों को ले गये । पश्चात् बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि सरमा झूठ बोलती है तब इन्द्र ने सरमा को लात मारी और शाप दिया । गायों को लाने के लिये इन्द्र ने विष्णु की स्तुति की । विष्णु और दैत्यों का युद्ध तथा दैत्यों की पराजय । देवताओं को गायों की प्राप्ति । अपनी

माता को शाप से छुड़ाने के लिये सरमा के पुत्र का यम से प्रश्न ? सूर्य और यम का सवाद । सूर्य के वचन से यम का गौतमी पर आना । गौतमी तीरस्थ अनेक तीर्थों का वर्णन और वहाँ पर स्नान करने वालों को अनेक फल की प्राप्ति ।

१३२ यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथनम् ८४७

यज्ञ करने वाले ऋषियों का विश्वावसु की यहिन विष्पला को शाप । विश्वावसु की प्रार्थना से शाप का निवारण । दुर्गा तीर्थ का वर्णन और यक्षिणी संगम तीर्थका माहात्म्य ।

१३३ शुक्लतीर्थवर्णनम् ८४८

शुक्लतीर्थ में भरद्वाज का यज्ञ वर्णन । यज्ञ में पुरोडाश को भक्षण करते हुए हव्यघ्न नामक राक्षस को मुनि का वचन । भरद्वाज और हव्यघ्न का सवाद । सम्पूर्ण अमृतों (जलों) में गौतमी जल की विशेषता । गौतमी जल से हव्यघ्न का अभिपेक और कृष्ण रूप से शुक्लत्व प्राप्ति एव यज्ञ की समाप्ति । शुक्लादि तीर्थों का वर्णन ।

१३४ चक्रतीर्थवर्णनम् ८५१

चक्रतीर्थ में षशिष्ठादि सप्त ऋषियों का यज्ञारंभ । राक्षसों के विघ्न करने पर ब्रह्मा के पास जाना । ब्रह्मा की आज्ञा से माया द्वारा विघ्नका निवारण फिर यज्ञारंभ । जब शम्बर दैत्य ने माया को भक्षणकर लिया तब ऋषियों द्वारा

विष्णु की प्रार्थना। पश्चात् विष्णु ने उनकी रक्षार्थ
चक्र दिया और उस चक्र से राक्षसों का पथ ग्य यज्ञ की
समाप्ति। गङ्गाजल में चक्र का प्रक्षालन। यज्ञनीर्थादि
पांच सौ तीर्थों का वर्णन।

१३५ वाणीसंगमतीर्थवर्णनम् ८५३

ब्रह्मा और विष्णु का अपने २ महस्व पर संवाद। ब्रह्मा और
विष्णु को आकाशवाणी की उक्ति। तत्पश्चात् ज्योतिर्मूर्ति
सत्तक शिवलिङ्ग के अन्त को पोजने के लिये ब्रह्मा विष्णु का
प्रस्थान। अन्त को न देखने हुए विष्णु और ब्रह्मा का
शिव के पास क्रम से सत्य और असत्य कहना। ब्रह्माजी
के मुख से निकली हुई वाणी की हरिहर का शाप। पुन
शाप का निवारण। गौतमी और वाणी संगम का अनेक
तरह से वर्णन। दोनों के तटों पर स्थित एक सौ उन्नीस
तीर्थों का माहात्म्य।

१३६ विष्णुतीर्थवर्णनम् ८५६

मौद्गल्य चरित्र का वर्णन। मौद्गल्य द्वारा सदाचार
का वर्णन। विष्णु और मौद्गल्य का संवाद। मौद्गल्य
द्वारा दान की प्रशंसा। विष्णु तीर्थ की प्रशंसा।

१३७ लक्ष्मीतीर्थवर्णनम् ८६१

अपनी २ ज्येष्ठता के विषय में लक्ष्मी और दरिद्राका संवाद।
ब्रह्मा के पास दोनों का गमन ब्रह्मा के कहने से गौतमी पर

जाना । गौतमा द्वारा लक्ष्मी की प्रशंसा । लक्ष्मी तीर्थादि
छः हजार तीर्थों का वर्णन ।

८ मन्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम् । मानुतीर्थवर्णनम् ८६६
मानुतीर्थ के प्रसङ्ग में शर्याति राजाका चरित्र वर्णन । शर्याति
का दिग्विजय के लिये प्रस्थान । मार्ग में उसके पुरोहित
मधुच्छन्द का राजा के साथ सम्वाद । मधुच्छन्द द्वारा सूर्य
की श्राधना । मानुकार्थ के निकटवर्ती तीन हजार तीर्थों
वर्णन ।

३६ सङ्गतीर्थवर्णनम् ८७१
सङ्गतीर्थ के प्रसङ्ग से कवच के पुत्र पैल्य नामक मुनि का
चरित्र निरूपण । सङ्गतीर्थ के निकटवर्ती छः हजार तीर्थों
का वर्णन ।

४० आत्रेयतीर्थवर्णनम् ८७३
आत्रेय ऋषि का आश्रयान । ब्रह्मर्षी के घर प्रसाद से आत्रेय
को इन्द्रपद की प्राप्ति । दिति के पुत्रों द्वारा सताये जाने पर
इन्द्रपद का त्याग ।

४१ कपिलामंगमाख्यतीर्थवर्णनम् ८८०
कपिल नामक मुनि का चरित्र उसीके प्रसंग में कृष्ण राजाका
संक्षेप से चरित्र वर्णन ।

ततो गोरूपमास्थाय भूम्यासीत्कपिलान्तिके ।

दुदोह च मर्होपध्या राजा घेनफरोद्धपः ॥

यत्र देवा सगन्धर्वा ऋषय कपिलोमुनि ।
महीं गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥
सरस्वत्या भागीरथ्या गोदपर्या विशेषत ।
महानदीषु सर्वासु दुदुहेऽसौ पयो महत् ॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभघ्नदी ।
गौतम्या सगता चाभूत्तदद्भुतमिवाभयत् ॥

कपिला सगम के निकटवर्ती अट्टासी हजार तीर्थोंका घर्णन ।

१४२ देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम् ८८३

सिंहिका के पुत्र राहु के लडके मेघहास नामक दैत्य का
चरित्र उसके द्वारा तप किया जाना । देवस्थानोंके निकटवर्ती
अठारह तीर्थों का घर्णन ।

१४३ सिद्धतीर्थवर्णनम् ८८५

रावण को ब्रह्माजी से शिवजी के एक सौ आठ नामों की
प्राप्ति । रावण के तपका घर्णन । रावण के द्वारा कैलास
को हिलाना । रावण को शिवजी से तलवार की प्राप्ति ।
सिद्धतीर्थ के निकट एक सौ आठ तीर्थों का घर्णन ।

१४४ परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम् ८८८

अत्रि ऋषिका उपाख्यान अत्रि को चार पुत्ररत्नों की प्राप्ति ।
आत्रेयी नामक अत्रि ऋषिकी कन्याका चरित्र । आत्रेयी और
ज्वलनका आख्यान । परुष्णी सगम के निकटवर्ती तीन
हजार तीर्थों का घर्णन ।

- १४५ मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम् ८६२
मार्कण्डेय ऋषि मुनियोंका ब्रह्माजीके साथ सम्वाद । मार्कण्डेय तीर्थ की महिमा का निरूपण उसके निकटस्थ अट्टानवें तीर्थोंका वर्णन ।
- १४६ कालञ्जरतीर्थवर्णनम् ८६४
ययाति का आरधान । कालञ्जर के निकटवर्ती एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन ।
- १४७ अप्सरोयुगसंगमतीर्थवर्णनम् ८६६
दो अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र ऋषि के तपोभंग का वर्णन । विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं को नदीत्व की प्राप्ति ।
- १४८ कोटितीर्थवर्णनम् ९०२
प्रसंगानुसार कण्व के पुत्र चार्हीकका आख्यान । कण्वतीर्थ के निकट पचास तीर्थों का वर्णन ।
- १४९ नारसिंहतीर्थवर्णनम् ९०५
द्विरण्यकशिपु की प्रशंसा । नरसिंह द्वारा द्विरण्यकशिपु का वध । नरसिंह का गौतमी के प्रति आगमन व अमर्य संज्ञक दैत्यका हनन । नारसिंह तीर्थ में स्नान दान आदि करने वालों को नाना फलों की प्राप्ति का कथन । नारसिंहादि आठ तीर्थों का वर्णन ।
- १५० पेशाचतीर्थवर्णनम् ९०७
पेशाचतीर्थ का वर्णन । अजीगर्त का आरधान । अजीगर्त

द्वारा शुन शेष नामक स्वपुत्र का वचन। पुत्र को वचने के पाप से अजीगर्त को नरक प्राप्ति। रोते हुए पिशाच के प्रति शुन-शेषका प्रश्न ? पिशाच की योनि में पड़े हुए अपने पिता के वचन सुन कर दुःखितअन्त करण शुन शेष द्वारा पिशाच के ऊपर गौतमी जल का छिडकना। गौतमी जल के स्पर्श होते ही अजीगर्त को विष्णुपद की प्राप्ति। पैशाच तीर्थ की प्रशसा। पैशाच आदि तीनसौ तीर्थों का वर्णन।

१५१ निम्नभेदतीर्थवर्णनम् ६१०

उर्वशी गमन से दुःखिन पुरूरवा के प्रति वसिष्ठ का उपदेश। निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

१५२ आनन्दतीर्थवर्णनम् ६१३

चन्द्र द्वारा तारा का हरण। शुक के पास गुरु का जाना। शुक के लिये स्त्री हरण कथन। तारा को लाने के लिए शुक की प्रतिज्ञा। चन्द्र को शुक का शाप। तारा की शुद्धि के लिये देवताओं के प्रति शुक का प्रश्न ? गङ्गा को गुरु का वचन। आनन्द तीर्थका वर्णन।

१५३ भावतीर्थवर्णनम् ६१८

भावतीर्थ आदि सात तीर्थों का वर्णन।

१५४ सहस्रकुण्डलतीर्थवर्णनम् ६२०

रावणादि को मार कर अयोध्या के प्रति सपरिवार रामका गमन। लोक के अपवाद से यात्रीके के आश्रम के

पास राम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा सीता का त्याग।
राम के अश्वमेध में लवकुश का जाना। सहस्रकुण्डादि
दश तीर्थों का वर्णन।

१५५ कपिलातीर्थवर्णनम् ६२३

अङ्गिरा को दक्षिणा में आदित्य द्वारा भूमिदान। कपिला
संगमादि १०० तीर्थों का वर्णन।

१५६ शङ्खहृदतीर्थवर्णनम् ६२५

ब्रह्मा को भक्षण करने के लिये आते हुए राक्षसों का विष्णु
चक्र द्वारा घथ। शङ्ख तीर्थादि अयुत तीर्थों का वर्णन।

१५७ किष्किन्धातीर्थवर्णनम् ६२६

रावण के मरने पर सीता और लक्ष्मणके साथ श्रीराम का
गौतमी पर आना। रामरुत गौतमी प्रशंसा। राम एवं
घानरों का गौतमी पर स्नान और शिवलिङ्गपूजादि वर्णन।
राम के प्रति विभीषण का वचन। किष्किन्धा तीर्थ का
महत्त्व।

१५८ व्यासतीर्थवर्णनम् ६३२

अङ्गिरसों की उत्पत्ति। माता की आज्ञा के बिना तप करने
के लिए गये हुए अङ्गिरसों को विघ्न होना। अगस्त्य के
आश्रम में अङ्गिरसों का गमन व संघाद। अगस्त्य की
आज्ञा से उनका गौतमी पर आना। व्यास तीर्थ की
महिमा।

१५६ वंजरासंगमतीर्थवर्णनम्

६३६

दास भाव को प्राप्त हुए गरुड़ का अपनी माता विनता के प्रति प्रश्न ? उत्तर में माता ने कहा कि मैं अपने ही अपराध से दासी भाव को प्राप्त हुई हूँ। कद्रू के घबन से गरुड़ का सर्पों को सूर्यलोक में ले जाना और उनका अधःपतन। तन्निमित्त कद्रू का विनता के प्रति क्रोधवाक्य। सर्पों की जरा दूर करने के लिये गरुड़ का रसातल से जल लाना। उस जल के प्रोक्षण से सर्पों का जरा दूरीकरण और उसीसे वंजर की उत्पत्ति। वंजर संगमादि सवा लाख तीर्थों का वर्णन।

१६० देवागमतीर्थवर्णनम्

६४२

घन के निमित्त देवदानवों की ईर्ष्या। ब्रह्माकी आज्ञासे देवताओं का असुरों के साथ युद्धारम्भ। युद्ध के आरम्भ में गौतमी तट पर देवताओं का विष्णु एवं शंकर की स्तुति करना। गौतमी, हरि एवं शंकर की कृपा से देवताओं की विजय।

१६१ कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

६४५

कुशतर्पण तीर्थ का वर्णन। ब्रह्मा की उत्पत्ति और सृष्टि-क्रम। यज्ञसामग्री का वर्णन। विराट् पुरुष की उत्पत्ति। प्रणीता संगम कुश तीर्थ आदि छियासी हजार तीर्थों का वर्णन।

२ मन्युतीर्थवर्णनम्

६५३

अपनी विजय के लिए और शूरवीर पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताओं द्वारा महेश्वर की स्तुति। शकर की रूपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्यपरीक्षा के लिये देवताओं का वचन। मन्यु के स्वरूप का वर्णन। देवों द्वारा मन्यु को स्तुति। मन्यु के आश्रय से देवताओं को विजय प्राप्ति।

३ मारस्वततीर्थवर्णनम्, ब्रह्मरूपधारिपरशुनामक-

रक्षमउपास्यानम्

६५७

परशु नामक राक्षस ने ब्राह्मण रूप धारण कर शाकत्य मुनि से कहा कि मुझे भोजन दो।

दूरादभ्यागत श्रान्तमनुगच्छन्ति देवता ।
 तस्मिंस्तृप्ते तु तृप्ता स्युरतृप्ते तु विपर्यय ॥
 अतिथिश्चापवादी च द्वारेती विश्वयान्धवी ।
 अपवादी हरैत्पापमतिथि स्वर्गसङ्क्रम ॥
 अभ्यागत पथिश्रान्त सायत्र योऽमिषीक्षते ।
 तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयश श्रिय ॥

भोजन के समय परशु ने शाकत्य से कहा कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें खाने के लिये आया हूँ फिर शाकत्य ने अपना अपूर्ण शरीर दिखाया। परशुराक्षस

ने शाकल्यकी स्तुति की। शाकल्यकी आज्ञासे पर
ने, सरस्वतीकी स्तुति की और उसको स्वर्ग प्राप्ति।

१६४ चिच्चिकतीर्थावर्णनम् ६६३

पवमान राजा का चिच्चिक नामक पक्षी से संवाद। पवमान
राजा के प्रति चिच्चिक पक्षी का पूर्वजन्म वृत्तान्तकथन।
ब्रह्महत्या सदृश पापों का घर्णन।

अविज्ञातं चोपचिष्टं विभेमीति च घादिनम् ।
तं यदि क्षत्रियो हन्यात्सतु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥
अधीतं विस्मरति यस्त्वं करोति तथोत्तमम् ।
अनादरञ्च गुरुषु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥
प्रत्यक्षे च प्रियं वक्ति परोक्षे परुषाणि च ।
अन्यद्भृदि वचस्यन्यत्करोत्यन्यत्सदैव यः ॥
गुरूणां शपथं कर्ता द्वेषा ब्राह्मणनिन्दकः ।
मिथ्याविनीतः पापात्मा स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥
देवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम् ।
पताञ्चिन्दति यो द्वेषात्सतु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥

चिच्चिक की मुक्ति के लिए राजा का प्रश्न। चिच्चिक ने
राजा से प्रार्थना की कि मुझे मुक्तिके लिए श्वेत पर्वत स्थित
भगवान् गदाधर के पास ले चलो। राजाके साथ गंगा, और
गदाधर के दर्शन के लिए चिच्चिक का गमन। चिच्चिक
द्वारा गंगा का स्तवन एवं स्वर्ग प्राप्ति। राजा पवमान का
अपने सेवकों के साथ अपने नगर में आना।

६५ भद्रतीर्थवर्णनम्

६६८

कन्या के विवाह विषय में सूर्य का विचार । विवाह की अवधिफलन । कन्यादान के लिए कुल आदि का विचार । कन्या की प्रशंसा । कन्या आदि के विक्रय में निषेध । विवाह काल के उल्लङ्घन में दोष वर्णन । विश्वरूप और विष्टि का विवाह । भद्रतीर्थ का वर्णन ।

१६६ पतत्रितीर्थवर्णनम् ।

६७४

पतत्रि तीर्थ का वर्णन ।

१६७ विप्रतीर्थवर्णनम्

६७५

सोते हुए ब्राह्मण पुत्र आसन्दिब को लेकर राक्षसी का भागना । आसन्दिब और राक्षसी का संवाद । किसी ब्राह्मण कन्या के साथ आसन्दिब का विवाह । नारायण द्वारा राक्षसी का घघ । विप्रतीर्थ का वर्णन ।

६८ भानुतीर्थवर्णनम्

६८०

राजा अमिष्टुत का हयमेघ आरम्भ । याचना का लुप्तत्व वर्णन । ब्राह्मण वेशधारिदैत्य का यज्ञ में जाना । भान्वादि सौ तीर्थों का वर्णन ।

१६९ मिह्रतीर्थवर्णनम्

६८४

वेद नामक ब्राह्मण का शिवपूजा के अनन्तर मिह्राटन के लिए गमन । व्याघ्र का शिवपूजा प्रकार । विधान से की

हुई पूजा को विध्वंस करनेवाले के लिए वेद के मन में क्रोध की उत्पत्ति । आदिकेश और वेद का संवाद । व्याघ की भक्ति का वर्णन । व्याघ को घर प्राप्ति ।

१७० चक्षुस्तीर्थवर्णनम् ६८६

चक्षु तीर्थ का वर्णन । गौतम और कुण्डल का धन उपार्जन विषयक संवाद । पुत्र धर्म का वर्णन । धर्म की प्रशंसा । धर्म प्रशंसा करने वाले कुण्डल के नेत्रों का नाश । विर्माण का पुत्र के साथ संवाद । कुण्डल वैश्य को नेत्रादि का प्राप्ति । महाराजा नामक राजा की पुत्री को नेत्रों की प्राप्ति (बहू जन्मान्ध थी) । कुण्डलको राजकन्याकी प्राप्ति।

१७१ उर्वशीतीर्थवर्णनम् ६६६

इन्द्र और प्रमिति का संवाद । इन्द्र और प्रमिति का क्रीडन वर्णन । प्रमिति और चित्रसेन का क्रीडन वर्णन । मधुच्छन्द के साथ प्रमिति पुत्र सुमति के द्वारा प्रमिति को पाशा खेलने से गये हुए राज्य की प्राप्ति । श्रेष्ठ पुरुषों के लिये बिना छलकी वृत्ति का विधान ।

अकैतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम् ।

कृपिगोरक्ष्यदाणिज्यमपि कुर्यान्न कैतवम् ॥

यस्तु कैतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति ।

धर्मार्थकामाभिजनैः स विमुच्येत पौरुषात् ॥

७२ समुद्रतीर्थवर्णनम् १००५

गङ्गा और सागर का संवाद । गङ्गा के सप्त रूप का वर्णन ।

१७३ भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

१००८

गङ्गा के सात नामों का वर्णन ।

सप्तधा व्यमजन् गङ्गामृषयः सप्त नारद । ।
 घाशिष्टो दाक्षिणेयी स्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥
 घामदेश्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा ।
 मारद्वाजी स्मृता चान्या आत्रेयी चेत्यथापरा ॥
 जामदग्नी तथा चान्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा ।

ऋषि यज्ञ में देव शत्रु विश्वरूप का आगमन । विश्वरूप और
 ऋषि का संवाद ।

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च ।
 त्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम् ॥
 कर्मणां कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति ।
 भावामावीं फले दृष्टीं तस्मात्कर्माश्रितं फलम् ॥
 भावात्प्रारभते तद्द्वैतैः फलमवाप्यते ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्म चैव हि कारणम् ॥
 भावस्थितं भवेत्कर्म मुक्तिदं यन्धकारणम् ।
 स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवेह परत्र च ।

भीमेश्वर तीर्थ का वर्णन ।

१७४ गङ्गासागरसंगमवर्णनम्, सोमतीर्थवर्णनम् १०१२

गङ्गा और सागर का संगम वर्णन । देवनागों द्वारा हर और
 विष्णु का स्तवन । सोम तीर्थ का माहात्म्य । नारदकृत

सोम स्तुति । आदित्य और पार्हस्पत्यादि तीर्थों का घर्णन ।

१७५ तीर्थादीनांचातुर्विध्यादिनिरूपणम् १०१६

गंगा की प्रहा के कमण्डलु में, विष्णुके पद में, शिवजी की जटाजूट में, ब्रह्मगिरि में और पूर्व समुद्र में क्रम से स्थिति का घर्णन । चार प्रकार के तीर्थों का बताना । तीर्थों का सत्ययुगादि में क्रम से त्रिदेवत्व भाव होने से कलियुग में भी दैवत भाव का निरूपण बताया है । तीर्थों का युग क्रम से दैव, आसुर, आर्ष और मनुष्यत्व प्राप्ति का घर्णन । गणेशजी को शंकर की जटा से गंगावतरण का पार्वती द्वारा कथन । पार्वती और गणेशजी के संवाद में ब्रह्मगिरि पर्वत से समुद्र पर्यन्त गौतमी के दोनों तटों की स्थिति विषयक गौतम के प्रति हर्षपुलकित शिवजी का घर प्रदान । शिवजी द्वारा घर्णित गौतमी की यात्रादि का घर्णन । विस्तार सहित गौतमी माहात्म्य का फल कथन ।

१७६ अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम् १०२६

अनन्तवासुदेव भगवान् का माहात्म्य । ब्रह्माजी की विश्वकर्मा को वासुदेव भगवान् की मूर्ति बनाने के लिये आज्ञा । देवताअकि साथ रावणका संग्राम । रावण द्वारा इन्द्रकी पराजय । रावणका इन्द्रपुरी में गमन । वहाँ पर स्थित भगवान् वासुदेवकी मूर्तिको पुष्पक विमान द्वारा लङ्कामें ले जाना । रावणसे विभीषणको मूर्तिकी

प्राप्ति । राम और रावण का युद्ध । युद्ध में रावण की मृत्यु । भगवान् राम का अयोध्या के प्रति गमन ।

७७ पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम् १०३२

पुरुषोत्तम क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन ।

७८ कण्डुचरित्रवर्णनम् १०३६

कण्डु के आश्रम में तपनाश करने के लिये प्रमलोचा का जाना । कण्डु और प्रमलोचा का संवाद । तप नष्ट होने से कण्डु का पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाना और विष्णु की स्तुति एवं धरदान की प्राप्ति तदनन्तर मुक्ति । कण्डु की आख्यायिका का पठन एवं श्रवण का फल और पुरुषोत्तम क्षेत्रकी महिमा का वर्णन ।

७९ वादरायणं प्रतिश्रीकृष्णावतारविषयको मुनीनां

प्रश्नः १०५६

संशयाविष्ट मुनियों द्वारा कृष्णावतार के विषय में व्यासजी से प्रश्न ।

घसुदेवकुले धोमान्वासुदेवत्वमागतः ।

अमरेश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्विरलंरुतम् ॥

देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगतः ।

देवमानुषयोर्नेता घोर्मुघः प्रमघोऽय्ययः ॥

किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत् ।

यश्चक्रं घर्तवत्येको मानुषाणामनामयम् ॥

१८० श्रीकृष्णचरितारम्भः । चतुर्व्यूहवर्णनम् १०६३

मुनियों के प्रश्नोत्तरमें व्यासवृत्त भगवत्स्तुति व नानावतारों का वर्णन । चतुर्व्यूहकथन ।

१८१ अवतारप्रयोजनवर्णनम् १०६८

भारिक्रान्तायाः पृथ्व्या ब्रह्मणः समीपेगमनम् ।

ब्रह्माणं प्रति भगवद्वाक्यम् । हरेरंशाप्ततारनिरूपणम् ।

भगवान् के अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन । भार से पीड़ित पृथ्वी का ब्रह्माजी के पास जाना और अपने दुःख का निवेदन ।

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्गवा सूर्योऽपरो गुरु ।

ममाप्यखिल्लोकाना धन्द्योनारायणो गुरु ॥

तत्साप्रतमिमेदैत्या कालनेमिपुरोगमा ।

मर्त्यलोक समागम्य बाधन्तेऽहर्निश प्रजा ॥

भगवान् की प्रशंसा से गर्वित देवताओं के प्रति ब्रह्माजी का कथन । ब्रह्माजी द्वारा विष्णुस्तुति । स्तुतिश्रवण के अनन्तर विष्णु के द्वारा ब्रह्मा को सफेद और कृष्ण दो केशों का दान । विष्णु की सहायता के लिये इन्द्रादि देवताओं का अवतार । नारदजी ने कस से कहा कि देवकी के आठवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी ऐसा सुन कर क्रोधित कसन वसुदेव तथा देवकीको कारागारमें डाल दिया । देवकी

के छे पुत्रा का कस द्वारा धध । विष्णु और माया के संवाद में माया के प्रति भगवान् की आज्ञा ।

त्वं भूति. संनतिः कीर्ति कान्तिर्वै पृथिवी धृति ।

लज्जा पुष्टिरया या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥

ये त्वामार्यति दुगति वेदगर्मेऽभ्यिकेति च ।

भट्टेति भद्रकालीति क्षेम्या क्षेमकरीति च ॥

प्रातश्चैवऽपराह्णे च स्तोप्यन्त्यानन्नमूर्तयः ।

तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥

१८२ श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम् ।

१०७४

भगवान् की आज्ञासे माया द्वारा देवकी के गर्भ का आकर्षण और रोहिणी के गर्भ में स्थापन । यशोदा के उदर में माया की स्थिति । देवकी के उदर में भगवान् का प्रवेश । भगवान् के अवतार के समय देवताओं द्वारा पुष्प वृष्टि । इन्द्र देव देवकी द्वारा भगवान् की स्तुति । देवकीके प्रति अर्जुन का ध्यान । गोकुल में जाकर वसुदेव द्वारा अर्जुन के गर्भ में पुत्रकी स्थापना कर कन्या को लाना । अर्जुन द्वारा अर्जुन सुन कर देवकी के पुत्र जन्म का दूर्तो भाग अर्जुन : अर्जुन गार में कस का आगमन । यलात्कार से अर्जुन द्वारा अर्जुन हुई देवकी से कन्या का आकर्षण तत्पश्चात् अर्जुन का आगमन ।

१८३ वंमविचारकथनम् ।

१०७५

अशान्त कस द्वारा प्रलम्बादि दैत्यों से अर्जुन

‘फधन । फस ने दैत्यों को घालकों के मारने का आदेश दिया । फस ने घसुदेव देवकी के घन्धन को खोल कर उन्हें शान्ति फरघार ।

१८४ श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम् ।

१०७६

मधुरा में ही नन्द के पास घसुदेव फा जाना । घसुदेव और नन्द का प्रेम सवाद । घसुदेव की आग्रा से नन्दादि गोपों का गोकुल में आना । कृष्ण के द्वारा पूतना का घघ । गोकुच्छादि से कृष्ण की रक्षा । नन्द ने कृष्ण का स्वस्ति घाचन करघाया । बालक के चरण प्रहार से शकट (गाडा) का गिरना । उससे गोपियों का आश्चर्य । तदनन्तर यशोदा द्वारा शकट की पूजा । घसुदेव से प्रेरित गर्ग द्वारा गुप्त रूप से बालकों का नामकरण । बाललोला का वर्णन । यमलार्जुन का उद्धार । उत्पातों के भय से गोप गोपियों का वृन्दावन प्रवेश । वृन्दावन को शोभा का वर्णन । बालकों की क्रीडा का वर्णन ।

१८५ कालीयदमनाख्यानम् ।

१०८५

बलराम के बिना गोपों के साथ कृष्ण का कालीयहृद पर आगमन । उसको विषयुक्त देख कर कृष्ण का कालीयहृद में कूदना । वहाँ पर सपरिवार कालीय का आगमन एवं कृष्ण को डँसना । गोपियों का विथाप । नन्दादिकों के दुःख को छुडाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्पर्षी

करण । नागपत्नी द्वारा कृष्ण की स्तुति । कालीय द्वारा कृष्ण की स्तुति । समुद्र में जाने के लिये कालीय के प्रति कृष्ण की आज्ञा । सपरिवार कालीय का समुद्र के प्रति गमन । कृष्ण का हृद से बाहर आना ।

१८६ धेनुकप्रधास्यानम् । १०६१

गोपों के साथ बलराम और कृष्ण का ताल वन के प्रति जाना । तालफल की इच्छा से गोपों का रामकृष्ण के प्रति विज्ञापन । रामकृष्ण द्वारा तालफल को गिराना । धेनुकासुर द्वारा रामकृष्ण के वक्षस्थल का ताटन । कृष्ण द्वारा धेनुकासुर का वध ।

१८७ रामकृष्णकृतप्रह्वुत्रिधलीलावर्णनम् १०६३

घाह्यग्राहक लक्षण खेल के मिय से बलदेव द्वारा प्रल्हासुर का वध । गोपों द्वारा बलराम की प्रशंसा । ब्रज के प्रति गमन । शत्रु का वधन । गोवर्धनलीला का वर्णन ।

१८८ गोवर्धनास्यानवर्णनम् ११००

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उद्धार और इन्द्र का मान भंग । इन्द्र द्वारा कृष्ण स्तुति । कृष्ण को गोविन्द नामकी प्राप्ति । इन्द्र द्वारा बर्जुन के विषय में प्रार्थना । इन्द्र और कृष्ण का अपने २ स्थान में जाना ।

१८९ अरिष्टप्रधनिरूपणम् ११०५

रासकोडा का वर्णन और अरिष्टासुर का वध ।

१६० केशिवधनिरूपणम् ११११

कंस और नारद का सम्वाद । बलराम और कृष्ण को लाने के लिये कंस का अक्रूर को भेजना । बलराम और कृष्ण को मारने के लिये कंस की महद्युद्धयोजना । कृष्ण के घघ के लिये केशि का वृन्दावन जाना । केशि के शब्दों गोपों को भय । कृष्ण द्वारा केशि घघ । नारदरुत कृष्णवर्णन ।

१६१ अक्रूरगमनवर्णनम् १११६

अक्रूर का गोकुल गमन । अक्रूर द्वारा कृष्ण का वर्णन ।

१६२ अक्रूरग्रत्यागमनवर्णनम् ११२०

अक्रूर द्वारा कृष्ण को नमस्कार । अक्रूर द्वारा कंस की उक्ति का कथन । कंस के घघ के लिये कृष्ण की उक्ति । मथुरा के लिये राम कृष्ण और अक्रूर का गमन । कृष्ण के गमन से दुःखित गोपियों का परस्पर संभाषण । यमुना जल में अक्रूर को भगवान् के दर्शन । अक्रूर द्वारा कृष्ण स्तुति । कृष्ण और अक्रूर का संवाद । मथुरा में बलराम और कृष्ण का पराक्रमवर्णन ।

१६३ कुञ्जोद्धारवर्णनम् । कंसवधनिरूपणम् ११२६

कुञ्जा के प्रति कृष्ण का कथन । कृष्णरुत अनुग्रह वर्णन । बलराम और कृष्ण को मारने के लिये चाणूर व मुष्टिक को कंस की आज्ञा । नागरिकों द्वारा बलराम और कृष्ण का

घर्षण । कृष्ण और चाणूर का युद्ध । मुष्टिक और बलराम का युद्ध । चाणूर और मुष्टिक का घघ । कंस घघ ; घमुदेव द्वारा भगवत्स्तुति ।

६४ देवकीवमुदेवाम्यां मह कृष्णमंवादः ११३६

देवकी और घमुदेव के साथ कृष्ण का मवाद । कृष्ण द्वारा कंस की पत्नी का समाधान । कृष्ण द्वारा उग्रसेन का राज्याभिषेक । उग्रसेन को सुयर्मा नामक समा का प्राप्ति । उलदेव और कृष्ण को गुरु सार्दीपनि द्वारा अस्त्रप्रदान । सार्दीपनि को पुत्रप्राप्ति ।

६५ जरासन्धेन मह रामजनार्दनयुद्धवर्णनम् ११४२

जरासन्ध के साथ रामजनार्दन का युद्ध । जरासन्ध का तिरस्कार । जरासन्ध का युद्ध के लिये फिर आना । जरासन्ध की पराजय ।

६६ काल्यवनोपाख्यानम् ११४४

काल्यवन की उत्पत्ति का वर्णन । काल्यवनद्वारा यादवों का नाश । यादवों की रक्षा के लिये कृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण । मुचुकुन्द द्वारा काल्यवन का नाश । मुचुकुन्द द्वारा भगवत्स्वरूप का वर्णन ।

६७ गोकुले बलप्रन्यागमनवर्णनम् ११४६

मुचुकुन्द को भगवान् का घर प्रदान । तप के लिये मुचुकुन्द

का गन्धमादन के प्रति गमन । बलदेवजी का गोकुल में आना ।

१६८ हलक्रीडावर्णनम् ११५१

घहण और चारुणो का संवाद । यमुना और बलदेवजी का संवाद । बलदेवजी का मथुरा में गमन ।

१६९ रुक्मिणीविवाहवर्णनम् ११५३

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण । कृष्ण से रुक्मी की पराजय । रुक्मिणी विवाह एवं प्रद्युम्न की उत्पत्ति ।

२०० प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम् ११५५

शम्बरानुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण । शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकना । मत्स्य के उदर से शम्बर की स्त्री की प्रद्युम्न की प्राप्ति । शम्बर की स्त्री से नारद का संवाद । शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध । शम्बर का घघ । द्वारका में प्रद्युम्न का आगमन । श्रीकृष्ण नारद संवाद ।

२०१ अनिरुद्धविवाहे रुक्मिण्यधनिरूपणम् ११५८

रुक्मिणी के पुत्रों के नाम । कृष्ण की मित्रियों के नाम । अनिरुद्ध का विवाह । रुक्मी और बलदेव का दूत बनना । बलदेव द्वारा रुक्मी का घघ ।

२०२ नरकावधवर्णनम् ११६२

इन्द्र का द्वारका में आना । इन्द्र द्वारा नरकानुर की धेरा का वर्णन । उद्योतिवनुर के प्रति कृष्ण का गमन । कृष्ण

द्वारा मुरदैत्य का घघ । कृष्ण द्वारा नरकासुर का घघ ।
पृथ्वी द्वारा कृष्ण को कुण्डल दान । अदितिको कुण्डल
देने के लिये भगवान् का स्वर्गगमन ।

२०३ अदितिकृता भगवत्स्तुतिः ११६६

पारिजातहरणवर्णनम् । शक्रस्तववर्णनम्

अदितिदत्त भगवत्स्तुति । कृष्ण और अदिति का सवाद ।
सत्यमामाके घघनसे कृष्ण द्वारा कल्पवृक्ष का उता ।
वनपालों के साथ श्रीकृष्ण का सवाद । वनपालों को
सत्यमामा की गर्वोक्ति । देवताओं के साथ श्रीकृष्ण का
युद्ध । इन्द्र के साथ सत्यमामा का सवाद । इन्द्र द्वारा
भगवद्वर्णन ।

२०४ इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम् ११६७

इन्द्र के साथ श्रीकृष्ण का सवाद । इन्द्रका नैऋत्याय का
आगमन । कल्पवृक्ष का वर्णन ।

२०५ अनिरुद्धचरित्रवर्णनम् । बाणयुद्धवर्णनम् । ११७५

रुक्मिणी आदि छिपोंके पुत्रपुत्रपौत्रोंके इन्द्रके इन्द्रके । उपा
और अनिरुद्ध के विवाह का पथन । इन्द्रके इन्द्रके
उपा का गौरी से सवाद । इन्द्रके इन्द्रके
की चतुरता का वर्णन ।

२०६ बाणयुद्धवर्णनम् ११७६

द्वारा मुरदैत्य का घघ । कृष्ण द्वारा नरकासुर का घघ ।
पृथ्वी द्वारा कृष्ण को कुण्डल दान । अदितिको कुण्डल
देने के लिये भगवान् का स्वर्गगमन ।

२०३ अदितिकृता भगवत्स्तुतिः ११६६

पारिजातहरणवर्णनम् । शक्रस्तववर्णनम्

अदितिकृत भगवत्स्तुति । कृष्ण और अदिति का संवाद ।
सत्यमामाके घघनसे कृष्ण द्वारा कल्पवृक्ष का लाना ।
घनपालों के साथ श्रीकृष्ण का संवाद । घनपालों को
सत्यमामा की गर्वोक्ति । देवताओं के साथ श्रीकृष्ण का
युद्ध । इन्द्र के साथ सत्यमामा का संवाद । इन्द्र द्वारा
भगवद्वर्णन ।

२०४ इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम् ११७४

इन्द्र के साथ श्रीकृष्ण का संवाद । द्वारका में भगवान् का
आगमन । कल्पवृक्ष का वर्णन ।

२०५ अनिरुद्धचरित्रवर्णनम् । बाणयुद्धवर्णनम् । ११७५

रुक्मिणी आदि स्त्रियोंके पुत्र एवं पौत्रोंके नामोंका वर्णन । उपा
और अनिरुद्ध के विवाह का कथन । बाणासुर की लड़की
उपा का गौरी से संवाद । चित्रलेखा की लेखनकला
की चतुरता का वर्णन ।

२०६ बाणयुद्धवर्णनम् ११७६

भगवान् शंकर के साथ बाणासुर का संवाद और युद्ध के

का गन्धमादन के प्रति गमन । बलदेवजी का गोकुल में आना ।

१६८ हलक्रीडावर्णनम् ११५१

घरुण और वारुणी का संचाद । यमुना और बलदेवजी का संचाद । बलदेवजी का मथुरा में गमन ।

१६९ रुक्मिणीविवाहवर्णनम् ११५३

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण । कृष्ण से रुक्मी को पराजय । रुक्मिणी विवाह एवं प्रद्युम्न की उत्पत्ति ।

२०० प्रद्युम्नास्यानवर्णनम् ११५५

शम्बरामुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण । शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकना । मत्स्य के उदर से शम्बर की स्त्री को प्रद्युम्न की प्राप्ति । शम्बर की स्त्री से नारद का संचाद । शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध । शम्बर का घघ । द्वारका में प्रद्युम्न का आगमन । श्रीकृष्ण नारद संचाद ।

२०१ अनिरुद्धविवाहे रुक्मिण्यधनिरूपणम् ११५८

रुक्मिणी के पुत्रों के नाम । कृष्ण की स्त्रियों के नाम । अनिरुद्ध का विवाह । रुक्मी और बलदेव का दूत घणन । बलदेव द्वारा रुक्मी का घघ ।

२०२ नरकावधवर्णनम् ११६२

इन्द्र का द्वारका में आना । इन्द्र द्वारा नरकामुर की चेष्टा का घणन । उषोतिषपुर के प्रति कृष्ण का गमन । कृष्ण

द्वारा मुरदैत्य का घब । कृष्ण द्वारा नरकासुर का घब ।
पृथ्वी द्वारा कृष्ण को कुण्डल दान । अदितिको कुण्डल
देने के लिये भगवान् का स्वर्गगमन ।

२०३ अदितिकृता भगवत्स्तुतिः ११६६

पारिजातहरणवर्णनम् । शक्रस्तववर्णनम्

अदितिकृत भगवत्स्तुति । कृष्ण और अदिति का संवाद ।
सत्यमामाके घबनसे कृष्ण द्वारा कल्पवृक्ष का लाना ।
वनपालों के साथ श्रीकृष्ण का संवाद । घनशालों को
सत्यमामा की गर्वोंकि । देवताओं के साथ श्रीकृष्ण का
युद्ध । इन्द्र के साथ सत्यमामा का संवाद । इन्द्र द्वारा
भगवद्वर्णन ।

२०४ इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम् ११७४

इन्द्र के साथ श्रीकृष्ण का संवाद । द्वारका में भगवान् का
आगमन । कल्पवृक्ष का चर्णन ।

२०५ अनिरुद्धचरित्रवर्णनम् । बाणयुद्धवर्णनम् । ११७५

रुक्मिणी आदि स्त्रियोंके पुत्र एवं पौत्रोंके नामोंका चर्णन । उषा
और अनिरुद्ध के विवाह का कथन । बाणासुर की लडकी
उषा का गौरी से संवाद । चित्रलेखा की लेखनकला
की चतुरता का चर्णन ।

२०६ बाणयुद्धवर्णनम् ११७६

भगवान् शंकर के साथ बाणासुर का संवाद और युद्ध के

लिये प्रार्थना । उषा के भन्तःपुर में चित्रलेखा द्वारा अनि
का लाना । याणासुर और अनिच्छ का युद्ध । अनि
का वन्धन । कृष्ण और बलदेव का युद्ध के लिये आ
याणासुर के साथ भगवान् का युद्ध । भगवान् और शंकर
युद्ध । हरिहर संवाद । भगवान् का सपत्नीक अनिच्छ
साथ द्वारका में आना ।

२०७ पौण्ड्रकवधवर्णनम्

११८

काशिराज पौण्ड्रक के दूत का द्वारका में आगमन । दूत
साथ कृष्ण का संवाद । श्रीकृष्ण के साथ पौण्ड्रक
युद्ध । पौण्ड्रक का वध । शंकर के घरदान से काशि
के पुत्र द्वारा कृत्या का उत्पादन । सुदर्शन चक्र के भ
कृत्या का घाटणसी में प्रवेश । चक्र द्वारा घाटणसी
दाह पश्चात् चक्र का कृष्ण के हाथ में वापिस आना ।

२०८ बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

११९

व्यास और ऋषियों के संवाद में बलदेवजी के पराक्रम
वर्णन । साम्ब द्वारा दुर्योधन की कन्या का हरण । दुर्योध
दिकों द्वारा साम्ब का वन्धन । बलदेवजी का हस्तिना
में आगमन । कौरवों के साथ बलदेव का संवाद । बल
कृत हस्तिनापुर का आकर्षण । कौरवों द्वारा बलदेव
प्रार्थना ।

६ द्विविद्वानरवधवर्णनम् ११६३

व्यासजी और ऋषियों का संवाद । बलदेव कृत द्विविद्वानरवध ।

० भूमिभारावतरणकथनम् । यादवकुलमंहार- ११६६
वर्णनम् ।

व्यासजी और ऋषियों के संवाद में भूमि के भारवतरण का कथन । यादव कुल के उपमहार का वर्णन । भगवान् का द्वारका त्याग तथा निजबाम गमन । यादवों के शाप का हेतु कथन । देवताओं द्वारा भेजे हुए दृन का आगमन तथा कृष्ण के साथ संवाद । महोत्पातो के गमन के त्रिये यादवों का प्रमास में जाना । भगवान् का उद्भव के साथ संवाद । यादवों का नाश वर्णन ।

१ कृष्णमानुषोत्सर्गकथनम् १२०२

भगवान् की कृपा से लुन्धक (याध) का स्वर्ग गमन ।

२ रुक्मिण्यादीनां परलोकगमनम् १२०४

आभीरार्जुनमंवाद कथनम् । आभीरार्जुनयुद्धवर्णनम् ।

अर्जुनविषादकथनम् । व्यामार्जुनमंवादकथनम् ।

अष्टावक्राख्यानम् ।

रुक्मिणी आदि राणियों का स्वर्गरोहण । आभीर और

अर्जुन का संवाद एवं युद्ध । अर्जुन की पराजय । म्लेच्छों द्वारा श्रेष्ठ स्त्रियों का हरण । अर्जुन के विषाद का घर्णन । व्यासजी और अर्जुन के संवाद में व्यासजी द्वारा अर्जुन का समाधान । अष्टावक्र के ध्यान का घर्णन । अष्टावक्र के तप का घर्णन । तिलोत्तमा रम्भा आदि अप्सराओं द्वारा अष्टावक्र की प्रशंसा । रम्भा को पुरुषोत्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का घर प्रदान । जल से बाहर आये मुनि के शरीर का टेढ़ापन देख कर रम्भा द्वारा हास्य । रम्भा के हास्यसे क्रुपित मुनिका शाप पश्चात् प्रसन्न होकर घरप्रदान । सबान्धव पाण्डवों का महाप्रस्थान । परीक्षित् को राज्य दान तदुपरान्त वनगमन । कृष्ण चरित्र को समाप्ति कथन ।

२१३ वराहावतारवर्णनम् । नृसिंहावतारवर्णनम् १२२४

वामनावतारवर्णनम् । दत्तात्रेयावतारवर्णनम् ।

परशुरामावतारवर्णनम् । रामावतारवर्णनम् ।

विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ।

वराह अवतार का घर्णन । वराहरूपी परमेश्वर के शरीर के अर्द्धा का घर्णन । यज्ञवराह कृत पृथ्वी का उद्धरण । नृसिंह अवतार का घर्णन । हिरण्यकशिपु के तप का घर्णन एवं घरप्रदान । ब्रह्मा के साथ देवताओं का भगवान् के पास गमन । देवताओं द्वारा भगवान् की स्तुति । भगवान् का नृसिंह रूप में अवतरित होना । नृसिंह भगवान् द्वारा

दक्षिण मार्ग से जाने वाले प्राणियों के दुःखों का घर्णन ।
चित्रगुप्त द्वारा पापियों का घर्णन । भयंकर नरकोंका घर्णन ।
अनेक प्रकार के पापों का घर्णन । पापों के अनुरोध से
नरक प्राप्ति कथन ।

२१६ नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम् । १२६०
धार्मिकाणां सुगतिनिरूपणम्

नरकों के दुःख निवारण के लिये मुनिर्या द्वारा व्यास के
प्रति प्रश्न । व्यासजी द्वारा धर्म के आचरण से सुगति
प्राप्ति का घर्णन ।

प्राणान्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम् ।
यानिनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।
अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्समम् ॥
ये तु तं धर्मराजानं नराः पुण्यानुभावतः ।
पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥
तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः ।
धर्मादर्थस्तथाकामो मोक्षश्चपरिकीर्त्यते ॥
धर्मोमाता पिताभ्राता धर्मोनाथःसुहृत्तथा ।
धर्मः स्वामी सखागोप्ता तथा धाता च पोषकः ॥
धर्मस्तु सेवितोविप्रास्त्रायते महतोभयात् ।
द्वेषत्यं च द्विजत्यं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

ये नरा नरकध्वंसिवासुदेयमनुव्रताः ।

ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकार्णवम् ॥

कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणंगताः ।

न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥

२१७ धर्मश्रेष्ठ्यर्णनम् । शरीरोत्पत्तिकथनम् । १२६६

पुण्यपापानुरोधेन नानायोनिपुजननवर्णनम् ।

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन । शरीर की उत्पत्ति का वर्णन ।

पुण्य एवं पाप के अनुरोध से अनेक योनियों में जनन वर्णन ।

तदनन्तर पापपुण्य का वर्णन ।

२१८ अन्नदानप्रशंसारणनम् १२८१-

शुभप्राप्ति विषयक मुनियों का व्यास के प्रति प्रश्न । अन्नकी प्रशंसा । अन्नदान से शुभ प्राप्ति का कथन ।

नर कृत्वाऽप्यकर्माणि ततो धर्मेण युज्यते ।

सर्वेषामेव दानानामन्नंश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥

सर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुनाधर्ममिच्छता ।

प्राणाहान्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तु प्रजायते ॥

अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नं प्रशस्यते ।

अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ॥

अन्नस्वहि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानव ।

न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ॥

- २१६ श्राद्धविधिवर्णनम् १२८४
 श्राद्धविधिका निरूपण । पितरेश्वरों के साथ चन्द्रमा की कन्या का संवाद । चन्द्रमा का पितरों को शाप । सोमजा का कोका नामक नदी धनता । पितरों द्वारा भगवान की स्तुति । पितरों के उद्धार का कथन । अग्निकरण और पिण्डदान की विधि ।
- २२० श्राद्धकल्पवर्णनम् १२९६
 श्राद्धकल्प का वर्णन । प्रतिपद् आदि तिथि क्रमसे श्राद्ध करने का फल कथन । सपिण्डोकरण का विधान । श्राद्ध में ग्राहण विचार । पिण्डदान कथन ।
- २२१ सदाचारवर्णनम् । भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम् १३१६
 सदाचार का कथन ।
 गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम् ।
 न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥
 दुराचारो हि पुरुषो नेहाऽऽयुर्विन्दते महन् ।
 कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम् ॥
 धर्म वर्णन । मलादिकों की त्याग विधिका वर्णन एवं आचमन विधि । अनध्याय कथन । कन्या वर्णन तथा श्रुतुकाल में गमनप्रकार । देव पूजा कथन । देवता तथा पितरोंके तर्पण का वर्णन । वैश्वदेव का विधान । विप्रों के घसने योग्य देशों का वर्णन । सूतक का विचार ।

वृत्त्यथ धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।
 अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 श्लक्ष्णां घाणी स्वच्छवर्णा मधुरां पापवर्जिताम् ।
 स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा ।
 न पैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 न कोपाद्बुध्याहरन्ते ये वाच हृदयदारिणीम् ।
 शान्तिं विन्दन्ति ये क्रुद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा ।
 मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः ।
 मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
 अथैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तरताः सदा ।
 सर्वभूतदयाघन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

कर्म के फलोदय का फल कथन ।

पापेन कर्मणा देवि युक्तो हिंसादिभिर्यतः ।
 ब्रह्मिणः सर्वभूतानां हीनायुष्पजायते ॥
 शुभेन कर्मणा देवि प्राणिघातविवर्जितः ।
 निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसन्ति कदाचन ॥
 न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैषानुमोदते ।
 सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते ।

उपपन्नान्सुप्तान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदायुतः ॥

२२५ उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम् १३५१

कृपणादीनां नरकप्राप्तिकथनम् ।

स्वधर्मनिरतानां वर्णनम् ।

उमामहेश्वर के संवाद में देवलोक प्राप्ति का कथन । कृपणा-
दिकों को नरक प्राप्ति का वर्णन । स्वधर्मरत प्राणियों का
वर्णन । पाप में रत प्राणियों को नरक प्राप्ति का कथन ।

२२६ मुनिमहेश्वरसंवादे वासुदेवमहिमवर्णनम् १३५७

मुनि महेश्वर संवाद में वासुदेव भगवान की महिमा एवं
भगवत् स्वरूप का वर्णन । मनु के वंश का वर्णन । व्यासजी
और मुनियों के संवाद में कृष्णपूजा के फल का कथन ।

२२६ (द्वि०) मुनिव्याससंवादे विष्णुपूजाकथनम् १३६४

विष्णुपूजाकथनम्

व्यास और मुनियों के संवाद में विष्णु भगवान् की पूजा
का वर्णन ।

२२७ व्यासमुनिसंवादे विष्णुपूजाकथनम् । १३६६

चाण्डालराक्षससंवादवर्णनम् । उर्वशीमूर्खसंवादकथनम्

विष्णु भगवान् के जागरणमें भगवद्भजन का फल । चाण्डाल और राक्षस का संवाद ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।

महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः ॥

जीवधर्मार्थसुखं नरस्तथाप्नोति मोक्षगतिमग्र्याम् ।

जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथालोके ॥

सत्य की प्रशंसा :—

सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः ।

ज्वलत्यग्निश्च सत्येन घाति सत्येन मारुतः ॥

धर्मार्थकामसंप्राप्तिं मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा ।

सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥

सत्यं ब्रह्म परंलोके सत्यं यज्ञेषु चात्तमम् ।

सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥

जागरण की पुण्य प्राप्ति के लिये राक्षस द्वारा मातङ्ग की प्रार्थना । ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का कथन एवं राक्षसत्व की प्राप्ति । चाण्डाल के पूर्वजन्म का कथन । मूर्ख ब्राह्मण और उर्वशी का संवाद । शफटदान का माहात्म्य ।

२२८ व्यासमुनिसंवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम् १३८५

भगवन्माया वर्णनम् । कामदमनारूपानम् ।

ध्यास और मुनिराजके संवादमें विष्णुभक्तिका हेतु कथन ।

मूर्खादि देवोंकी आराधना कथन । भगवान्की मायाका

कथन । कामदमनका धारयान । कपालमोचन तीर्थका
उत्पत्ति वर्णन । कामदमनका स्वर्गगमन ।

२२६ व्यासमुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम् १३६८

कलिस्वरूपवर्णनम् । कलिगत भविष्यरुथनम् ।

व्यास और मुनियोंके सवादमें महाप्रलयका वर्णन । कलि
के स्वरूप का वर्णन । कलियुग में भविष्य का वर्णन ।

तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फल द्विजा ।

प्राप्नोति पुत्र्यस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम् ॥

भ्यायन्तृने यजन्यज्ञैस्त्रेताया द्वापरैऽर्चयन् ।

यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥

धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुत्र्य कलौ ।

स्वत्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽभ्यह कलौ ॥

२३० व्यासमुनिसंवादे द्वापरयुगान्तरुथनम् । १४०६

भविष्यरुथनम्

व्यास और मुनियोंके सवादमें द्वापर युगके अन्त का
कथन । नष्ट धर्मके निमित्त कारण । भविष्य कथन ।

अशिष्टवन्तोऽर्यपरा नरा मद्यामिषप्रिया ।

विभ्रमार्या भजिष्यन्ति युगान्ते पुत्र्याधमा ॥

राजवृत्तिस्थिताध्वीरा राजानध्वीरशीलिन ।

भृत्या ह्यनिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥

सत्र ब्रह्म षडिष्यन्ति । द्विजा पात्रसनेयिका ।

शूद्राभा वादिनश्चैव ब्राह्मणाश्चान्त्यवासिनः ॥
 शुकुदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः कापायवासिनः ।
 शूद्रा धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः ॥
 आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशदुभविष्यति ।
 दुर्बला विषयगलाना जराशोकैरभिप्लुताः ॥

२३१ व्यास-मुनिमंत्रादे प्राकृतप्रतिमंचरकथनम् । १४१५
 कल्पमानकथनम्

व्यासजी और मुनियों के संवाद में प्राकृतलय का कथन ।
 कल्पका मान कथन । नैमित्तिकलय का स्वरूप कथन ।

२३२ प्राकृतलयनिरूपणम् १४१६
 प्राकृतलय का स्वरूप कथन ।

२३३ आत्यन्तिकलय निरूपणम् १४२४
 आत्यन्तिकलय का निरूपण । आध्यात्मिकादि तीनों
 तीर्थोंका कथन । शिरदर्द, जुकाम खाँसी आदि आध्यात्मिक
 तापका निरूपण । काम क्रोधादि मानसिक तापका
 निरूपण । मृग पक्षि आदिकोंसे होनेवाले आधिभौतिक
 तापका वर्णन । गर्भ, जन्म, वृद्धावस्था आदिसे उत्पन्न आधि
 दैविक तापका कथन । गर्भमें स्थित प्राणीको दुःखावस्था
 का निरूपण । बाल अवस्था, वृद्धावस्था और मरणावस्था
 का वर्णन । पाप कर्मों से नरक प्राप्ति का कथन एवं मुक्ति
 और ज्ञान की महिमा का वर्णन ।

परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात् ।
 ध्यानमध्ययनं दानं सत्यंहीरार्जवं क्षमा ॥
 शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः ।
 एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥

२३८ । योगविधिनिरूपणम् १४५८

योग विधि का निरूपण । योग और सांख्य के मत के जानने वालों की दया आदि आचरणों की समानता का कथन । विशेषता से योगी की प्रशंसा का वर्णन । योग के आहार का वर्णन ।

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भो द्विजा ।

स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥

भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालं द्विजोत्तमाः ।

एकाहारी विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥

कामादि सम्पूर्ण शत्रुओं के जय का वर्णन । योग के अभ्यास से नारायण पद की प्राप्ति ।

२३९ सांख्यविधिनिरूपणम् १४६४

सांख्य विधि का निरूपण । मनुष्यादिकों के विषयज्ञान का कथन । सांख्य ज्ञान का महिमा का वर्णन । सांख्य योग से ऋषिजनों की उत्तम कुल में उत्पत्ति ।

२४० वशिष्ठकरालजनरुसंवादे क्षराक्षर विचार-
 निरूपणम् १४७६

क्षर (नारायण) और अक्षर (ध्रुव) का वर्णन । मुनिर्षा

न यः समुत्सुकः फश्चिदुग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् ।
 स फथं मन्दविज्ञानो ग्रन्थं घक्ष्यामि निर्णयात् ॥
 मज्ञात्या ग्रन्थतत्त्वानि घार्दं यः फुह्यते नरः ।
 लोभाद्वाऽप्यथवा दम्मात्स पापी नरकं प्रजेत् ॥
 निर्णयं चापि छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः ।
 सोऽपीहास्यार्थतत्त्वज्ञो यस्मान्निघाऽऽत्मवानपि ॥

योगलक्षणवर्णनम् , सांख्यज्ञानकथनम् १४६१

योग के लक्षण वर्णन । सांख्य ज्ञान का कथन । क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का लक्षण ।

२४३ विद्याविद्ययोः स्वरूपकथनम् १४६५

अक्षरअक्षरयोःपुनर्विस्तरेणवर्णनम् , अभेदेन
 सांख्य योग कथनम् ।

विद्या और अविद्या का स्वरूप कथन । क्षर और अक्षर का
 विस्तार से वर्णन । अभेद से सांख्य योग का कथन ।

२४४ अजस्यापि विक्रियया नानाभवनम् १५००

एकत्वनानात्त्रयोर्लक्षणम् , ज्ञानविज्ञान-
 संज्ञितमोक्षवर्णनम् ।

अज परमात्मा भी विकारों से अनेक रूपों में भान होता है ।

एकत्व और नानात्व का लक्षण । ज्ञान और विज्ञान से संज्ञित मोक्ष का वर्णन । इस ज्ञान को देने के लिये अधि-कारी का निर्णय ।

न देयमेतच्च यथाऽनृतात्मने
 शठाय क्लीबाय न जिह्मबुद्धये ।
 न पण्डितज्ञानपरोपतापिने,
 देय तथा शिष्यविबोधनाय ॥

जनक के प्रति वशिष्ठजीने कहा—मुझे यह महा ज्ञान ब्रह्माजी से प्राप्त हुआ है । ज्ञान प्राप्ति की परम्परा का कथन ।

३५ अस्य श्रवण पठन कर्तृणां फल प्राप्ति कथनम् १५०७

पुराण को सुनकर प्रसन्न हुए मुनियों द्वारा व्यासजी की प्रशंसा । तदनन्तर सब मुनियों का अपने २ आश्रमों में जाना । ब्रह्मपुराण के श्रवण पठन करनेवालों को फल प्राप्ति का कथन ।

३६ धर्म प्रशंसा वर्णनम् १५११

धर्म की प्रशंसा ।

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्य ,
 स्वर्गं च धर्मेण नर प्रयाति ।
 आयुश्च कीर्तिश्च तपश्च धर्म,
 घ ण मोक्षं लभते मनुष्य ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम् ।



प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य घर्षणम्

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

यस्मान् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचित मायाजगज्जायते,
यस्मिंस्तिष्ठति याति चाप्तसमये कपातुकल्पे पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनय प्रपञ्चरहित विन्दन्ति मोक्षं ध्रुव,
तं वन्दे पुरुषोत्तमार्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम् ॥१॥

यं ध्यायन्ति बुधा समाधिसमये शुद्धं विद्यतसन्निभं,
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्व्वेश्वर निर्गुणम् ।

व्यक्तायक्तपर प्रपञ्चरहित ध्यानैकगम्य विभुं,
त संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम् ॥ २ ॥

सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे ।

नानामुनिजनाकीर्णे नानापुण्योपशोभिने ॥ ३ ॥

सरलैः कर्णिकारैश्च पतसैरर्धखादिरेः ।

आप्रजम्बूकपित्तैश्च न्यग्रोधैर्द्वैघटारुमिः ॥ ४ ॥

मुनय ऊचु ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम ।
 जानासि देवदैत्याना चरितं जन्म कर्म च ॥ १६ ॥
 न तेऽन्यविदित किञ्चिद्वेदे शास्त्रे च भारते ।
 पुराणे मोक्ष शास्त्रे च सर्वजोऽसि महामते ॥ १७ ॥
 यथापूर्वमिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ।
 ससुरामुरगन्त्रं सयशोरगराक्षसम् ॥ १८ ॥
 ध्रौतुमिच्छामहे सूत तूहि सर्वं यथा जगत् ।
 यभूत् भूयश्च यथा महामाग भवेत्पति ॥ १९ ॥
 यतश्चैव जगत् सत यतश्चैव चराचरम् ।
 लीनमासात्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥ २० ॥

लोमहर्षण उवाच ।

अविकाराय शुद्धाय त्रिन्त्राय परमात्मने ।
 सदैकस्वरूपाय विष्णवे सत्त्वजिष्णवे ॥ २१ ॥
 नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।
 वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥ २२ ॥
 एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
 अयक्तायकभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ २३ ॥
 स्वर्गस्थितिविनाशाय जगतो योऽजरामरः ।
 मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ २४ ॥
 आधारभूत विश्वस्याप्यणीयासमर्णायसाम् ।
 त्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युत पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥

ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्मल परमार्थत ।
 तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनत स्थितम् ॥ २६ ॥
 विष्णुं ब्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ स्वर्गे तथा प्रभुम् ।
 स र्यज्ञ जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥ २७ ॥
 आद्य सुसृष्टमं विश्वेश ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च ।
 इतिहासपुराणज्ञ वेदत्रेदाङ्गपारगम् ॥ २८ ॥
 स र्यशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पराशरसुत प्रभुम् ।
 गुरु प्रणम्य घक्षयामि पुराण वेदसम्मितम् ॥ २९ ॥
 कथयामि यथापूर्वं दक्षायै मुनिसत्तमै ।
 गृष्ट प्रोवाच भगवानजयोनि पितामह ॥ ३० ॥
 शृणुन्व संप्रवक्ष्यामि कथा पापप्रणाशिनीम् ।
 कथयमाना मया विद्या यर्था श्रुतिविस्तराम् ॥ ३१ ॥
 यस्त्विमा धार्योऽन्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
 स्वयत्तधारण कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥
 अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम् ।
 प्रधान पुरापरवस्मादिभिर्गमे विश्वमाश्रय ॥ ३३ ॥

कीर्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्वेषां पुण्यवर्द्धनम् ।
 ततः स्वयम्भूर्मगवान् मिसृशुर्विविधाः प्रजाः ॥ ३७ ॥
 अप एव सर्वसर्जादीं तामु चीर्यमथासृजन् ।
 आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूतवः ॥ ३८ ॥
 अयनं तस्य ताः पृथ्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
 हिरण्यवर्णममवत्तदन्तमुदकेशायम् ॥ ३९ ॥
 तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ।
 हिरण्यवर्णो भगवानुसिन्वा परिवत्सरम् ॥ ४० ॥
 तदन्तमकरोद्दुधैश्च दिवं भुवमथापि च ।
 तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥ ४१ ॥
 अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ।
 तत्र कालं मना चाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥ ४२ ॥
 ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन्प्रजापतीन् ।
 मरोचिमद्भ्यङ्गिरर्मा पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ ४३ ॥
 वसिष्ठं च महानेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान् ।
 सप्त ब्राह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ ४४ ॥
 नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ।
 ततोऽसृजन् पुरा ब्रह्मा स्रष्टुं रोषात्मसम्भवम् ॥ ४५ ॥
 सतत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ।
 सप्तस्येता अजायन्त प्रजा स्रष्टाश्च भो द्विजाः ॥ ४६ ॥
 स्कन्दः सतत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ।
 तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥ ४७ ॥

क्रियावन्त प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृता ।
 विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूपि च ॥ ४८ ॥
 घयासि च ससर्जादीं पर्जन्यश्च ससर्ज ह ।
 ऋचो यजूपि सामानि निर्गमे यज्ञसिद्धये ॥ ४९ ॥
 साध्यानजनयद्देवानित्येवमनुसञ्जगु ।
 उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ ५० ॥
 आपर्वस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापते ।
 सृज्यमाना प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥ ५१ ॥
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरपोऽभवत् ।
 अर्द्धेन नारी तस्या तु सोऽसृजद्विविधा प्रजा ॥ ५२ ॥
 दिवश्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठति ।
 विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुष विराट् ॥ ५३ ॥
 पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्यन्तर स्मृतम् ।
 द्वितीय मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥ ५४ ॥
 स वैराज प्रजासर्गं ससर्ज पुरुष प्रभु ।
 नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजा ॥ ५५ ॥
 आयुष्मान् षीर्त्तिमान् पूर्णप्रशावाश्च भवेश्वर ।
 आदिसर्गं विद्विष्वेम यथेण चाप्नुयाद्गतिम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीब्रह्म महापुराणे आदिसर्गवर्णन
 प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

तत्रादी स्वयम्भुव मनुचंश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

स सृष्ट्वा तु प्रजाम्स्त्रेयमापयो वै प्रजापतिः ।

लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामथोनिजाम् ॥ १ ॥

आपचस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।

धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत ॥ २ ॥

सा तु चर्यायुतं तन्वया तपः परमदुश्चरम् ।

मर्त्तारं द्रोततपसं पुरुषं प्रन्यपद्यत ॥ ३ ॥

स वै स्वायम्भुवो विद्यां पुरुषो मनुकल्पते ।

तस्यैकसततियुगं मन्वन्तरमिहोन्वते ॥ ४ ॥

वैराजान् पुरुषार्द्धारं शतरूपा व्यजायत ।

प्रियव्रतोत्तानपादीं धारात् काम्या व्यजायत ॥ ५ ॥

काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ।

काम्यापुत्रान्तु चत्वारः सप्राद् कुक्षिर्विराट्प्रभुः ॥ ६ ॥

उत्तानपादं जप्राह पुरमत्रिः प्रजापतिः ।

उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥ ७ ॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विधुता ।

उत्पन्ना धाजिमेषेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ ८ ॥

ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं धमुं तथा ।

उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९ ॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः ।
 तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्वयशः ॥ १० ॥
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः ।
 अचलञ्चैव पुरतः सप्तरीणां प्रजापतिः ॥ ११ ॥
 तस्याभिमानमृद्धिञ्च महिमानं निरोक्ष्य च ।
 देवासुराणामाचार्य्यं श्लोकं प्रागुशना जगौ ॥ १२ ॥
 अहोऽस्य तपसा घोर्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् ।
 यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ १३ ॥
 तस्माच्छ्लष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्यजायत ।
 श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ १४ ॥
 रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम् ।
 रिपोराधत्त बृहती चक्षुष सर्वतेजसम् ॥ १५ ॥
 अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम् ।
 प्रजापतेरात्मजाया घोःणस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
 मनोरजायन्त दश नङ्गलाया महौजसः ।
 कन्यायां मुनिशार्दूला घैराजस्य प्रजापतेः ॥ १७ ॥
 कुत्सः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः ।
 अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥ १८ ॥
 अमिमन्युश्च दशमो नङ्गलायां महौजसः ।
 पुरोरजनयत् पुत्रान् पडानेयी महाप्रभान् ॥ १९ ॥
 अङ्गं सुमनसं लयाति क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।
 अङ्गात् मुनीधापत्यं घै घेनमेकं व्यजायत ॥ २० ॥

अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ।

प्रजार्थमृषयो यम्य ममन्युर्दक्षिणं करम् ॥ २१ ॥

वेनस्य मथिते पाणौ स बभूव महानृपः ।

तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेव वै मुदिताः प्रजाः ॥ २२ ॥

करिष्यति महानेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ।

स धन्यो कचर्षी जातो जलञ्ज्वलनसन्निभः ॥ २३ ॥

पृथुर्धैन्यस्तथा चेमा ररक्ष क्षत्रपूर्यजः ।

राजसूयामिषिक्तानामाद्यः स वमुवाचिपः ॥ २४ ॥

तस्माच्चैव समुन्पर्षी निपुर्णो सतमागर्षी ।

तेनेवं गौर्मुनिश्चेष्टा दुग्धा शम्यानि भृशता ॥ २५ ॥

प्राचीनाप्रा' कुशास्तस्य पृथिव्यां द्विजसत्तमाः ।*

प्राचीनवर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः ॥ ३१ ॥

समुद्रतनयाया तु वृतदारोऽभवत् प्रभु ।

महतस्तपस पारे सवर्णाया प्रजापतिः ॥ ३२ ॥

सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिष' ।

सर्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगान् ॥ ३३ ॥

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप' ।

दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशया' ॥ ३४ ॥

तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेत सु महोरहा ।

अरुद्यमाणामावत्रुर्थभूवाथ प्रजाक्षय ॥ ३५ ॥

नाशकन्मारतो पातुं वृत खमभवद्द्रुमै ।

दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजा ॥ ३६ ॥

तदुप्रश्रुत्य तपसा युक्ता सव्य प्रचेतस ।

मुषेभ्यो वायुमग्नि च ससृजुर्जातमन्यव ॥ ३७ ॥

उन्मूलानथ वृक्षास्तु कृत्वा वायुरशोषयत् ।

तानग्निरददघोर एवमासीद्द्रुमक्षय ॥ ३८ ॥

क्रमक्षयमयो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिउष्टेषु शाखिषु ।

उपगम्याव्रवीदेतारतदा सोम प्रजापतीन् ॥ ३९ ॥

फोप यच्छत राजान. सर्वे प्राचीनवर्हिष ।

वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुती ॥ ४० ॥

मुनय उचु ।

देवाना दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
 सम्भवस्तु श्रुनोऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मन ॥ ५१ ॥
 अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मगो जज्ञे दक्ष किल शुभव्रत ।
 घामाङ्गुष्ठात्तथा चैत्र तस्य पत्नी व्यजायत ॥ ५२ ॥
 कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महानपा ।
 एतन्न सशप्रसूनं व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि ॥
 दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरता गत ॥ ५३ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूनेषु भोद्विजा ।
 ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जना ॥ ५४ ॥
 युगे युगे भ्रमन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपा ।
 पुनश्चैव निरुह्यन्ते विद्यास्तत्र न मुह्यति ॥ ५५ ॥
 ज्यैष्ठ कानिष्ट्यमप्येवापूर्व्वनासीद्द्विजोत्तमा ।
 तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५६ ॥
 इमा विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् ।
 प्रजावानायुहत्तार्णं स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सृष्टिकथन नाम

द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

देवदानघोटपत्ति वर्णनम्

मुनय उचुः ।

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।

उत्पत्तिं विस्तरैणैव लोमहर्षण कीर्त्तय ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।

यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजाः ॥ २ ॥

मानसान्येष भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः ।

ऋषीन्द्रेवान्सगन्धर्वान्सुरान्यक्षराक्षसान् ॥ ३ ॥

यदास्य मानसी विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजाः ।

तदा सञ्चिन्त्य धर्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः ॥ ४ ॥

स मैथुनेन धर्मेण सिसृञ्चुर्विधाः प्रजाः ।

असिक्तोमावहत् पत्नीं चोरणस्य प्रजापते ॥ ५ ॥

सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ।

अथ पुत्रसहस्राणि चैरण्यां पञ्च चोर्षयान् ॥ ६ ॥

असिकन्यां जनशामास दक्ष एव प्रजापतिः ।

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्मंविवर्द्धयिषून् प्रजाः ॥ ७ ॥

देवर्षिः प्रियसवाशो नारदः प्रात्रवीदिदम् ।

नाशाय घचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥ ८ ॥

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठो व्यजीजनत् ।

दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापमयान्मुनिः ॥ ९ ॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ।
 असिकन्यामथ वैरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः ॥ १० ॥
 तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ।
 तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुताः ॥ ११ ॥
 निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न सशयः ।
 तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितचिन्म ॥ १२ ॥
 ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचित परमेष्ठिना ।
 ततोऽभिसन्धिधक्के वै दक्षस्य परमेष्ठिना ॥ १३ ॥
 कन्याया नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ।
 ततो दक्ष सुता प्रादात् प्रिया वै परमेष्ठिने
 स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादपि ॥ १४ ॥

मुनय उचुः ।

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।
 प्रजापते सूतवर्य्यं श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ १५ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विषद्वयिषवः प्रजाः ।
 समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

वालिशा वत यूथं वै नास्या जानीत वै भुवः ।
 प्रमाणं स्रष्टकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥ १७ ॥
 अन्तरुद्धर्ममधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः ।
 ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाता सर्व्वतो दिशः ॥ १८ ॥

अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ।
 हर्यश्रेष्वथ नष्टेषु दक्ष प्राचेतस पुन ॥ १६ ॥
 वैरण्यामथ पुत्राणा सहस्रमसृजत्प्रभु ।
 विचर्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वास्तथा प्रजा ॥ २० ॥
 पूर्वोक्त वचन ते तु नारदेन प्रचोदिता ।
 अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृपि ॥ २१ ॥
 भ्रातृणा पदवी ज्ञातु गन्तव्य नात्र सशय ।
 ज्ञात्वा प्रमाण पृथ्याश्च सृष्टम स्रक्ष्यामहे प्रजा ॥ २२ ॥
 तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतो दिशम् ।
 अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ॥ २३ ॥
 तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरुन्वेपणे द्विना ।
 प्रयातो नश्यति क्षिप्र तत्र कार्यं विपश्चिता ॥ २४ ॥
 ताश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्ष प्रजापति ।
 पष्टि ततोऽसृजन् कन्या वैरण्यामिति न श्रुतम् ॥ २५ ॥
 तास्तदा प्रतिजग्राह भाव्यार्थकश्यप प्रभु ।
 सोमो धर्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षय ॥ २६ ॥
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
 सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्नेमिने ॥ २७ ॥
 द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
 द्वे वृत्राश्वाय विदुषे तासा नामानि मे शृणु ॥ २८ ॥
 अरुन्धती घतुर्यामी लम्बा मानुर्मरुत्त्वती ।
 सङ्कुल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विभ्या च भो द्विजा ॥ २९ ॥

धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि घोधत ।
 विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ ३० ॥
 मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसव सुता ।
 भानोस्तु भानव पुत्रा मुहर्त्तास्तु मुहर्त्तजा ॥ ३१ ॥
 लभ्यायाश्चैव घोषोऽथ नागवाथी च यामिजा ।
 पृथिवीविषय सर्व्वमरुन्धत्या व्यजायत ॥ ३२ ॥
 सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ।
 नागवीथ्याञ्च यामिन्या वृषलश्च व्यजायत ॥ ३३ ॥
 परा या सोमपत्नीश्च दक्ष प्राचेतसो दक्षौ ।
 सर्वा नक्षत्रनाभ्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥
 ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिषपुरोगमा ।
 वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ३५ ॥
 आपो ध्रुवश्च सोमश्च ध्रुवश्चैवानिलोऽनल ।
 प्रत्यूपश्च प्रभासश्च वसवो नामभि स्मृता ॥ ३६ ॥
 आपस्य पुत्रो घैतण्ड श्रम श्रान्तो मुनिस्तथा ।
 ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोरुप्रकालन ॥ ३७ ॥
 सोमस्य भगवान् वद्या वच्चस्वी येन जायते ।
 ध्रुवस्य पुत्रो द्रविणो हुतह यवहस्तथा ॥ ३८ ॥
 मनोहराया शिशिर प्राणोऽथ रमणस्तस्था ।
 अनिलस्य शिवा भाट्या तस्या पुत्रो मनोजय ।
 अधिज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रायनिलस्य च ॥ ३९ ॥

अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तन्नेत्रिया वृत ।
 तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्टज ॥ ४० ॥
 अपत्य वृत्तिकाना तु कार्त्तिकेय इति स्मृत ।
 प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाथ देवलम् ॥ ४१ ॥
 द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ।
 बृहस्पतेस्तु भगिनी घरस्त्री ब्रह्मवादिना ॥ ४२ ॥
 योगसिद्धा जगत् कृन्स्नमसक्ता विचचार ह ।
 प्रभासस्य तु सा भावर्षा वसूनामग्रमस्य तु ॥ ४३ ॥
 विश्वकर्मा महाभागो यस्या जज्ञे प्रजापति ।
 कर्त्ता शिल्पसहस्राणा त्रिदशानाञ्च धार्द्धकि ॥ ४४ ॥
 भूषणानाञ्च सर्वेषा कर्त्ता शिल्पवता वर ।
 य सर्वेषा विमानानि दैवताना चकार ह ॥ ४५ ॥
 मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन ।
 सुरमी कश्यपाद्बुद्रानेकादश विनिर्ममे ॥ ४६ ॥
 महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ।
 अजैकपादहिरुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च धीर्ष्यवान् ॥ ४७ ॥
 हरश्च बहुरूषश्च त्र्यम्बकश्चापराजित ।
 वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ ४८ ॥
 मृगन्याधश्च शर्षश्च कपाली च द्विजोत्तमा ।
 एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥ ४९ ॥
 शत त्वेव समाप्यात रुद्राणाममिर्ताजसाम् ।
 पुराणे मुनिशाडूला यैर्व्याप्त सचराचरम् ॥ ५० ॥

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः ।
 अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्ठा सुरसा खसा ॥ ५१ ॥
 सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इला ।
 कद्रुमुनिश्च भो विप्रास्तास्त्रपत्यानि घोधत ॥ ५२ ॥
 पूर्वमन्वतरे श्रेष्ठाद्वादशासन् सुरोत्तमाः ।
 तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५३ ॥
 उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुपस्यान्तरे मनोः
 हितार्थं सर्व्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥ ५४ ॥
 आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै ।
 मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ ५५ ॥
 एवमुक्ता तु ते सर्व्वे चाक्षुपस्यान्तरे मनोः
 मारीचात् कश्यपाज्जाजास्त्वदित्या दक्षकन्यया ॥ ५६ ॥
 तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरैव हि ।
 अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ ५७ ॥
 विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
 अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ५८ ॥
 चाक्षुपस्यान्तरे पूर्व्वमासंस्ते तुषिताः सुराः ।
 वैवस्वतेऽन्तरे ते वा आदित्या द्वादश स्मृताः *
 सप्तविंशति ताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः
 तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः ॥ ५९ ॥

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।
 बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥ ६० ॥
 चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वे ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ।
 कृशाश्वस्य च देवर्षेदैवप्रहरणाः स्मृताः ॥ ६१ ॥
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
 सर्व्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः ॥ ६२ ॥
 तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते
 यथा सूर्य्यस्य गगन उदयास्तमयाचिह्न ॥ ६३ ॥
 एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ।
 दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ६४ ॥
 हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च धीर्य्यवान् ।
 सिंहिकाचाभवन् कन्या विप्रचित्तेःपरिग्रहः ॥ ६५ ॥
 सिंहिकेया इति रयाता तस्याः पुत्रा महाबलाः ।
 हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥ ६६ ॥
 हादश्च अनुहादश्च प्रह्लादश्चैव धीर्य्यवान् ।
 सहादश्च चतुर्थोऽभूद्बुधादपुत्रो हृदस्तथा ॥ ६७ ॥
 हृदस्य पुत्रो ह्यौ धीरो शिवः कालस्तथैव च ।
 विरोचनस्तु प्राहादिर्यलिर्जने विरोचनात् ॥ ६८ ॥
 यलेः पुत्रशतं त्वासीद्गुणान्ज्येष्ठं तपोधनाः ।
 धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्चचन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥ ६९ ॥
 शुम्भनामो गर्हभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः ।
 घाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥ ७० ॥

पुरा कल्पे तु याणेन प्रसाद्योमापति प्रभुम् ।
 पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येव याचितो वर ॥ ७१ ॥
 हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वासश्च महाबला ।
 उर्जर शशुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥ ७२ ॥
 महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ।
 अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमा ॥ ७३ ॥
 तपस्विनो महाधीर्या प्राधान्येन ब्रवीमि तान् ।
 द्विमूर्द्धा शङ्करुर्णश्च तथा ह्यशिरा विभु ॥ ७४ ॥
 अयोमुख शम्बरश्च करिलो घामनस्तथा ।
 मारीचिर्मघवाश्चैव इत्यल खसुमस्तथा ॥ ७५ ॥
 विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतहर्दा ।
 इन्द्रजित्सर्वजिञ्चैव घञ्जनाभस्तथैव च ॥ ७६ ॥
 एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।
 वैश्वानर पुलोमा च विद्रावणमहाशिरा ॥ ७७ ॥
 स्वर्भानुवृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च धीर्यवान् ।
 सर्व एते दनो पुत्रा कश्यपादभिजज्ञिरे ॥ ७८ ॥
 विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवा सुमहाबला ।
 एतेषा पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्य द्विजोत्तमा ॥ ७९ ॥
 प्रसख्यातु बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
 स्वर्मानोस्तु प्रभा कन्या पुलोमस्तु शची सुता ॥ ८० ॥
 उपदानवी ह्यशिरा शर्मिष्ठा चार्पण्वर्षणी ।
 पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
 बह्वपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु परिग्रह ॥ ८१ ॥

पुरा कटपे तु बाणेन प्रसाद्योमापति प्रभुम् ।
 पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येव याचितो वर ॥ ७१ ॥
 हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबला ।
 उर्जर शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥ ७२ ॥
 महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ।
 अभवन् दनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमा ॥ ७३ ॥
 तपस्विनो महावीर्या प्राधान्येन त्रयीमि तान् ।
 द्विर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभु ॥ ७४ ॥
 अयोमुख शम्बरश्च करिलो घामनस्तथा ।
 मारीचिर्मघवाश्चैव इत्यल खसुमस्तथा ॥ ७५ ॥
 विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतहर्दौ ।
 इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव घञ्जनामस्तथैव च ॥ ७६ ॥
 एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।
 वैश्वानर पुलोमा च विद्राचणमहाशिरा ॥ ७७ ॥
 स्वर्भानुर्वृषपर्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान् ।
 सर्व एते दनो पुत्रा कश्यपादभिज्जिरे ॥ ७८ ॥
 विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवा सुमहाबला ।
 एतेषा पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्य द्विजोत्तमा ॥ ७९ ॥
 प्रसत्यातु बहुत्याश्च पुत्रपौत्रमनन्तकम् ।
 स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोमस्तु शची सुता ॥ ८० ॥
 उपदानघो हयशिरा शर्मिष्ठा चार्पणवर्षणी ।
 पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
 यद्दुषपत्ये महापत्ये मारीचेस्तु पत्निह ॥ ८१ ॥

तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषांमनिघत्यां निघासिनः
 अवध्यास्तेऽपि देवानामञ्जुनेन निपातिताः ।
 पद्सुताः सुमहाभागास्ताप्रायाः परिकीर्तिताः ॥ ६२ ॥
 कौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ।
 कौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥ ६३ ॥
 श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान्गृध्रांश्च गृध्यपि ।
 शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥ ६४ ॥
 अश्वानुष्ट्रान् गर्द्भांश्च ताप्रावंशः प्रकीर्तितः ।
 विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारणौ ॥ ६५ ॥
 गरुडः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ।
 सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥ ६६ ॥
 अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम् ।
 फाद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः ॥ ६७ ॥
 सुपर्णवशगा नागा जङ्घिरे नैकमस्तकाः ।
 येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः ॥ ६८ ॥
 ऐरापतो महापद्मः कम्बलाश्वतराघुर्भौ ।
 एलापत्रश्च शङ्खश्च फर्कोटकधनञ्जयौ ॥ ६९ ॥
 महानीलमहाकर्णो धृतराष्ट्र्यलाहको ।
 कुदरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखाः सुमुखास्तथा ॥ १०० ॥
 शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो पामनस्तथा ।
 नहुपः शङ्खरोमाच मनिरित्येषमादयः ॥ १०१ ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।

चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम् ॥ १०२ ॥

गणं क्रोधयशं विप्रास्तस्य सर्व्यं च दृष्टिणः

स्थलजाः पक्षिणोऽजाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥ १०३ ॥

गास्तु वै जनयामास सुरमिमहिषोन्मथा ।

इरा वृक्षलता बह्वीस्तुनजातीश्च सर्व्यशः ॥ १०४ ॥

खसा तु यक्षरक्षासि मुनिरप्सरसस्तथा ।

अरिष्टा तु महासिद्धा गंधर्वानमितीजसः ॥ १०५ ॥

एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।

येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०६ ॥

एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ।

वैवश्वतेऽनिमहति चारुणे वितते क्रतौ ॥ १०७ ॥

जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ।

पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥ १०८ ॥

पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ।

ततो विरोधे देवानां दानवाना च भो द्विजाः ॥ १०९ ॥

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ।

कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तथा ॥ ११० ॥

घरेण छन्दयामास सा च घरे घरं तदा ।

पुत्रमिन्द्रवघार्थाय समर्थममितीजसम् ॥ १११ ॥

स च तस्मै घरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः ।

दत्त्वा च घरमत्युग्रो मारीचः समभाषत ॥ ११२ ॥

इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम् ।
 यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥ ११३ ॥
 तथेत्यभिहितो भर्ता तथा देव्या महातपाः ।
 धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥ ११४ ॥
 ततोऽभ्युपागमदित्यां गर्भमाधाय कश्यपः ।
 रोधयन् वै गणं श्रेष्ठं देवानाममितौजसम् ॥ ११५ ॥
 तेजः सहत्य दुर्धर्मवध्यममरैरपि ।
 जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रता ॥ ११६ ॥
 तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः ।
 जाते चर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥ ११७ ॥
 भ्रष्ट्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ।
 निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥ ११८ ॥
 घञ्जपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यहन्तयत् ।
 स पाट्यममानो गर्भोऽथ घञ्जेण प्ररुोद् ह ॥ ११९ ॥
 मा रोदीरिति तं शक्रः पुनःपुनरथाव्रवीत् ।
 सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥ १२० ॥
 एकेकं सप्तधा चक्रे घञ्जे णैवारिकर्षणः ।
 मरुतो नाम ते देवा यभूयु द्विजसत्तमाः ॥ १२१ ॥
 यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽमवन् ।
 देवाश्चैकोनपञ्चाशन्सहाया घञ्जपाणिनः ॥ १२२ ॥
 तेषामेघं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः ।
 रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम् ॥ १२३ ॥

निकायेषु निकायेषु हरि प्रादात् प्रजापतान् ।
 क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भो द्विजा ॥ १०४ ॥
 स हरि पुरयो धीर ऋणो जिष्णु प्रजापति
 पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ १०५ ॥
 भूतसर्गमिमं सम्यग्ज्ञानतो द्विजमत्तमा ।
 नावृत्तिमयमस्तीह परलोकमथ कुत ॥ १०६ ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्
 पत्तिकथन नाम तृतायोऽध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्यामिपेरु घर्णनम्
 लोमहर्षण उवाच ।

अमिषिच्याधिराजेन्द्र पृथुं वैन्यं पितामह ।
 तत्र क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
 द्विजानां धीरुधा चैव नक्षत्रग्रहयोस्तया ।
 यज्ञानां तपसा चैव सोम राज्येऽभ्यपेक्षयत् ॥ २ ॥
 अपा तु घरुणराज्ये राजा वैश्रघण पतिम् ।
 आदित्यानां तथा विष्णु वसुनामथ पाचकम् ॥ ३ ॥

प्रजापतीना दक्ष तु मरतामथ वासवम् ।
 दैत्याना दानवाना वै प्रहादममितौजसम् ॥ ४ ॥
 वैवस्यत पितृणाञ्च यम राज्येऽभ्यपेचयत् ।
 यक्षाणा राक्षसाणाञ्च पार्थिवाणा तथैव च ॥ ५ ॥
 सर्व्वभूतपिशाचाना गिरीश शूलपाणिनम् ।
 शैलाना हिमवन्तश्च नदीनामथ सागरम् ॥ ६ ॥
 गधर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथ प्रभुम् ।
 नागाना वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥ ७ ॥
 वारणाना तु राजानमैरावतमथादिशत् ।
 उच्चै श्रवसमश्वाना गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥ ८ ॥
 मृगाणामथ शाडूदूल गोवृपन्तु गवा पतिम् ।
 घनस्पतीना राजान प्लक्षमेवाभ्यपेचयत् ॥ ९ ॥
 एव विभाज्य राज्यानि क्रमेणैव पितामह ।
 दिशा पालानथ तत स्थापयामास स प्रभु ॥ १० ॥
 पूर्व्वस्या दिशि पुत्र तु वैराजस्य प्रजापते ।
 दिश पाल सुधन्वान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥ ११ ॥
 दक्षिणस्या दिशि तथा कर्द्दमस्य प्रजापते ।
 पुत्र शङ्खपद् नाम राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥ १२ ॥
 पश्चिमस्या दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।
 पेतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥ १३ ॥
 तथा हिरण्यरोमाण पर्जन्यस्य प्रजापते ।
 उदीच्या दिशि दुर्द्धयं राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥ १४ ॥

तैरिय पृथिवी सध्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
 यथाप्रदेशमद्यापि धर्मण प्रतिपाल्यते ॥ १५ ॥
 राजसूयामिषिक्तस्तु पृथुरेतैर्नराधिपैः ।
 वेददृष्टेन विधिना राजा राज्ये नराधिपः ॥ १६ ॥
 ततो मन्वन्तरेऽतांते चाश्रुपेऽमिततेजसि ।
 धैवस्वताय मनवे पृथिव्यां राज्यमादिशत् ॥ १७ ॥
 तस्य विस्तरमाप्याम्ये मनोर्ध्वस्वतस्य ह ।
 भवतां चानुकृत्याय यदि श्रोतुमिहेच्छथ ।
 महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम् ॥ १८ ॥

मुनय ऊचुः ।

विस्तरेण पृथोर्जन्म लोमहर्षण कीर्तय ।
 यथा महात्मना तेन दुग्धा वेयं वसुन्धरा ॥ १९ ॥
 यथा वापि नृभिर्दुग्धा यथा देवैर्महर्षिभिः ।
 यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥ २० ॥
 यथा शैलैः पिशाचैश्च गंधर्वैश्च द्विजोत्तमैः ।
 राक्षसैश्च महासस्वर्यथा दुग्धा वसुन्धरा ॥ २१ ॥
 तेषां पात्रविशेषांश्च वक्तुमर्हसि सुव्रत ।
 वत्सक्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः ॥ २२ ॥
 यस्माच्च कारणात् पाणिर्वनस्य मथितः पुरा ।
 क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥ २३ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

शृणुध्वं कीर्त्तयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
 एकाग्राः प्रयताश्चैव पुण्यार्या वै द्विजर्षभाः ॥ २४ ॥

नाशुचेः क्षुद्रमनसो नाशिष्यस्याव्रतस्य च ।
 कीर्त्तयेयमिदं विप्राः कृतान्नायाहिनाय च ॥ २५ ॥
 स्वर्गं यशस्यमायुर्ग्यं धन्यं :वेदेश्च सम्मितम् ।
 रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं ऋणुध्वं वै यथातथम् ॥ २६ ॥
 यश्चेमं ऋत्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
 ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतम् ॥ २७ ॥
 आसीद्धर्मस्य संगोष्ठा पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ।
 अत्रिघशे समुत्पन्नस्तद्गो नाम प्रजापतिः ॥ २८ ॥
 तस्य पुत्रोऽभवदुवेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः ।
 जातो मृत्युसुताया वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥ २९ ॥
 स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः ।
 गवधर्मं पृष्ठत कृत्वा कामलोभेष्ववर्त्तत ॥ ३० ॥
 मर्यादा भेदयामास धर्मोपितां स पार्थिवः
 वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥ ३१ ॥
 नि स्वाध्यायवपट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापतौ ।
 प्रवृत्तं न पपु सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ३२ ॥
 न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः ।
 आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ३३ ॥
 अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्बह ।
 मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ३४ ॥
 तमतिप्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
 ऊचुर्महर्षयः सर्व्यं मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ३५ ॥

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्याम संवत्सरगणान् बहून् ।
 अधम्मं कुरु मा वेन एष धर्मः सनातनः ॥ ३६ ॥
 निधनेऽग्नेः प्रसूतस्त्व प्रजापतिरसंशयम् ।
 प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितीह समयः कृतः ॥ ३७ ॥
 तांस्तथा रुचतः सर्वान्महर्षीन्प्रवीक्षदा ।
 वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थचित् ॥ ३८ ॥

वेन उवाच ।

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वा मया ।
 श्रुतवीर्य्यतपसत्यै मया वा कः समो भुवि ॥ ३९ ॥
 प्रभवं सर्व्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः ।
 सम्मूढा न विदुर्नृनं भवन्तो मां विचेतसः ॥ ४० ॥
 इच्छन् दहेयं पृथिवी प्लावयेयं जलैस्तथा ।
 द्यां वै भुवं च रुद्धेयं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४१ ॥
 यदा न शक्यते मोहादघलेपाच्च पार्थिवः ।
 व्यनेतु तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ ४२ ॥
 तं निगृह्य महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम् ।
 ततोऽस्य सग्रमुरुं ते ममन्थु जातमन्यवः ॥ ४३ ॥
 तस्मिन्निर्मथ्यमाने वै राज उरौ तु जज्ञिवान् ।
 हस्योऽतिमात्रं पुरुषः कृष्णश्चेति बभूव ह ॥ ४४ ॥
 स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थिवान् द्विजसत्तमाः ।
 तमत्रिर्विह्वलं दृश्या निपीदेत्यग्रवीक्षदा ॥ ४५ ॥

निपादवंशकर्त्तासौ बभूव घदतां वराः ।
 धीवरानसृजच्चापि वेनकल्मषसम्भवान् ॥ ४६ ॥
 ये चान्ये विद्यानिलयास्तथा पर्वतसंश्रयाः ।
 अधर्मरुचयो विप्रास्ते ते वै वेनकल्मषाः ॥ ४७ ॥
 ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ।
 अरणीमिव संरब्धा ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ ४८ ॥
 पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नः कराज्ज्वलनसन्निभः ।
 दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षाद्गिरिव ज्वलन् ॥ ४९ ॥
 अथ सोऽजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
 शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥ ५० ॥
 तस्मिन् जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ।
 समापेतुर्महाभागा वेनस्तु त्रिदिव ययौ ॥ ५१ ॥
 समुत्पन्नेन भो विप्राः सत्पुत्रेण महात्मना ।
 त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुत्रान्नो नरकात्तदा ॥ ५२ ॥
 तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ।
 तोयानि चाभिपेकार्थं सर्व्य एधोपतस्थिरे ॥ ५३ ॥
 पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह ।
 स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ॥ ५४ ॥
 समागम्य तदा वैन्यमभ्यपिञ्चन्नराधिपम् ।
 महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥ ५५ ॥
 सोऽमिपिक्तो महातेजा विधियद्गर्भकोषिदैः
 आधिराज्ये तदा राहां पृथुर्वैग्यः प्रतापवान् ॥ ५६ ॥ .

पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
 अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाम्यजायत ॥ ५७ ॥
 आपस्तस्तम्मिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः ।
 पर्वताश्च ददुर्म्मार्गं ध्वजमङ्गञ्च नामवत् ॥ ५८ ॥
 अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात् ।
 सर्व्वकामदुघा गावः पुटके पुटकेमधु ॥ ५९ ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।
 सूतः सून्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥ ६० ॥
 तस्मिन्नेव महायज्ञे यज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
 पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहृतौ महर्षिमिः ॥ ६१ ॥
 तावूचुर्भृषयः सर्व्वे स्तूयतामेव पार्थिवः ।
 कर्मतदनुत्पन्नं वा पारं चार्थं नराधिपः ॥ ६२ ॥
 तावूचनुस्तदा सर्व्वान्स्तानृषान् सूतमागधो ।
 धावां देवानृषींश्चैव शीणयाव. म्वरुर्गमिः ॥ ६३ ॥
 न चाम्य चिद्रुमो वै कर्म नाम वा लक्षणं यशः ।
 स्तोत्रं येनास्य कुर्व्याद्य राजस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ ६४ ॥
 ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यै स्तूयतामिति
 यानि कर्म्मणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महारथः ॥ ६५ ॥
 ततः प्रभृति वै लोके स्तरेषु मुनिसत्तमा ।
 आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सप्तमागधवन्दिभिः ॥ ६६ ॥
 तयो स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः
 अनूपदेशं सूताय मागधं मागधाय च ॥ ६७ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः ।
 वृत्तीनामेव वो दाता भविष्यति नराधिपः ॥ ६८ ॥
 ततो वैन्यं महात्मानं प्रजा-समभिदुद्रुवुः ।
 त्व नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥ ६९ ॥
 सोऽभिद्रुत-प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।
 धनुर्गृह्य पृषत्काश्च पृथिवीमाद्रबद्धली ॥ ७० ॥
 ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रघन्मही ।
 तां पृथुर्धनुरादाय द्रघन्तीमन्वधावत ॥ ७१ ॥
 सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा
 प्रददर्शाप्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥ ७२ ॥
 ज्वलद्भुभिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमन्तत- ।
 महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्पममरैरपि ॥ ७३ ॥
 अलभन्ती तु सा प्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
 एताञ्जलिपुटा भूत्वा पूजया लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥ ७४ ॥
 उवाच वैन्यं नाधम्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि ।
 कथं धारयिता चासि प्रजा राजान् विना मया ॥ ७५ ॥
 मयि लोका स्थिता राजन्मयेद् धार्य्यते जगत् ।
 मद्धिनाशे चिनश्येयुः प्रजा-पार्थिव चिद्धि तत् ॥ ७६ ॥
 न मामर्हसि हन्तुं वै श्रेयश्चेत्यं चिकीर्षसि ।
 प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेद् धनो मम ॥ ७७ ॥
 उपायतः समारब्धा सर्व्ये सिध्यन्त्यप्रत्रमाः ।
 उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजामिमाम् ॥ ७८ ॥

हत्वापि मा न शक्तस्त्वं प्रजाना पोषणे नृप ।
 अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोप महामने ॥ ७६ ॥
 अवध्या च स्त्रिय प्राहुस्तिर्यग्योनिगनेष्वपि ।
 यद्येव पृथिवीपाल न धम्मं त्यक्तुमर्हसि ॥ ८० ॥
 एव ऋषिय वाक्य श्रन्वा राजा महामना ।
 कोप निगृण्य धर्मात्मा वसुधामिदमप्रवीत् ॥ ८१ ॥

पृथुखाच ।

एकस्यार्यं तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
 बहून् वा प्राणिनोऽनन्त भरेत्तस्येह पातकम् ॥ ८२ ॥
 सुखमेघन्ति बहूो यस्मिन्तु निहतेऽशुभे ।
 तस्मिन् हते नास्ति भद्रे पातक चोपपातकम् ॥ ८३ ॥
 सोऽह प्रजानिमित्तं त्वा हनिष्यामि वसुन्धर
 यदि मे वचनात्वाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥ ८४ ॥
 त्वा निहत्याय वाणेन मञ्जासनपराट्मुखीम् ।
 आत्मान प्रथयित्वाह प्रजा धारयिता स्वयम् ॥ ८५ ॥
 सा त्व शासनमास्थाय मम धर्मभृता वरे ।
 सञ्जीवय प्रजा सर्व्या समर्था ह्यसि धारणे ॥ ८६ ॥
 दुहितृत्व च मे गच्छ तत एनमह शरम् ।
 नियच्छेय त्वद्द्वार्यमुद्यन्त घोरदर्शनम् ॥ ८७ ॥

वसुधोवाच ।

सर्व्यमेतद्दह धीर विधास्यामि न सशय ।
 घत्स तु मम सापश्य क्षरेय येन घत्सला ॥ ८८ ॥

समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मा त्व धर्मभृता घर ।
तथा विस्यन्दमान मे क्षीर सर्व्वत्र भावयेत् ॥ ८६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रश ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विचर्द्धिता ॥ ६० ॥
न हि पूर्व्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
सविभाग पुराणा वा ग्रामाणा घाभवत्तदा ॥ ६१ ॥
न शस्यानि न गोरक्ष्य न वृषिर्न वणिक्पथ ।
नैष सत्यानृत चासीन्न लोभो न च मत्सर ॥ ६२ ॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रत समुपस्थिते ।
वैन्यात्प्रभृति वै विप्रा सर्व्वस्यैतस्य सम्भव ॥ ६३ ॥
यत्र यत्र सम त्वस्या भूमेगाम्नीत्तदा द्विजा ।
तत्र तत्र प्रजा सर्वा विवास समरोचयन् ॥ ६४ ॥
आहार फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।
वृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुपशुश्रुम ॥ ६५ ॥
स कल्पयित्वा घटस तु मनु स्वायम्भुव प्रभुम् ।
स्वपाणौ पुरय्याघो दुद्रोह पृथिवीं तत ॥ ६६ ॥
शम्यजातानि सर्घ्याणि पृथुर्घ्यैर्न्य प्रतापवान् ।
तेनाग्नेन प्रजा सर्घ्या पत्तन्तेऽद्यापि सर्घ्यश ॥ ६७ ॥
श्रययध तदा देवा पितरोऽथ सरामृपा ।
दैत्या यक्षा पुण्यजना गन्धर्घ्या पर्घ्यता नगा ॥ ६८ ॥

पते पुरा द्विजश्रेष्ठो दुदुर्धरणीं किल ।
 क्षीरं घत्सञ्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक् ॥ ९९ ॥
 ऋषीणाममवत्सोमो घत्सो दोग्धा बृहस्पतिः ।
 क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दासि भो द्विजाः ॥ १०० ॥
 देवानां काञ्चन पात्रं घत्सस्तेषां शतक्रतुः ।
 क्षीरमोजम्बरं चैव दोग्धा च भगवान्रवि ॥ १०१ ॥
 पितृणां राजत पात्रं यमो घत्स प्रतापवान् ।
 अन्तरुध्वाभवदोग्धा क्षार तेषां सुधा स्मृता ॥ १०२ ॥
 नागानां तक्षको घत्स पात्रं चालानुसङ्गकम् ।
 दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षारं विषं स्मृतम् ॥ १०३ ॥
 असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम् ।
 विरोचनस्तु घत्सोऽभूदायस पात्रमेव च ॥ १०४ ॥
 यक्षाणामामपात्रं तु घत्सो वैश्रवणः प्रभुः ।
 दोग्धा रजतनामस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥ १०५ ॥
 सुमाली राक्षसेन्द्राणां घत्सं क्षीरञ्च शोणितम् ।
 दोग्धा रजतनामस्तु कपालं पात्रमेव च ॥ १०६ ॥
 गन्धर्वाणां चित्ररथो घत्स पात्रं च पङ्कजम् ।
 दोग्धा च सुहृदि क्षीरं तेषां गन्धः शुचिं स्मृतम् ॥ १०७ ॥
 शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नोपधीस्तथा ।
 घत्सस्तु हिमवानासोऽदुदोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥ १०८ ॥
 प्लक्षो घत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः ।
 पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नद्रग्धप्ररोहणम् ॥ १०९ ॥

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च घसुन्धरा ।
 चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ ११० ॥
 सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी ।
 आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ॥ १११ ॥
 मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता ।
 तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ११२ ॥
 ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भो द्विजाः ।
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥ ११३ ॥
 पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च घसुन्धरा ।
 शस्याकरवती स्फोता पुरपत्तनशालिनी ॥ ११४ ॥
 पष्यप्रभावो वैन्यः स राजासीद्राजसत्तमः ।
 नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ॥ ११५ ॥
 ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारणैः ।
 पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥ ११६ ॥
 पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः ।
 आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ ११७ ॥
 यो धैरवि च विक्रान्तैः प्राप्नुकामैर्जयं युधि ।
 आदिराजो नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥ ११८ ॥
 यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् ।
 स घोररूपात्संग्रामात्क्षेमी भवति कीर्त्तिमान् ॥ ११९ ॥
 पेश्वैरपि च विसाद्गैर्वैश्यवृत्तिविधापिभिः ।
 पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिशाला महायशाः ॥ १२० ॥

तथैव शूद्रैः शुचिमिस्त्रिवर्णपरिचारिमिः ।
 पृथुरेव नमस्काव्यः श्रेयः परमिहेप्सुमिः ॥ १२१ ॥
 पते घत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ।
 पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि घः ॥ १२२ ॥
 इति श्रौत्राह्णे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं
 नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर वर्णनम्

अथय ऊचुः ।

मन्वन्तराणि सर्व्याणि विस्तरेण महामने ।
 तेषां पूर्व्वविसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय ॥ १ ॥
 याचन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च ।
 मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥ २ ॥
 लोमहर्षण उवाच ।
 न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्णशतैरपि ।
 मन्वन्तराणां सर्व्वेषां संक्षेपाच्छृणुत द्विजाः ॥ ३ ॥
 स्थायम्भुवो मनुः पूर्य्य मनुः म्वारोचिपस्तथा ।
 उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाश्रुपस्तथा ॥ ४ ॥

वैवस्वतश्च मो विप्रा साम्प्रत मनुबुध्यते ।
 सावार्णिश्च मनुस्तद्वद्रेभ्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥
 तथैव मेरुसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता ।
 अतीता घर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा ॥ ६ ॥
 कीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवैते यथाश्रुता ।
 श्रृषींस्त्वेया प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा ॥ ७ ॥
 मरीचिरत्रिभ्रगवानङ्गिरा पुलह व्रतु ।
 पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥ ८ ॥
 उत्तरस्या दिशि तथा द्विजा सप्तर्षयस्तथा ।
 आग्निधन्वाग्निवाहुश्च मेभ्यो मेधातिथिर्वसु ॥ ९ ॥
 ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हय सवल पुत्रसङ्गफ ।
 मनो स्वायभुवस्यैते दश पुत्रा महोजस ॥ १० ॥
 एतद्द्वै प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहनम् ।
 उष्यो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्य फण्यप एव च ॥ ११ ॥
 प्राणो वृहस्पतिश्चैव दत्तोऽग्निश्च्यवनस्तथा ।
 एते महर्षयो विप्रा वायुश्रोता महाव्रता ॥ १२ ॥
 देवाश्च तुपिता नाम स्मृता स्यारोचिषेऽन्तरे ।
 हविन्न सुश्रुतिर्षोतिरापोमूर्त्तिरपि स्मृत ॥ १३ ॥
 प्रतीतश्च ममम्यश्च मम उर्भ्रग्तथैव च ।
 स्यारोचिषस्य पुत्रास्ते भनाविप्रा महारमन ॥ १४ ॥
 कीर्त्तिता वृषिर्षोपाला महार्षोष्योपरात्रमा ।
 द्वितीयांलकगिर्त्त विप्रा मन्वन्तर मया ॥ १५ ॥

धैवस्वतश्च भो विशा साग्रत मनुह्यते ।
 सावार्णिश्च मनुस्तद्वद्रेभ्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥
 तथैव मेरुसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता ।
 धर्ताता धर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा ॥ ६ ॥
 फीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवैते यथाश्रुता ।
 श्रुयींस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा ॥ ७ ॥
 मरीचिरश्रिमंगषानङ्गिरा पुत्रद्व मनु ।
 पुत्रस्यश्च वशिष्ठस्य सप्तैते ब्रह्मण सुता ॥ ८ ॥
 उत्तरम्या दिशि तथा द्विजा सप्तपदस्तथा ।
 धाग्निध्रन्वाग्निषाद्दुश्च मेध्यो मेधातिथिर्यसु ॥ ९ ॥
 ज्योतिष्मान्दुतिमानाश्च सयत् पुत्रमशफ ।
 मनो म्यायभुवर्षैते दश पुत्रा मदीजस ॥ १० ॥

इदं तृतीयं वक्ष्यामि तद्गुं ध्यध्यं द्विजोत्तमाः ।
 वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ १६ ॥
 हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाताः सुनेजसः ।
 ऋपयोऽत्र मया प्रोक्ता कील्यमानान्निबोधत ॥ १७ ॥
 उत्तमेयान्मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान् ।
 इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च ॥ १८ ॥
 शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च ।
 मानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुद्राहृतम् ॥ १९ ॥
 मन्वन्तरं चतुर्थं वः कथयिष्यामि साम्प्रतम् ।
 काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जहूनुर्धाता द्विजोत्तमाः ॥ २० ॥
 कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयो द्विजाः ।
 पुराणे कीर्त्तिताविप्रा पुत्रा पीत्राश्चभोद्विजाः ॥ २१ ॥
 तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरं मनोः ।
 धृतिस्तपस्यः सुतपास्तपोभूतः सनातनः ॥ २२ ॥
 तपोरतिरकल्माषस्तन्यी धन्वी परन्तपः ।
 तामसस्य मनोरंते दश पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ २३ ॥
 वायुप्रोक्ता मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम् ।
 देववाहुर्यदुधश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥ २४ ॥
 हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्ववाहुश्च सोमजः ।
 सत्यनेत्रस्तथात्रेय एने सप्तर्षयोऽपरे ॥ २५ ॥
 देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः स्मृताः ।
 वारिप्लवश्च रैम्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥ २६ ॥

अथ पुत्रानिमास्तस्य बुभुध्वं गदतो मम ।
 धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्वदर्शी निरुत्सुक ॥ २७ ॥
 आरण्यश्च प्रकाशश्च निम्माह सत्यवाक्कृती ।
 रैघतस्य मनो पुत्रा पञ्चम चैतदन्तरम् ॥ २८ ॥
 पठ तु सम्प्रवक्ष्यामि तद्बुभुध्वं द्विजोत्तमा ।
 भृगुर्नभो विषखाश्च सुधामा विरजास्तथा ॥ २९ ॥
 अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैने च महर्षय ।
 चाश्रुपस्यान्तरे विप्रा मनोर्देवास्त्वमे स्मृता ॥ ३० ॥
 अप्रसूताश्च ऋषयः * पृथक्त्वेन दिवोकस ।
 लेखाश्च नामतो विप्रा पञ्च देवगणा स्मृता ॥ ३१ ॥
 ऋषेरङ्गिरस पुत्रा महात्मानो महौजस ।
 नाडचलेषा मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विश्रुता ॥ ३२ ॥
 रुद्रप्रभृतयो विप्राश्चाश्रुपस्यान्तरे मनो ।
 पठ मन्वन्तर प्रोक्त सप्तम तु निबोधत ॥ ३३ ॥
 अत्रिर्घसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषि ।
 गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ ३४ ॥
 तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मन ।
 सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रत दिवि ॥ ३५ ॥
 साध्या रुद्राश्च विश्वे च घसवो मरुतस्तथा ।
 आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवो वैवस्वतोऽम्भृतौ ॥ ३६ ॥

* “भायाल प्रयिता स्ते वै” क्वचिदेव पाठः ।

मनोर्व्यवस्यतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ।
 इदं प्राप्नुवन्मुखाश्चैव दश पुत्रा महान्मन ॥ ३७ ॥
 एतेषा कीर्त्तितानान्तु महर्षीणा महौजसाम् ।
 तेषापुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सत्र्यासु भो द्विजा ॥ ३८ ॥
 मन्वन्तरेषु सत्र्येषु प्रागासन् सप्त सप्तका ।
 लोके धर्मयवम्यार्यं लोकमरक्षणाय च ॥ ३९ ॥
 मन्वन्तरे यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणा ।
 कृत्वा कर्म दित्र यान्ति ब्रह्म लोकमनामयम् ॥ ४० ॥
 ततोऽन्ये तपसा युक्ता म्यान तत्पूरयन्त्युत ।
 अतीता वर्त्तमानाश्च क्रमेणैतेन भो द्विजा ॥ ४१ ॥
 अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षय ।
 मनोरन्तरमासात्र सावर्णम्येह भो द्विजा ॥ ४२ ॥
 रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो गृध्रुता ।
 भारद्वाजस्तथा द्रौणिष्ठवयामा महायुति ॥ ४३ ॥
 गौतमश्चाजराश्चैव शरद्धान्नाम गौतमः ।
 कौशिको गालवश्चैव अर्य्य काश्यप एव च ॥ ४४ ॥
 एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा ।
 चेरो चैवात्र्यरीवांश्च शमनो धृतिमान् वसु ॥ ४५ ॥
 आरिष्ट्याप्यधृष्ट्या च वाजी सुमतिरेव च ।
 सावर्णस्य मनो पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमाः ॥ ४६ ॥
 एतेषा कत्यमुत्याय कीर्त्तनान् सुखमेधने ।
 यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्माश्च भवेन्नरः ॥ ४७ ॥

एतान्धुक्कानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः ।
 मन्यन्तराणि संक्षेपाच्छृणुनानागतान्यपि ॥ ४८ ॥
 सावर्णा मनवो विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत ।
 एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥ ४९ ॥
 परमेष्ठितुता विप्रा मेरुसावर्ण्यतां गताः ।
 दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियात्यास्तनया नृपाः ॥ ५० ॥
 महता तपसा युक्त्वा मेरुपृष्ठे महौजसः ।
 रुचेः प्रजापतेःपुत्रो रौच्यो नाम मनुःस्मृतः ॥ ५१ ॥
 भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ।
 अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥ ५२ ॥
 तैरियं पृथिवी सध्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
 पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥
 प्रजापति (ते) श्च तपसा संहारं तेषु नित्यशः ।
 युगानि सप्ततिस्तानि साप्राणि कथितानि च ॥ ५४ ॥
 वृत्तत्रेतादियुक्कानि मनोरन्तरमुच्यते ।
 चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥ ५५ ॥
 वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।
 प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम् ॥ ५६ ॥
 मन्यन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः ।
 न शक्यतेऽन्तस्तेषां धै धक्तुं घर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥
 विसर्गस्य प्रजानां धै संहारस्य च भो द्विजाः ।
 मन्यन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते द्विजसत्तमाः ॥ ५८ ॥

सशेषाम्बत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह ।
 तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ ५६ ॥
 पूर्णं युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ।
 तत्र भूतानि सर्व्याणि दग्धान्यादित्यगर्भिमभिः ॥ ६० ॥
 ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्जिताः ।
 प्रविशन्ति सुगन्धेष्टं हरितारायणं प्रभुम् ॥ ६१ ॥
 स्रष्टारं सर्व्यभूतानां कल्पान्तेषु पुन पुनः ।
 अद्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्व्यमिदं जगत् ॥
 अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि मनोर्ध्वम्वनस्य वै ।
 विसर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतन्तु महाद्युतेः ॥ ६३ ॥
 अत्र वंशं प्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ।
 यत्रोत्पन्नो महान्मास हरिर्बृष्णिकुले प्रभुः ॥ ६४ ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तनं नाम
 पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पण्डोऽध्यायः ।

आदित्योत्पत्ति कथनम्

लोमहर्षण उवाच ।

विचस्वान् कश्यपाञ्जज्ञे दाक्षायण्या द्विजोत्तमा ।
तस्य भार्याभवत्सज्ञा त्वाप्त्री देवी विचस्वत ॥ १ ॥
सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी ।
सावै भार्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मन ॥ २ ॥
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ।
सज्ञा नाम सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता ॥ ३ ॥
आदित्यस्य हि तद्रूप मण्डलस्य सुनेजसा ।
गात्रेषु परिदग्ध वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ४ ॥
न खवय मृतोऽण्डस्य इति स्नेहाद्भाषत ।
अजानन् कश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते ॥ ५ ॥
तेजस्वन्यधिक तस्य नित्यमेव विचश्रत ।
येनातितापयामास श्रीं ह्योकान् कश्यपात्मज ॥ ६ ॥
श्रीण्यपत्यानि भो विप्रा सज्ञायात्तपता धर
आदित्यो जनयामास कन्या द्वौ च प्रजापती ॥ ७ ॥
मनुर्वैवस्यत पूर्यं धाद्देव प्रजापति ।
यमश्च यमुना चैव यमर्जो सम्यभूषतु ॥ ८ ॥

श्यामवर्णन्तु तद्रूप संज्ञा दृष्ट्या विवस्वत ।
 असहन्ती तु स्या छाया सप्रणा निर्म्ममे तत ॥ ९ ॥
 मायामयी तु सा सज्ञा तस्या छायासमुत्थिताम् ।
 प्राञ्जलि प्रणता भूया छाया सज्ञा द्विजोत्तमा ॥ १० ॥
 उवाच वि मया काव्यं कथयस्य शुचिस्मिने ।
 स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मा धरवर्णिनि ॥ ११ ॥

सज्ञोवाच ।

अह यास्यामि मद्र ने म्यमेव भवन पितु ।
 त्ययैव भवने महा घस्तत्र्य निर्दिशङ्कया ॥ १२ ॥
 एषो न वारुः सौ मरु कल्पार चेर सुप्रगपर ।
 सम्भाज्यास्ने न चाप्येयमिद् भगवते क्वचित् ॥ १३ ॥

सवर्णो वाच ।

आ कचप्रहणाद्दे वि आ शापान्नेव कर्हिचिन् ।
 आप्यास्यामि नमस्तुभ्य गच्छ देवि यथासुप्तम् ॥ १४ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

समादिश्य सवर्णान्तान्तधेत्युक्ता तथा च सा ।
 न्वाट्टु समीपमगमद्दुर्माडितैव तपस्विनी ॥ १५ ॥
 पितु समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा ।
 भक्तु समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनःपुन ॥ १६ ॥
 आगच्छद्गुवडवा भूयाच्छाद्यरूपमनिन्दिता ।
 कुरुन्थोत्तरान् गत्वा तुणान्यथ चचार ह ॥ १७ ॥

द्वितीयायान्तु सज्ञाया सह्येयमिति चिन्तयन् ।
 आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥ १८ ॥
 पूर्वर्जस्य मनोविप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु ।
 मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्णं इति चोच्यते ॥ १९ ॥
 द्वितीयो य सुतस्तस्या स विज्ञेय शनैश्चरः ।
 सज्ञा तु पृथिवी विप्रा म्यस्य पुत्रस्य वै तदा ॥ २० ॥
 चकाराम्यधिष् स्नेह न तथा पूर्वजेषु वै ।
 मनुस्तस्या अक्षम यमन्तस्या न चक्षमे ॥ २१ ॥
 स वै रोषाद्य गान्धाद्य भाषिनोऽर्धम्य घानघ ।
 पदा सन्तर्जयामास सज्ञा घैषम्यतो यम ॥ २२ ॥
 त शशाप तन गोधान् मापर्णजननी तदा ।
 वरण पततामेव तपेति भृशदु पिता ॥ २३ ॥

विषस्वानुवाच

असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ।
 येन त्वामाविशेन् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २८ ॥
 न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातृवचस्तव ।
 कृमयो मांसमादाय यास्यन्त्यवनिमेव च ॥ २९ ॥
 कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति ।
 शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥ ३० ॥
 आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ।
 तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया ॥ ३१ ॥
 सा तन् परिहरन्ती तु नाचक्षे विषस्वते ।
 स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत् ॥ ३२ ॥
 तां शप्तुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः ।
 मूर्द्धजेषु निजप्राह स तु तां मुनिसत्तमाः ॥ ३३ ॥
 ततः सर्वं यथावृत्तमाचक्षे विषस्वते ।
 विषस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात् ॥ ३४ ॥
 दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ।
 निर्दग्धुकामं रोपेण सान्त्वयामास वै तदा ॥ ३५ ॥

त्वष्टोवाच ।

तवातितेजसाधिष्टमिदं रूपं न शोभते ।
 असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले ॥ ३६ ॥
 द्रष्टा हि तां भवानद्य स्यां भार्यां शुभचारिणीम् ।
 श्लाघ्यां योगवलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥ ३७ ॥

अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम सम्मतम् ।
 रूपं निर्वर्त्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम ॥ ३८ ॥
 ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वतः ।
 भ्रमिमारोप्य तत्तेजः सान्त्वयामास भो द्विजाः ॥ ३९ ॥
 ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहतेन वै ।
 कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥ ४० ॥
 ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां चङ्गवां ततः ।
 श्रधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ ४१ ॥
 चङ्गवाचपुपा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम् ।
 सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभाषयत् ॥ ४२ ॥
 मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया ।
 सा तन्निरवमच्छुक्र नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ ४३ ॥
 देवी तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां घरी ।
 नासत्यश्वैव दक्षश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ४४ ॥
 मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ।
 तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ॥ ४५ ॥
 सा तु द्रष्टव्यैष भर्त्तारं तुतोप मुनिसत्तमाः ।
 यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ ४६ ॥
 धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इमाः प्रजाः ।
 स लेभे कर्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः ॥ ४७ ॥
 पितृणामाधिपत्यं स लोकपालत्पमेव च ।
 मनुः प्रजापतिस्त्वर्षात्सापर्णिः स तपोधनाः ॥ ४८ ॥

मायः समागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेऽन्तरे ।

मेरुपृष्ठे तपो त्रिच्यमद्यापि स चरत्युत ॥ ४६ ॥

प्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ।

त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥ ५० ॥

तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तधिकीर्षया ।

यचीयसो तु साप्यासीदुयामी कन्या यशस्विनी ॥ ५१ ॥

अमवच्च सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ।

मनुरित्युच्यते लोके सावर्णं इति चोच्यते ॥ ५२ ॥

द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोभ्राता शनैश्चरः ।

ग्रहत्वं स च लेभे ये सर्व्यलोकाभिपूजितः ॥ ५३ ॥

य इदं जग्म देवानां शृणुयात्तसत्तमः ।

आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्दयशः ॥ ५४ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथनं नाम

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

सूर्यवंश वर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

मनोर्वैचस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः ।

इद्वाकुश्चैव नाभांगौ दृष्टः शर्यातिरेव च ॥ १ ॥

नरिष्यन्तश्च षष्ठो वै प्रांशु रिष्टश्च सप्तमः ।
 करूपश्च पृषधश्च नदैते मुनिसत्तमाः ॥ २ ॥
 अकरोत् पुत्रकामस्तु मнुरिष्टिं प्रजापतिः ।
 मित्रावरुणयोर्विप्राः पूर्वमेव महामतिः ॥ ३ ॥
 अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजाः ।
 तस्यां च वर्त्तमानायामिष्ट्यां च द्विजसत्तमाः ॥ ४ ॥
 मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत् ।
 तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ ५ ॥
 दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः ।
 तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ॥ ६ ॥
 अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
 धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ ७ ॥

इलोवाच ।

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि घदतांवर ।
 तयोः सकाश यास्यामि न मां धर्महतां कुरु ॥ ८ ॥
 सेवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।
 गत्वान्तिकं घरारोहः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इलोवाच ।

अंशेऽस्मि युषयोर्जाता देवो किं करुषानि घाम् ।
 मनुना चाहमुक्ता या अनुगच्छन्त्य मामिति ॥ १० ॥
 तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम् ।
 मित्रद्वयं वरुणश्चोभापूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥

मित्रावरुणावूचतु ।

अनेन तव धर्मेण प्रथयेण दमेन च ।
 सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतो स्यो वरुचर्णिनि ॥ १२ ॥
 आचयोस्त्वं महाभागे ष्यार्ति कन्येति यास्यसि ।
 मनोर्वंशकर पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥ १३ ॥
 सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिभु लोकेषु शोभने ।
 जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशधिवर्द्धन ॥ १४ ॥
 निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥ १५ ॥
 बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ।
 सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्या जज्ञे पुरूरवा ॥ १६ ॥
 जनयित्वा तत सा तमिला सुद्युम्नता गता ।
 सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रय परमधार्मिका ॥ १७ ॥
 उत्कलयन्व गयश्चैव विनताश्वश्व भो द्विजा ।
 उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमा ॥ १८ ॥
 दिक् पूर्वा मुनिशाद्दूला गयस्य तु गया स्मृता ।
 प्रविष्टेषु तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥ १९ ॥
 दशधा तत्पुन क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ।
 इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ २० ॥
 कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैतद्राज्यमवाप्तवान् ।
 बलिष्ठवचनात्त्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मन ॥ २१ ॥
 प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमा ।
 तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्य प्राप्य महायशा ॥ २२ ॥

मानयेयो मुनिश्रेष्ठा स्त्रीपुंसोलक्षणैर्युत ।
 धृतवास्तामिलेत्येव सुद्युम्नेति च विश्रुत ॥ २३ ॥
 नरिष्यन्ता शका पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजा ।
 अम्बरीषोऽभवत् पुत्र पार्थिवर्वभसत्तम ॥ २४ ॥
 धृष्टस्य धार्ष्टिक क्षत्र रणदूप्त यभूव ह ।
 करूपस्य च कारूपा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ॥ २५ ॥
 नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यता गता ।
 प्राशोरेकोऽभवत् पुत्र प्रजापतिरिति स्मृत ॥ २६ ॥
 नरिष्यन्तस्य द यादो राजा दन्तधरो यम ।
 शर्यातेर्मिथुन त्यासादानर्त्तो नाम विश्रुत ॥ २७ ॥
 पुत्र कन्या सुक या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।
 आनर्त्तस्य तु दायादो रैघो नाम महायुति ॥ २८ ॥
 आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली ।
 रैघस्य रैवत पुत्र ककुत्मी नाम धार्मिक ॥ २९ ॥
 ज्येष्ठ पुत्र स तस्यासाद्राऽथ प्राप्य कुशस्थलीम् ।
 स कन्यासहित ध्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ३० ॥
 मुहूर्त्तभूत देवस्य तन्थी ऋदुयुग द्विजा ।
 आजागाम स चैवाथ स्वा पुरा यादवैर्वृताम् ॥ ३१ ॥
 कृता द्वारवाती नाम घट्टुहारा मनोरमाम् ।
 भोजानृष्यन् प्रवैर्गुप्ता वसुदेवपुरोगमे ॥ ३२ ॥
 तत्रैव रैघतो घात्या यथातत्र द्विजोत्तमा ।
 कन्या सा यद्देवाय सुभद्रा नाम रवतीम् ॥ ३३ ॥

दत्त्वा जगाम शिखर मेरोन्तपसि सन्धित ।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहित सुधी ॥ ३४ ॥

मुनय ऊचु ।

कथ ऋदुयुगे काले समताते महामने ।
न जारा रेवतीं प्राप्ता रेवत च ककुद्भुमिनम् ॥ ३५ ॥
मेरु गतस्य वा तस्य शयाते सन्तति कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामपि श्रोतुमिच्छाम तन्वत ॥ ३६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

न जारा श्रुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमा ।
ऋतुचक्र प्रभवति ब्रह्मलोके सदानया ।
ककुद्भुमिन स्वर्लोक तु रेवतम्य गतस्य ह ॥ ३७ ॥
हता पुण्यजनैर्जिंशा राक्षसै सा कुशस्थली ।
तस्य भ्रातृशत त्वासाद्गाम्भिकस्य महात्मन ॥ ३८ ॥
तदुवच्यमान रक्षोभिर्दिश प्राक्त्रामदच्युता ।
विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥ ३९ ॥
बन्धवायस्तु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमा ।
तेषा ह्येते मुनिश्रेष्ठा शर्याता इति विधुता ॥ ४० ॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिशु सर्वासु विधुता ।
सर्वश सर्व्यगहन प्रविष्टास्ते मर्होजस ॥ ४१ ॥
नाभागरिष्टपुत्री ह्यौ वैश्या ब्राह्मणता गर्ता ।
करुपस्य तु कारुपा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ॥ ४२ ॥

पृषधो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः ।
 शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवेते परिकीर्त्तिताः ॥ ४३ ॥
 वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्यं मुनिसत्तमाः ।
 क्षुधतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥ ४४ ॥
 तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ।
 तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ॥ ४५ ॥
 प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ।
 शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः ॥ ४६ ॥
 उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः ।
 चत्वारिंशद्शाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि ॥ ४७ ॥
 घशातिप्रमुखाधान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः ।
 इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिघा भृशकायामथादिशत् ॥ ४८ ॥
 मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ।
 श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टे अरुने श्राद्धकर्मणि ॥ ४९ ॥
 भक्षयित्वा शशां विप्रा शशादो मृगयां गतः ।
 इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो घसिष्ठरचनात् प्रभुः ॥ ५० ॥
 इक्ष्वाको संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत् ।
 शशादस्य तु दायादः फकुत्स्थो नाम पीर्यवान् ॥ ५१ ॥
 अनेनास्तु फकुत्स्थस्य पृषुधानेनसः स्मृतः ।
 पिष्टरावः पृषोः पुत्रस्तस्माद्भार्द्रस्त्वजावत् ॥ ५२ ॥
 भार्द्रस्य पुपनाभ्यस्तु धायस्तस्तत्सुतो द्विजाः ।
 जडे धायस्तको राजा धायस्ती येन निर्गमता ॥ ५३ ॥

श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपति ।

कुवलाश्व सुतस्तस्य राजा परमधार्मिक ॥ ५४ ॥

य स घुन्धुवघाद्राजा घुन्धुमारत्वमागत ॥ ५५ ॥

मुनय ऊचुः ।

घुन्धोर्वर्ध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वत ।

यद्वधारकुवलाश्वोऽसौ घुन्धुमारत्वमागत ॥ ५६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

कुवलाश्वस्य पुत्राणा शतमुत्तमत्रन्विताम् ।

सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥ ५७ ॥

बभूवुर्धार्मिका सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणा ।

कुवलाश्व पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयन् ॥ ५८ ॥

पुत्रसक्रामितश्रीन्तु धन राजा विदेश ह ।

तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिं प्रयान्त प्रन्यचारयत् ॥ ५९ ॥

उत्तङ्क उवाच ।

भवता रक्षण कार्यं तच्च कर्तुं त्वमईसि ।

निरुद्विग्नस्तपश्चतुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ ६० ॥

ममाश्रमसर्मापे वै समेषु मरुधन्वसु ।

समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृत ॥ ६१ ॥

देवतानामग्रथ्यश्च महाकायो महाबल ।

अन्तर्मूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान् ॥ ६२ ॥

राक्षसस्य मघो पुत्रो घुन्धुर्नाम महासुर ।

शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ६३ ॥

सवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वास विमुष्णति ।

यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप ॥ ६४ ॥

तस्य निश्वासघातेन रज उद्भयते महत् ।

आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥ ६५ ॥

सविस्फुलिङ्ग साङ्गार मधुममतिदारुणम् ।

तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातु स्व आश्रमे ॥ ६६ ॥

त मारय महाकाय लोकाना हितकाम्यया ।

लोका स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥ ६७ ॥

त्व हि तस्य घघायैक समर्थ पृथिवीपते ।

विष्णुना च वरो दत्तो मह्य पूर्वयुगे नृप ॥ ६८ ॥

यस्त महासुर रौद्र हनिष्यति महाबलम् ।

तस्य त्व घरदानेन तेजश्चाख्यापयिष्यसि ॥ ६९ ॥

न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसात्पेन शक्यते ।

निर्दग्धु पृथिवीपाल निर युगशतैरपि ॥ ७० ॥

घार्य्यश्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ।

स पवमुक्तो राजर्षिस्तडकेन महात्मना ।

कुचलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवर्हणे ॥ ७१ ॥

बृहदश्व उवाच ।

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम ।

भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥ ७२ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

स त व्यादिश्य सनय राजर्षिर्धुन्धुमारणे ।

जगाम पर्य्यतायैघ नृपति सशितयत ॥ ७३ ॥

कुचलायन्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजा ।
 प्रायादुत्तदृक्मदितो धुन्वोन्मस्य निरर्दणे ॥ ७३ ॥
 तमाविशत्तदा विष्णुस्नेत्रसा मगवान् प्रभु ।
 उत्तदृक्मस्य त्रियोगाढै लोकाणा दितकाम्यया ॥ ७५ ॥
 तस्मिन् प्रयाते दुर्दरे दिवि शब्दो महानभूत् ।
 एष श्रीमानरथोऽय धुन्धुमार्गे भविष्यति ॥ ७६ ॥
 दिव्यैर्गन्धैश्च मान्यैश्च त देवा समवाकिरन् ।
 देवदुन्दुमयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमा ॥ ७७ ॥
 स गत्वा जयता श्रेष्ठस्तनयै सह धीर्यवान् ।
 समुद्रं गानयामास बालुकान्तरमग्रयम् ॥ ७८ ॥
 तस्य पुत्रे घनद्विध बालुकान्तर्दितस्तदा ।
 धुन्पुरासादितो विषा दिशमावृण्य पश्चिमाम् ॥ ७९ ॥
 सुपत्रेनाग्निना क्रोधाद्भोकानुद्रुत्तंयन्निव ।
 धारि मुन्नाद्य वेगेन महोदधिरिधोदये ॥ ८० ॥
 सोमस्य मुनिशादृङ्गला घरोर्मिकलिलो महान् ।
 तस्य पुत्रशत दग्ध त्रिमिरुनन्तु रक्षसा ॥ ८१ ॥
 तत स राजा द्युतिमान् राक्षसं त महाबलम् ।
 धामसाद् महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनम् ॥ ८२ ॥
 तस्य धारिमयं वेगमापीय स नराधिप ।
 योगो योगेन वह्निञ्च शमयामास धारिणा ॥ ८३ ॥
 निहत्य त महाकाय बलेनोदकराक्षसम् ।
 वत्तदृक् दर्शयामास वृत्तकर्मा नराधिपम् ॥ ८४ ॥

उक्तङ्कस्य घरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ।
 ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥ ८५ ॥
 धर्मं रतिञ्च सततं स्वर्गं वासं तथाक्षयम् ।
 पुत्राणां चाक्षयल्लोकान् स्वर्गं ये रक्षसा हताः ॥ ८६ ॥
 तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
 चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ ॥ ८७ ॥
 घौन्धुमारैर्दृढाश्वस्य हर्ष्यश्वश्चात्मजः स्मृतः ।
 हर्ष्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ ८८ ॥
 संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः ।
 अट्टाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः ॥ ८९ ॥
 तस्य हैमवतो कन्या स तां मत्वा दृपद्वती ।
 विषयाता त्रिषु लोकेषु पुत्रभ्रात्र्याः प्रसेनजित् ॥ ९० ॥
 लेभे प्रसेनजिद्वाप्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।
 अमिरास्ता तु सा भर्त्रा नदी घे बाहुदामवत् ॥ ९१ ॥
 तस्य पुत्रो महानासीद्युषनाश्वो नराधिपः ।
 मान्धाता युषनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥ ९२ ॥
 तस्य चैत्ररथी भाष्या शशविन्दोः सुतामवत् ।
 साध्यो विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ ९३ ॥
 पतिव्रता च ज्येष्ठा च घामृणामयुताय वै ।
 तरयामुत्पादयामास मान्धाता ह्यौ सुतौ द्विजाः ॥ ९४ ॥
 पुण्ड्रसञ्ज धर्मज्ञं मुचुकुन्दञ्च पार्ष्णिपम् ।
 पुण्ड्रसुतसुतान्यासीत्प्रसदस्युर्महोपतिः ॥ ९५ ॥

नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भृतस्तस्य चात्मजः ।
 सम्भृतस्य तु दायादस्त्रिघ्न्या रिपुमर्द्दनः ॥ ६६ ॥
 राहस्त्रिघ्न्यनस्त्वासीद्विद्धांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ।
 तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ॥ ६७ ॥
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ।
 येन भार्या कृतोद्वाहा हता चैव परस्य ह ॥ ६८ ॥
 बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च ।
 जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः ॥ ६९ ॥
 अघर्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारुणोऽत्यजन् ।
 अपर्ध्यंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः ॥ १०० ॥
 सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तं क्व गच्छामीति यै मुहुः ।
 पिता च तमथोवाच श्वपार्त्तः सह घर्त्तय ॥ १०१ ॥
 नाहं पुत्रेण पुत्रार्थो त्वयाद्य कुलपांसन ।
 इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितुः ॥ १०२ ॥
 न च तं धारयामास घसिष्ठो भगवानृषिः ।
 स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके ॥ १०३ ॥
 पित्रा त्यक्तोऽवसद्दीरः पिताप्यस्य घनं ययौ ।
 ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः ॥ १०४ ॥
 समा द्वादश भो विप्रास्तेनाघर्मणेन धै तदा ।
 दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ १०५ ॥
 संन्यम्य सागरास्ते तु चकार विपुलं तपः ।
 तस्य पत्नी गले वद्ध्वा मध्यमं पुमत्रोरसम् ॥ १०६ ॥

शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गुणशतेन वै ।
 तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः ॥ १०७ ॥
 महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः ।
 सत्यव्रतो महाबाहुर्मरणं तस्य चाकरोत् ॥ १०८ ॥
 विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ।
 सोऽभवद्गालवो नाम गले घन्धान्महातपाः ॥ १०९ ॥
 महर्षिः कौशिको धीमांस्नेन वीरेण मोक्षितः ।
 इति श्रीब्राह्मो महापुराणे सूर्यवंशानिरूपणं नाम
 सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

— —

अष्टमोऽध्यायः ।

सूर्यवंश वर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
 विश्वामिकलत्रं तु यभार विनये स्थितः ॥ १ ॥
 हृत्वा मृगान् पराहांश्च महिषांश्च घनेचरान् ।
 विश्वामित्राश्रमाभ्यास्ते मांसं घृक्षे घघन्ध च ॥ २ ॥
 उपांशुप्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
 पितृनिषोतादयसत्तस्मिन् घनगते नृपे ॥ ३ ॥

अयोध्या चैव राज्यं च तथैवान्त पुरं मुनिः
 याज्योपाध्यायमंयोगाद्बसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४ ॥
 सत्यव्रतस्तु शाल्याश्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
 बसिष्ठेऽभ्यगिकं मन्युं धारयायास नित्यशः ॥ ५ ॥
 पित्रा हि त तदा राष्ट्रास्यज्यमानं प्रिय सुतम् ।
 निवारयामास मुनिर्यहुना कारणेन च ॥ ६ ॥
 पाणिप्रहणमन्त्राणां निष्ठा म्यात् सप्तमे पदे ॥ ७ ॥
 न च सत्यव्रतस्तस्माद्गतवान् सप्तमे पदे ॥
 जानन् धर्मंबसिष्ठस्तु न मां व्रातीति भो द्विजाः ।
 सत्यव्रतस्तदा रोषं बसिष्ठे मनसाकरोत् ॥ ८ ॥
 गुणबुद्ध्या तु भगवान् बसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
 न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥
 तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मन ।
 तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥ १० ॥
 तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
 कुलस्थ निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ११ ॥
 न तं बसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यधारयत् ।
 अमिपेक्ष्याम्यहं पुत्रमम्येत्येवंमतिर्मुनिः ॥ १२ ॥
 स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहदृथली ।
 अविद्यमाने मांसे तु बसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
 सर्व्वकामदुघां दोग् धो स ददर्श नृपात्मजः ।
 तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाश्चैव क्षुधान्वितः ॥ १४ ॥

देशधर्मगतो राजा जघान मुनिसत्तमा ।

तन्मास स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥ १५ ॥

भोजयामास तच्छ्रुत्वा घसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ॥ १६ ॥

घसिष्ठ उवाच ।

पातयेयमहं क्रूरं तव शङ्कुमसशयम् ।

यदि ते द्वाविमौ शङ्कु न स्याता वै कृतौ पुन ॥ १७ ॥

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्धीवधेन च ।

आप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम ॥ १८ ॥

एव त्रीण्यस्य शङ्कुनि तानि दृष्ट्वा महातपा ।

त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृत ॥ १९ ॥

विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम् ।

तेन तस्मै धरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कुवे ॥ २० ॥

छन्द्यमानो घरेणाय धरं घत्रे नृपात्मज ।

सशरीरो ब्रजे स्वर्गमिन्येव यान्वितो धर ॥ २१ ॥

अनावृष्टिमये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ।

पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्ष्विणम् ॥ २२ ॥

मिषता देवतानां च घसिष्ठस्य च कौशिक ।

दिग्मारोपयामास सशरीरं महातपा ॥ २३ ॥

तस्य सत्यरथा नाम पद्मा षैशेयवशात् ।

कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ २४ ॥

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्यैशङ्कु इति स्मृत ।

आदत्तां राजसूयस्य सघ्राडिति ह विभ्रुत ॥ २५ ॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिव ।
 हरितो रोहितस्याथ चभुर्हारित उच्यते ॥ २६ ॥
 विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुपुत्रो यमूष ह ।
 जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृत ॥ २७ ॥
 रुक्कस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोचिद्र ।
 रुक्कस्य वृक पुत्रो वृकाद्वाहुस्तु जज्ञियान् ॥ २८ ॥
 हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नपम् ।
 तत्पत्नी गर्भमादाय ऊर्ध्वस्थाश्रममाचिशत् ॥ २९ ॥
 नात्यर्थं धार्मिकश्चैव स हि धर्मयुगेऽभवत् ।
 सगरस्तु सुतो याहोर्यत्रे सह गरेण वै ॥ ३० ॥
 ऊर्ध्वस्थाश्रममासाद्य भार्गवेणामिरक्षित ।
 आनेयमस्त्र लभ्यते च भार्गवात् सगरो नप ॥ ३१ ॥
 जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ।
 शकाना पङ्कजाना च धर्मं निरसदच्युत ।
 क्षत्रियाणा मुनिश्रेष्ठा पारदाना च धर्मवित् ॥ ३२ ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं स सगरो जाता गरेणैव सहाच्युत ।
 किमर्थं च शकादीना क्षत्रियाणा महोजसाम् ॥ ३३ ॥
 धर्मान्कलोन्वितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युत ।
 एतन्न सर्व्वमाचदय विस्तरेण महामने ॥ ३४ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

याहोर्यसन्ति पूष्यं हत राज्यमभून् किञ्च ।
 हैहयेस्तालजङ्घैश्च शकै साद्धं द्विजोत्तमा ॥ ३५ ॥

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्नवास्तथा ।
 एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्थं पराक्रमम् ॥ ३६ ॥
 हतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।
 पत्न्या चानुगतो दु खी तत्र प्राणानयासृजत् ॥ ३७ ॥
 पत्नी तु यादधी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।
 सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्त पूर्व्व किलानघाः ॥ ३८ ॥
 सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा घने तामभ्यरोहत ।
 ऊर्ध्वस्तां भार्गवो विप्राः कारुण्यात् समवारयत् ॥ ३९ ॥
 तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाच्युतः ।
 व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः ॥ ४० ॥
 ऊर्ध्वस्तु जातकर्मादींस्तस्य कृत्वा महात्मनः ।
 अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्र प्रत्यपादयत् ॥ ४१ ॥
 आग्नेयं तु महाभागो अमरैरपि दु सहम् ।
 स तेनास्त्रवलेनाजौ धलेन च समन्वितः ॥ ४२ ॥
 हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रद्रः पशूनिव ।
 आजहार च लोकेषु कीर्त्तिं कीर्त्तिमतां धरः ॥ ४३ ॥
 ततः शकांश्च यवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ।
 पह्नवांश्चैव नि शेषान् कर्त्तुं व्यपसितो नृप ॥ ४४ ॥
 ते मध्यमाना घोरैण सगरेण महात्मना ।
 पसिष्ठ शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनोविणम् ॥ ४५ ॥
 पसिष्ठस्त्यधतान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ।
 सगरं पारयामास तेषां दत्याभयं तदा ॥ ४६ ॥

सगरः स्यां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च ।
 धर्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह ॥ ४७ ॥
 अहं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ।
 यवनानां शिर सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ ४८ ॥
 पारदा मुक्तकेशाश्च पहनचाः श्मश्रुधारिणः ।
 निःस्वाध्यायवश्ट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ ४९ ॥
 शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः ।
 कोणिसर्पा माहिषका दूर्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥ ५० ॥
 सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषा निराकृतः
 घसिष्ठवचनाद्राज्ञा सगरेण महात्मना ॥ ५१ ॥
 स धर्मविजयी राजा विजित्येमां घसुन्धराम् ।
 अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ ५२ ॥
 तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे ।
 वेलासमीपेऽपहतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ ५३ ॥
 स त देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः ।
 आसेदुस्तु तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ ५४ ॥
 तमाद्रिपुरुषं देव हरिं कृष्णं प्रजापतिम् ।
 विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्त पुरुषं तदा ॥ ५५ ॥
 तस्य चक्षुःसमुन्धेन तेजसा प्रतियुध्यतः ।
 दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्वयशेषिताः ॥ ५६ ॥
 यद्विकेतुः सुकेतुश्च तथा घर्मरथो नृपः ।
 शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः ॥ ५७ ॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् ।
 अक्षय वशमिक्ष्वाको कीर्त्ति चाप्यनिवर्त्तिनोम् ॥ ५८ ॥
 पुत्र समुद्र च विभु स्वर्गे वास तथाक्षयम् ।
 समुद्रश्चार्य्यमादाय वचन्दे त महोपतिम् ॥ ५९ ॥
 सागरत्व च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह ।
 त्वञ्चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रादुपलब्धवान् ॥ ६० ॥
 आजहाराश्वमेधाना शत स सुमहातपा ।
 पुत्राणा च सहस्राणि पण्डितस्तस्येति न श्रुतम् ॥ ६१ ॥

मुनय ऊचु ।

सगरास्यात्मजा घीरा कथ जाता महाबला ।
 विक्रान्ता पण्डिसाहस्रा विधिना केन सत्तम ॥ ६२ ॥
 लोमहर्षण उवाच ।

द्वे भार्य्ये सगरस्यास्ता तपसा दग्धकिल्बिषे ।
 ज्येष्ठा चिदर्भदुहिता केशिनी नाम नामत ॥ ६३ ॥
 कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्मिणी ।
 अरिप्रनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ६४ ॥
 ऊर्ध्वस्नाभ्या वर प्रादात्तदुभयध्व द्विजोत्तमा ।
 पण्डि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥ ६५ ॥
 एक वशधर त्वेका यथेष्ट परयत्विति ।
 तत्रैका जगृहे पुत्रान् पण्डिसाहस्रसम्मितान् ॥ ६६ ॥
 एक वशधर त्वेका तथेत्याह ततो मुनि ।
 राजा पञ्चजनो नाम धर्म स महायुति ॥ ६७ ॥

इतरा सुपुत्रे तुभ्यीं वीजपूर्णामिति श्रुतिः ।
 तत्र पष्टिसहस्राणि गर्मास्ने तिलमम्मिनाः ॥ ६८ ॥
 घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्माग्निदग्धे ततः ॥ ६९ ॥
 धार्वाग्धैकैरुश प्रादात्तावती पोषणे नृपः ।
 ततो दशमु मासेषु समुत्तस्युर्यथाक्रमम् ॥ ७० ॥
 कुमारस्ने यथाकाल मगर्यीतिवर्जनाः ।
 पष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥ ७१ ॥
 गर्माद्वलानुम-याडै जातानि पृथिवीपते ।
 तेषां नागायणं नेत्र प्रविष्टाना महात्मनाम् ॥ ७२ ॥
 एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ।
 शूरः पञ्चजनस्यार्सादंशुमाक्षाम वीर्यवान् ॥ ७३ ॥
 दिलीपस्तस्य तनय सद्वाङ्ग इति विश्रुतः ।
 येन स्वर्गादिहागन्ध मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ॥ ७४ ॥
 त्रयोऽभिमन्विता लोका बुद्धया सन्धेन चानगाः ।
 दिलीपस्य तु दायादो महापतिर्भगवन् ॥ ७५ ॥
 यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभु ।
 समुद्रमानस्यैना दुहितृन्नेऽप्यकन्ययन् ॥ ७६ ॥
 तस्माद्वागीर्या गङ्गा कथ्यते वशचिन्तकैः ।
 भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिचिन्नुत ७७ ॥
 नामागन्धु ध्रुवशर्सान् पुत्रः परमशक्तिश्च ।
 अम्यरीषम्नु नामागिः सिन्धुद्वारनिद्रान्द्र ॥ ७८ ॥

अयुताजित्तु दायाद सिन्धुद्रोपस्य वीर्यवान् ।
 अयुताजित्सुतस्त्वासीद्वतुपर्णो महायशा ॥ ७६ ॥
 दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसरो वली ।
 ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्त्तपर्णिर्महायशा ॥ ८० ॥
 सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् ।
 सुदासस्य सुत प्रोक सौगसो नाम पार्थिव ॥ ८१ ॥
 रयात कल्माषपादो वै राजा मिश्रसहोऽभवत् ।
 कल्माषपादस्य सुत सन्धकर्मति विश्रुत ॥ ८२ ॥
 अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुत सर्वकर्मण ।
 अनरण्यसुतो निष्नो निष्नोतो द्वौ घभूयतु ॥ ८३ ॥

क्षेमधन्वसुतरखासीद्देवानीकः प्रतापवान् ।
 आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥ ६० ॥
 अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
 सुधन्वनः सुनश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥ ६१ ॥
 उक्थो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह ।
 यज्ञनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥ ६२ ॥
 नलो ह्यप्येव विख्यातो पुराणे मुनिसत्तमाः ।
 वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्याकुमुलोद्बहः ॥ ६३ ॥
 इक्ष्वाकुवशप्रमथा. प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ।
 एते विवस्वतो वशे राजानो भूरितेजसः ॥ ६४ ॥
 पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
 श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदम्य च ।
 प्रजाधानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥ ६५ ॥
 इति श्रीब्राह्म महापुराणे आदित्यवशानुकीर्त्तनं
 नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्मुहुः ।
 नैव व्यसर्ज्जयत्तारां तस्माद्भाङ्गिरसे तदा ॥ २० ॥
 उशना तस्य जग्राह पार्थिणमाङ्गिरसस्तथा ।
 रुद्रश्च पार्थिणं जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः ॥ २१ ॥
 तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना ।
 उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशित यशः ॥ २२ ॥
 तत्र तद्गुह्यमभवत् प्रख्यात तारकामयम् ।
 देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकर महत् ॥ २३ ॥
 तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुपेताश्चैव ये द्विजाः ।
 ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥ २४ ॥
 तदा निवार्योशनसं त वै रुद्रञ्च शङ्करम् ।
 ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥ २५ ॥
 तामन्त'प्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः ।
 मदीयायां न ते योनीं गर्भो धार्य्यः कथञ्चन ॥ २६ ॥
 श्यीकास्तम्यमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह ।
 जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥ २७ ॥
 ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः ।
 सत्यं व्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥ २८ ॥
 पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल ।
 तदा तां शप्नुमारब्ध कुमारी दस्युहन्तमः ॥ २९ ॥
 तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ।
 यदत्र तर्ह्यं तद्गुह्यं हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥ ३० ॥

उवाच प्राञ्जलि सा तसोमस्येति पितामहम् ।
 तदा त मूर्ध्निचात्राय सोमो राजा सुतप्रति ॥ ३१ ॥
 बुध इत्यकरोत्ताम तस्य बालस्य धीमत ।
 प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुध ॥ ३२ ॥
 उत्पादयामास तदा पुत्र वै राजपुत्रिकाम् ।
 तस्यापत्य महातेजा उभूरैल पुरूरवा ॥ ३३ ॥
 उर्वश्या जज्ञिरे यस्य पुत्रा सप्त महात्मन
 एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तित कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥ ३४ ॥
 वशमस्य मुनिश्रेष्ठा कीर्त्त्यमान निबोधत ।
 धन्यमायुष्यमारोग्य पुण्य सङ्कटपसाधनम् ॥ ३५ ॥
 सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथन नाम
 त्रयोविंशोऽध्याय ॥ ६ ॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्र पुरूरवा ।
 तेजस्वो दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥ १ ॥
 ब्रह्मवादी पराक्रान्त शत्रुभिर्युधि दुर्दम ।
 आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपति ॥ २ ॥

सत्यवादीं पुण्यमतिः सम्यक् सवृत्तमैधुनः ।
 अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः सदा ॥ ३ ॥
 तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।
 उर्व्वशी धर्यामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥ ४ ॥
 तथा सहायसद्राजा दश वर्षं पञ्च च ।
 पट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भो द्विजाः ॥ ५ ॥
 घने चैत्ररथे रथे तथा मन्दाकिनीतटे ।
 यलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥
 उत्तरान् न पुरुन् प्राप्य मनोरमफल्द्रुमान् ।
 गन्धमादनपादेषु मेघट्टे तपोत्तरे ॥ ७ ॥
 पत्नेषु पत्नमूष्येषु सुरैरान्वृत्तिसु च ।
 उर्व्वंश्या सहितो राजा मेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥
 देवो पुण्यतमो घैष महर्षिभिरभिष्टुते ।
 राज्यं न कारयामास प्रयागे पृथिवीपति ॥ ९ ॥
 एषमग्रभाषो राजासीद्विलम्बु नरसत्तम ॥ १० ॥ *

श्लोमहर्षेण उपान

पेत्रपुत्रा यभ्युत्तने स्वप्न देवसुतोत्तमाः ।
 गन्धर्व्व्यंशोके विदिता आगुर्धोमानमावसुः ॥ ११ ॥
 विश्वागुश्चैव धर्मात्मा धृतागुश्च तथापरः ।
 दृढागुश्च यथागुश्च ब्रह्मागुश्चोर्ष्वशीगुताः ॥ १२ ॥

* इति वरं "उत्तरे जाह्नवी तीरे प्रतिष्ठाने महापरा" इति पञ्चाधं ब्रविदधिचं लक्ष्यते ।

अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट् ।
 श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रमः ॥ १३ ॥
 विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ।
 सुहोत्रस्याभवज्जहनुः केशिन्या गर्भसम्भवः ॥ १४ ॥
 आजहे यो महन् सत्रं सर्गमैध महामराम् ।
 पतिलोभेन य गङ्गा पतिन्नेन नसार ह ॥ १५ ॥
 नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद ।
 स तथा प्लावितं दृष्ट्वा यजवाटं समन्ततः ॥ १६ ॥
 सौहोत्रिरशपद्गङ्गा क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा ।
 एष ते विफल यत्नं पित्रन्मम करोम्यहम् ॥ १७ ॥
 अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ।
 जह्नुराजर्षिणा पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः ॥ १८ ॥
 उपनिग्युर्महामागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।
 युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत् ॥ १९ ॥
 युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता ।
 कावेरी सरितां श्रेष्ठां जहोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥ २० ॥
 जह्नुस्तु दयित पुत्रं सुतत्र नाम धार्मिकम् ।
 कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥ २१ ॥
 अजकस्य तु दायादो बलाकाण्डो महीपतिः ।
 बभूव मृगयाशीलः कुशास्तम्यान्मजोऽभवत् ॥ २२ ॥
 कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः ।
 कुशिरुः कुशनामश्च कुशाम्बो मूर्त्तिमांस्तथा ॥ २३ ॥

बह्वै सह सवृद्धो राजा घनचर सदा ।
 कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसम प्रभु ॥ २४ ॥
 लभेयमिति त शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ।
 पूर्णं वर्षसहस्रे वै तत शक्रो ह्यपश्यत ॥ २५ ॥
 अत्युप्रतपस दृष्ट्वा सहस्राक्ष पुरन्दर ।
 समर्थं पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वत ॥ २६ ॥
 पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम ।
 स गाधिरभवद्राजा मयवान् कौशिक स्वयम् ॥ २७ ॥
 पौरकुत्सामघद्वाप्या गाधिस्तस्यामजापत ।
 गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥ २८ ॥
 ता गाधि काश्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभु ।
 तस्या प्रोत स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दन ॥ २९ ॥
 पुत्रार्थं साधयामान चरु गाधेस्तथैव च ।
 उपाचाह्य ता भार्ग्यामृचाको भार्गवस्तदा ॥ ३० ॥
 उपयोज्यध्वरय ह्यया मात्रा स्वथ शुभे ।
 तस्या जतिष्यते पुत्रो दीप्तिमानक्षत्रियवभ ॥ ३१ ॥
 मनेय क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदन ।
 तथापि पुत्र कन्याणि भृतिमन्त तपोधनम् ॥ ३२ ॥
 शमात्मर्षं द्विजध्रेष्ट चरयेष विधाम्यति ।
 एवमुक्त्वा तु तां भार्ग्यामृचाका भृगुनन्दा ॥ ३३ ॥
 तपस्यभिर्गो त्रितयमरण्यं प्रदियेश ह ।
 गाधि वदारन्तु तदा ऋचाकाधममन्यताम् ॥ ३४ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां दृष्टुं नरेश्वरः ।
 चरद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा ॥ ३५ ॥
 चरमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ।
 माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ॥ ३६ ॥
 तस्याश्चरमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ।
 अथ सत्यवती सद्यं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥ ३७ ॥
 धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ।
 तामृचीकस्तनो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥ ३८ ॥
 ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठ स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ।
 मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरव्यत्यासहेतुना ॥ ३९ ॥
 जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ।
 भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ॥ ४० ॥
 विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ।
 एवमुक्त्वा मदाभागा भर्ता सत्यवती तदा ॥ ४१ ॥
 प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् ।
 ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ४२ ॥

ऋचीक उवाच ।

नैव सङ्कल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
 उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्भर्तुश्च कारणात् ॥ ४३ ॥
 पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् ।
 इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथा. किं पुनः सुतम् ॥ ४४ ॥

शमात्मकमृजु त्व मे पुत्र दातुमिहार्हसि ।
 काममेवविध पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥ ४५ ॥
 यद्यन्यथा न शक्य वै कर्तुमेतद्द्विजोत्तम ।
 तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥ ४६ ॥
 पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
 त्वया यथोक्त वचन तथा भद्रे भविष्यति ॥ ४७ ॥
 तत सत्यवती पुत्र जनयामास भार्गवम् ।
 तपस्यभिरत दान्त जमदग्नि शमात्मकम् ॥ ४८ ॥
 भृगोर्जगत्या वशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत ।
 सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥ ४९ ॥
 कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेय महानदी ।
 इद्वाकुचशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिप ॥ ५० ॥
 तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ।
 रेणुकाया तु कामत्या तपोविद्यासमन्वित ॥ ५१ ॥
 भार्चीको जनयामास जामदग्न्य सुदारुणम् ।
 सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठ धनुर्वेदस्य पारगम् ॥ ५२ ॥
 राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिष पावकम् ।
 शौर्यस्यैवमृचीकन्य सत्यवत्या महायशा ॥ ५३ ॥
 जमदग्निस्तपोर्षाट्पाञ्जशे ब्रह्मचिदावर ।
 मध्यमश्च शुन शेष शुन पुच्छ फनिष्ठक ॥ ५४ ॥
 विध्यामित्र तु दायाद् गाधि कुशिकतन्दन ।
 जनयामास पुत्र तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥ ५५ ॥

प्राप्य ब्रह्मर्षिसमता योऽय प्रन्नर्षिता गत ।
 विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृत ॥ ५६ ॥
 जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकोऽष्टशवर्द्धन ।
 विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादय स्मृता ॥ ५७ ॥
 प्रप्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषा नामान्यत परम् ।
 देवरात कतिश्चैव यस्मान् कात्यायना स्मृता ॥ ५८ ॥
 शाश्वत्या हिरण्याश्रो रणुर्जज्ञेऽथ रेणुक ॥ ५९ ॥
 ससृतिर्गात्रश्चैव मुत्तुमश्चैव विभुत ॥
 मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टम ।
 कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुता ॥ ६० ॥
 तेषा व्यातानि गोत्राणि कौशिकाना महात्मनाम् ।
 पाणिनो वन्नवश्चैव ध्याननप्यास्तयैव च ॥ ६१ ॥
 पार्थिवा देवराताश्च शालट्कायनराष्कटा ।
 लोहिता यमदृताश्च तथा काम्यका स्मृता ॥ ६२ ॥
 पौरुषस्य मुनिप्रेष्ठा ब्रह्मर्षे कौशिकस्य च ।
 सग्रन्धोऽप्यस्य यशोऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुत ॥ ६३ ॥
 विश्वामित्रात्मजाना तु शुन शेषोऽग्रन रमत ।
 भार्गव कौशिकश्च हि प्राप्त स मुनिसत्तम ॥ ६४ ॥
 विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेषोऽभवत् किल ।
 हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशु-ने चिनियोजित ॥ ६५ ॥
 देवैर्दत्त शुन शेषो विश्वामित्राय वै पुन ।
 देवैर्दत्त स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥ ६६ ॥

देवरातादय सप्त विश्वामित्रस्य वै सुता ।
 द्रुपद्वतीसुतश्चापि वैश्वामित्रास्तथाष्टक ॥ ६७ ॥
 अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तो जहनुगणोमया ।
 अत उद्धं प्रवक्ष्यामि वशमायोर्महात्मन ॥ ६८ ॥
 इति श्रीब्राह्म महापुराणे सोमवशे ऽमावसुवशानुकीर्तनं
 नाम दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

सोमनशर्षणनआयुंशर्षणनम्

लोमहर्षण उवाच ।

आयो पुत्राश्च ते पञ्च सर्वे धीरा महारथा ।
 स्वर्भानुतनयाया च प्रभाया जज्ञिरे नृपा ॥ १ ॥
 नहुष प्रथम जने पृथुशर्मा तत परम् ।
 रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विधुता ॥ २ ॥
 रजि पुत्रशतानाह जनयामास पञ्च धै ।
 राजेयमिति विष्णुपातं क्षत्रमिन्द्रभयापहम् ॥ ३ ॥
 यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारणे ।
 देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमघाप्रुष ॥ ४ ॥

देवासुरा ऊचुः ।

आवयोर्मंगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति ।

मूहि न सर्वभूतेश श्रानुमिन्दाम तवत ॥ ५ ॥

ग्रहोवाच ।

येषामर्याय सप्राने रनिरात्तायुध प्रभु ।

योत्स्यते ते विनेष्यन्ति श्रींकाकाप्रात्र सशय ॥ ६ ॥

यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृति ।

यतो धृतिश्च श्राण्यैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥ ७ ॥

ते देवा दानया प्राता देवेनोक्ता रजितदा ।

अभ्ययुर्नयमिन्दतो वृष्वानास्त नरर्यमम् ॥ ८ ॥

स हि स्वर्मानुर्दोहित प्रमाया समपद्यत ।

राजा परमनेत्रस्वा सोमप्रशविबद्धन ॥ ९ ॥

ते हृण्मनस सर्वे रजि वै देवदानया ।

ऊचुरस्मज्जयाय त्व गृहाण घरकाम्मुकम् ॥ १० ॥

अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययो ।

अर्यश म्वार्थमुद्दिश्य यश स्व च प्रकाशयन् ॥ ११ ॥

रनिरुवाच ।

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जिन्या घोर्येण वासव ।

इन्द्रो भवामि धर्मेण तनो योत्स्यामि सयुगे ॥ १२ ॥

देवा प्रथमतो विप्रा प्रतीयुर्दृष्टमानसा ।

एव यथेष्टं नृपते काम सम्पद्यतां तव ॥ १३ ॥

श्रुत्वा सुरगणानान्तु चाकथं राजा रजिस्तदा ।
 पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छन ॥ १४ ॥
 दातवा दर्षसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह ।
 प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥ १५ ॥

दानवा ऊचुः ।

अस्माकमिन्द्रः प्रहादो यस्वार्थं विजयामहे ।
 अस्मिस्तु समरे राजभित्तिष्ठ त्वं राजसत्तम ॥ १६ ॥
 स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः ।
 भविष्यसिन्द्रो जित्थैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः ॥ १७ ॥
 जघान दानवान् सर्वान् घेऽवध्या वज्रपाणिनः ।
 स विप्रनष्टा देवाना परमश्रोः श्रियं घशी ॥ १८ ॥
 निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः ।
 ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतु ॥ १९ ॥
 रजिपुत्रोऽहमिन्युक्तया पुनरेवाप्रवीद्वन् ।
 इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नाश्र सशयः ॥ २० ॥
 यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते मयातिं यास्यामि फर्मभिः ।
 स तु शश्रुवन् श्रुत्या घञ्चितस्तेन मायया ॥ २१ ॥
 तथैवेत्यप्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ।
 तस्मिंस्तु देवैः सहशे श्रियं प्राप्ते महीपती ॥ २२ ॥
 दायाघमिन्द्रादाजह रात्र्यं तत्तनया रजेः ।
 पद्मन् पुत्रशतान्याग्य तडै स्थानं शतक्रतोः ॥ २३ ॥

समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ।

ते यदा तु स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः ॥ २४ ॥

ब्रह्मद्विपश्च संवृत्ता हतवोर्य्यपराक्रमाः ।

ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम् ॥ २५ ॥

हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ।

य इदं च्यावतं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः

शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

रमोऽनपत्यस्त्वासीच्च वशं वक्ष्याम्यनेनसः ।

अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः ॥ २७ ॥

प्रतिक्षत्रसुतश्चासीन् सञ्जयो नाम विश्रुतः ।

सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः ॥ २८ ॥

विजयस्य रुतिः पुत्रस्तस्य ह्यर्य्यत्यतः सुतः ।

ह्यर्य्यत्त्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥ २९ ॥

सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः ।

नदीनस्य जयत्सेनो जायन्सेनस्य सङ्कृतिः ॥ ३० ॥

सङ्कृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशाः ।

अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः ॥ ३१ ॥

क्षत्रवृद्धान्मजास्तत्र सुनहोत्रो महायशाः ।

सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः पर्याभिर्मकाः ॥ ३२ ॥

काशः शलश्च द्विपेती तथा गृत्समदः प्रभुः ।

पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव घैश्याः शूद्रास्तर्षेण च ।
 शलात्मजा अप्तिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः ॥ ३४ ॥
 काशस्य काशिवो राजा पुत्रो दार्घतपास्तथा ।
 धनुस्तु दौर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिरततः ॥ ३५ ॥
 तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः ।
 पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि ॥ ३६ ॥
 तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।
 काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥
 आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः ।
 तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ ३८ ॥
 धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ।
 अथ केतुमतः पुत्रो घारो भीमरथः स्मृतः ॥ ३९ ॥
 पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
 दिवोदासस्तु धर्मात्मा घाराणस्यधिगोऽभवत् ॥ ४० ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पुरी घाराणसी द्विजाः ।
 शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ ४१ ॥
 शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
 शून्या घर्षसहस्रं चैव भवित्री तु न संशयः ॥ ४२ ॥
 तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
 विषयान्ते पुरी रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ ४३ ॥
 भद्रश्रेण्यस्य पृथ्वं तु पुरी घाराणसी ह्यभूत् ।
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ४४ ॥

हन्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः ।
 मद्रथ्रेण्यस्य तद्राज्यं हतं येन बलीयसा ॥ ४५ ॥
 मद्रथ्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
 दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥ ४६ ॥
 हैहयस्य तु दायाद्यं हतवान् वै महीपतिः ।
 आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलान् ॥ ४७ ॥
 मद्रथ्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
 चैरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा ॥ ४८ ॥
 दिवोदासाद्दृष्टपद्भ्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
 तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥ ४९ ॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो ह्यौ चत्समर्गो सुविश्रुतो ।
 चत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥ ५० ॥
 अलर्कस्तम्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्करः ।
 अलर्कं प्रति राजपि श्लोको गीतः पुरातनैः ॥ ५१ ॥
 षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
 युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्बहः ॥ ५२ ॥
 लोपामुद्रापसादेन परमायुरवाप्तवान् ।
 तस्यासौत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ ५३ ॥
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
 रम्यां निवेशयामास पुत्रीं वाराणसीं पुनः ॥ ५४ ॥
 सन्नैरपि दायादः सुनीयो नाम धार्मिकः ।
 सुनीयस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशः ॥ ५५ ॥

क्षेमस्य केतुमान् पुत्र सुकेतुस्तस्य चात्मज ।
 सुरेतोस्तनयश्चापि धर्मकेनुरिति स्मृत ॥ ५६ ॥
 धर्मकेतोस्तु दायाद सत्यकेतुमंहारथ ।
 सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वर ॥ ५७ ॥
 आनर्त्तस्तु विभो पुत्र सुकुमारश्च तत्सुत ।
 सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतु सुधार्मिक ॥ ५८ ॥
 धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्र प्रजेश्वर ।
 वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वर ॥ ५९ ॥
 वत्सस्य वन्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गज ।
 एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वशेऽथ भार्गव ॥ ६० ॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वीश्यास्त्रय पुत्रा सहस्रश ।
 इत्येते काश्यपा प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत ॥ ६१ ॥

इति श्रोत्राहो महापुराणे सोमप्रशेवृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपण
 नामैकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

सोमवंश वर्णने ययातिचरित्रवर्णनम्
 लोमहर्षण उवाच ।

उत्पन्ना पितृकन्याया विरजाया महौजस ।
 नहुषस्य तु दायादा षड्भिन्द्रोपमतेजस ॥ १ ॥

यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्यातिरेव च ।

सुयातिः पृष्ठस्नेपां धै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ॥ २ ॥

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।

यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां विजिन्य चमुद्यामिमाम् ।

देवयानामुशनसः सुतां माट्यामवाप सः ॥ ४ ॥

शर्मिष्ठासुरो चैव ततया वृषपर्वणः ।

यदुञ्च तुर्व्यसुञ्चैव देवयाना व्यजायत ॥ ५ ॥

द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा धार्पपर्वणी ।

तस्मै शक्तो ददौ प्रीती रथ परममाम्बरम् ॥ ६ ॥

बद्धदं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमराजिमिः ।

युक्तं मनोजयैः शुभ्रैरेन काप्यं समुहहन् ॥ ७ ॥

स तेन रथमुख्येन पद्मात्रेणाजयन्मर्हाम् ।

ययातिर्युधि दुर्द्धर्पस्तथा देवान् सदानवान् ॥ ८ ॥

स रथः कौरवाणां तु सर्व्वेयामभवत्तदा ।

संपत्तवमुनामस्तु कौरवाञ्जनमेजयात् ॥ ९ ॥

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराजः पारिश्रितस्य ह ।

जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य घामनः ॥ १० ॥

गर्गस्य हि सुतं यालं स राजा जनमेजयः ।

कालेन हिसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥ ११ ॥

स लोहगन्धो राजर्षिः परिध्रावप्रितस्ततः ।

पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचिन् ॥ १२ ॥

ततः स दु खसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित् ।
 विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥ १३ ॥
 याजयामास च क्षानी शौनको जनमेजयम् ।
 अश्रमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
 स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह ।
 स च दिव्यरथो राज्ञो घराश्वेदिपनेस्तदा ॥ १५ ॥
 दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः ।
 बृहद्रथात्क्रमेणैत्र गतो चार्हद्रथं नृपम् ॥ १६ ॥
 ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ।
 प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ १७ ॥
 सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं सत्तागराम् ।
 विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥ १८ ॥
 ययातिर्दिशि पूर्वस्यां यदु ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।
 मध्ये पूरुं च राजानमभ्यपिञ्चत् स नाहुपः ॥ १९ ॥
 दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्व्वसुं मतिमान्नृप ।
 तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ २० ॥
 यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ।
 प्रजास्नेपां पुस्त्यात् वक्ष्यामि मुनिलत्तमा ॥ २१ ॥
 धनुर्न्यस्य पृथ्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः ।
 जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ २२ ॥
 निक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः ।
 प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥ २३ ॥

एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमत्रधीत् ।

जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं कृत्यान्तरेण वै ॥ २४ ॥

तरुणस्त्वव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ।

जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥ २५ ॥

यदुस्वाच ।

अनिर्दिष्टा मया मिशा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।

अनपाकृत्य ता राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥ २६ ॥

जरायां बहवो दोषा पानभोजनकारिताः ।

तस्माज्जरां न तेन राजन् ग्रहीतुमहमुन्सहे ॥ २७ ॥

सन्ति ते बहव पुत्रा मत्त प्रियतरा नृप ।

प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ २८ ॥

स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः ।

उवाच वदता श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥ २९ ॥

ययातिरुवाच ।

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते ।

मामनाकृत्य दुर्बुद्धे यदहं तत्र देशिक ॥ ३० ॥

एवमुक्तो यदुं विप्राः शशापेनं स मन्युमान् ।

अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न संशयः ॥ ३१ ॥

द्रुह्युं च तुर्यसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः ।

एवमेवात्रचोद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३२ ॥

शशाप तानतिवृद्धो ययातिरपराजित ।

यथायन् कथितं सर्वं मयाम्य द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

एव शप्त्वा सुतान् सर्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान् ।
 तदेव वचनं राजा पूज्यप्याह भो द्विजाः ॥ ३४ ॥
 तरुणस्तव रूपेण चरेय पृथिवीमिमाम् ।
 जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥ ३५ ॥
 स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान् ।
 ययातिरपि रूपेण पूरोः पत्यर्चरन् महीम् ॥ ३६ ॥
 स मार्गमाणः कामानामन्तं नृपतिसत्तमः ।
 विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥ ३७ ॥
 यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषु च नराधिपः ।
 तदा पूरोः सकाशाद्दे स्यां जरा प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥
 यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गोताः किल ययातिना ।
 याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्व्वे ह्यङ्गानि कूर्मवत् ॥ ३९ ॥
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
 हविषा कृष्णवर्त्मव भूय पवाभिवर्द्धते ॥ ४० ॥
 यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
 नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति ॥ ४१ ॥
 यदा भावं न कुर्वते सर्व्वभूतेषु पापकम् ।
 कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४२ ॥
 यदा तेभ्यो न विभेति यदा चास्मान् विभ्यति ।
 यदा नेच्छति न द्वेष्यति ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४३ ॥
 या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
 योऽसौ प्राणान्तिकी रोगस्तां कृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४४ ॥

जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत ।
 धनाशा जाविताशा च जीर्यतोऽपि न जाय्यति ॥ ४५ ॥
 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्य महत्सुखम् ।
 तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति पोदृशी कलाम् ॥ ४६ ॥
 एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् ।
 कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः ॥ ४७ ॥
 भृशुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः ।
 अतश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ४८ ॥
 तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
 यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्यैव गभस्तिभिः ॥ ४९ ॥
 यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुष्व राजसत्तृतम् ।
 यत्र नारायणो जज्ञे हरिवृष्णिकुलोद्भवः ॥ ५० ॥
 सुस्थः प्रजायानायुमान् कीर्त्तिमांश्च भवेन्नरः ।
 ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं
 नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

पूरुवंशवर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः ।

पूरोवंश षडसूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वत
दुह्यस्थानोर्यदोश्चैव तुघसोश्च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥
लोमहर्षण उवाच ।

शृणुष्व मुनिशार्दूला पूरोवंश महात्मन ।
विस्तरैणानुपूञ्चर्या च प्रथम वदती मम ॥ २ ॥
पूरो पुत्र सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मज ।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुत ॥ ३ ॥
तथैवाभयदस्यासौत् सुधन्वा नाम पार्थिव ।
सुधन्वन सुबाहुश्च रौद्राश्वस्तस्य चात्मज ॥ ४ ॥
रौद्राश्वस्य दशार्णेषु वृकणेषुस्तथैव च ।
कक्षेषुस्थण्डिलेषुश्च सत्रनेषुस्तथैव च ॥ ५ ॥
श्रुचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबल ।
धनेयुश्च धनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रिय ॥ ६ ॥
भद्रा शूद्रा च भद्राच शलदामलदा तथा ।
शलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च ॥ ७ ॥
तथा गोचपला च खारत्नकृदा च ता दश ।
ऋषिर्जातोऽग्निवशे च तासा भर्ता प्रभाकर ॥ ८ ॥

उशीनरञ्च धर्मज्ञ तितिशुञ्च महायन्म् ।
 उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्णिवशजा ॥ २० ॥
 नृगा कृमिर्नवा दर्वा पञ्चमा च दृष्यती ।
 उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्धहा ॥ २१ ॥
 तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजा ।
 नृगायास्तु नृग पुत्र इम्या कृमिरजायत ॥ २२ ॥
 नवायास्तु नव पुत्रो दर्वाया सुत्रतोऽभवत् ।
 दृष्यत्यास्तु सङ्गते शिविरीशीनरो नृप ॥ २३ ॥
 शिरेस्तु शिवयो विप्रो यौघेयास्तु नृगस्य ह ।
 नवस्य नवराप्द्रन्तु दृमेस्तु इमिल्या पुरी ॥ २४ ॥
 सुत्रस्तस्य तथाभ्यष्टा शिविपुत्रान्नियोधत ।
 शिरेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥ २५ ॥
 वृषदर्भ सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ।
 तेषा जनपदा स्फाता केकया मद्रकास्तथा ॥ २६ ॥
 वृषदर्भा सुग्रीराश्च तितिशोस्तु प्रजास्त्विमा ।
 तितिशुरभवद्राजा पूञ्चस्या दिशि भो द्विजा ॥ २७ ॥
 उपद्रयो महावीर्य्य फेनस्तस्य सुतोऽभवत् ।
 फेनस्य सुतपा जज्ञे तत सुतपसो बलि ॥ २८ ॥
 जातो मानुषयोर्नौ तु स राजा काञ्चनेपुधि ।
 महायोगी स तु बलिर्भूव नृपति पुरा ॥ २९ ॥
 पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वशकरान् भुवि ।
 अङ्ग प्रथमतो जज्ञे वङ्ग सुहस्तथैव च ॥ ३० ॥

पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेय क्षत्रमुच्यते ।
 बालेया ब्राह्मणाश्चैव नस्य वंशकरा भुवि ॥ ३१ ॥
 बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजाः ।
 महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ॥ ३२ ॥
 वटे चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।
 संप्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मं चैव प्रधानताम् ॥ ३३ ॥
 त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा ।
 चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥ ३४ ॥
 इन्द्र्युक्तो विभुना राजा थलि शान्तिं परां ययी ।
 कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥ ३५ ॥
 तेषां जनपदा पञ्च अङ्गा यद्गा समुल्लाकाः ।
 कालिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वद्गम्य साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥
 अद्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
 दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥ ३७ ॥
 पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ।
 विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥ ३८ ॥
 तेन धर्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ ।
 यज्ञता सह शक्रेण सोम पीतो महात्मना ॥ ३९ ॥
 अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
 लोमपाद् इति न्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥ ४० ॥
 तस्य दाशशिवींश्चतुरङ्गो महायशाः ।
 ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वंशविचर्द्धन ॥ ४१ ॥

चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ।
 पृथुलाक्षस्तुनो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥ ४२ ॥
 चम्पस्य तु पुत्री चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा ।
 पूर्णभद्रप्रसादेन हृद्यङ्गोऽस्य सुनोऽभवत् ॥ ४३ ॥
 ततो वैभाण्डकिस्तस्य धारणं शक्रवारणम् ।
 अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ ४४ ॥
 हृद्यङ्गस्य सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः ।
 पुत्रो भद्ररथस्यासीदुवृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥ ४५ ॥
 वृहद्दर्भः सुतस्तत्र यस्माज्जज्ञं वृहन्मनाः ।
 वृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥ ४६ ॥
 नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्बृहद्दरथो नृपः ।
 आसीदुवृहद्दरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयी ॥ ४७ ॥
 दायादस्तस्य त्रैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः ।
 तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥
 पतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्त्तिता मया ।
 सत्यघ्नता महात्मानः प्रजाचन्तो महारथाः ॥ ४९ ॥
 ऋचेयोस्तु मुनिश्रेष्ठा रौद्राश्वतनयस्य वै ।
 शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राजस्तु भो द्विजाः ॥ ५० ॥
 ऋचेयोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः ।
 मतिनारस्तुतास्त्वासंश्रयः परमधार्मिकाः ॥ ५१ ॥
 पसुरोधः प्रतिरथः सुयाहुश्चैव धार्मिकः ।
 सर्व्यं वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यघादिनः ॥ ५२ ॥

इला नाम तु यस्यासीन् कन्या वै मुनिसत्तमाः ।
 ब्रह्मवादिन्यधिष्ठी सा तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥ ५३ ॥
 तंसोः सुतोऽथ राजर्षिर्धर्मेशः प्रतापवान् ।
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानधी ॥ ५४ ॥
 उपदानधी ततः पुत्राश्चतुरोऽजनयन्छुभान् ।
 दुष्यन्तमथ सुश्रुन्तं प्रवीरमनघ तथा ॥ ५५ ॥
 दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम धीर्यवान् ।
 स सर्व्वदमनो नाम नागायुनयलो महान् ॥ ५६ ॥
 चक्रयत्तीं सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
 शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥ ५७ ॥
 भरतस्य चिनष्टेषु तनयेषु महापते ।
 मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा ॥ ५८ ॥
 वृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो चिप्रो महामुनिः ।
 अयाजग्द्वरद्व्राजो महद्विः क्रतुर्मिथुभुः ॥ ५९ ॥
 पूर्य्यं तु चितथे तस्य कृते वै पुत्रजग्मनि ।
 ततोऽथ चितथो नाम भरद्वाजास्तुतोऽभवत् ॥ ६० ॥
 ततोऽथ चितथे ज्ञाने भरतस्तु दिवं ययौ ।
 चितथं चामिषिच्यथ भरद्वाजो घनं ययौ ॥ ६१ ॥
 स चापि चितथः पुत्रान् जनयामास पश्य वै ।
 सुहोत्रश्च सुहोतारं गयं गगं तथेष च ॥ ६२ ॥
 कपिलश्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ।
 काशिकश्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपन् ॥ ६३ ॥

तथा गृत्समनेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशाः ।
 काशिकस्य तु काशेषः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥ ६४ ॥
 बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः ।
 धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विध्रुतः ॥ ६५ ॥
 तथा वेतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः ।
 पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ ६६ ॥
 दिवोदास इति उवाचः सर्व्वशत्रुप्रणाशनः ।
 दिवोदासस्य पुत्रस्तु घोरो राजा प्रतर्द्दनः ॥ ६७ ॥
 प्रतर्द्दनस्य पुत्रौ द्वौ घत्सो भार्गव एव च ।
 अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥ ६८ ॥
 हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः ।
 आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ६९ ॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
 दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्ज्जितः ॥ ७० ॥
 अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै ।
 तेन पुत्रेणबालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥ ७१ ॥
 घेरस्यान्नं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधित्सता ।
 अलर्कः काशिराजस्तु प्रहाण्यः सत्यसङ्गरः ॥ ७२ ॥
 षष्टि वर्यसदम्नाणि षष्टिवर्यशतानि च ।
 युषा रूपेण सम्पन्नं धासोत्काशिराजः ॥ ७३ ॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परमायुस्य
 घत्सोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा

रम्यां निवेशयामास पुरीं धाराणसीं नृपः ।

अलकस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः ॥ ७५ ॥

क्षेमकस्य तु पुत्रो वै धर्षकेतुस्ततोऽभवत् ।

धर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ ७६ ॥

मानर्त्तस्तु विमोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत् ।

सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ॥ ७७ ॥

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्मिकः ।

घत्सस्य घत्सभूमिस्तु मर्गभूमिस्तु मार्गवात् ॥ ७८ ॥

एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।

ग्राहणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥ ७९ ॥

आजमीढोऽपरो वंशः ध्रुयतां द्विजसत्तमा ।

सुशोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ॥ ८० ॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च धीर्यवान् ।

अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिम्रो वै यशमान्विताः ॥ ८१ ॥

नीलो च केशिनी चैव धूमिनी च घराङ्गनाः ।

अजमीढस्य केशिन्यां जङ्गे जङ्गः प्रतापवान् ॥ ८२ ॥

आजहे यो महासत्रं सत्र्यमेधमपं विभुम् ।

पतिशोभेन यं गङ्गा विनीनेव ससार ह ॥ ८३ ॥

नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तन्सदः ।

तस्यश प्लावितं दृष्ट्वा यत्रवाटं ममन्ततः ॥ ८४ ॥

जङ्गुत्प्यत्रशोङ्गा ऋद्धो विप्रास्तदा नृपः ।

एतं त्रिपु लोकेषु संक्षिप्यापः पिराम्यहम् ॥ ८५ ॥

अस्य गङ्गाऽचलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि । . . .

ततः पीतां महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महर्षयः ॥ ८६ ॥

उपनिन्युर्महाभागा दुहितृ-धेन ज हरीम् ।

युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कायेरीं ऊहवाचहन ॥ ८७ ॥

गङ्गांशापेन देहाद्धं यस्याः पश्चाद्भदीकृतम् ॥

जहोस्तु दयित पुत्रो भजको नाम वीर्यवान् ।

भजकस्य तु दायादो घलाकाश्वो महीपतिः ॥ ८८ ॥

बभूव मृगयाशौलः कृशिकस्तस्य चारमजः ।

यहनैः सह संवृद्धो राजा चनचरैः सह ॥ ८९ ॥

कुशिकस्तु नवन्नेरे पुत्र मेन्द्रसमं विभुम् ।

लभेयमिति तं शकम्त्रासावभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ ९० ॥

स गाधिरभवद्वाजा मघवा कौशिक स्वयम् ।

विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रान्तथाष्टकः ॥ ९१ ॥

अष्टकस्य सुतो लौहि प्रोक्तोजदनुगणो मया ।

आजमीढोऽपगे वंश श्रुतां मुनिसत्तमाः ॥ ९२ ॥

अजमीढान्तु नीलगा वै सुशान्तिरदपद्यत ।

पुरुजातिः सुशान्तेश्च वाह्याश्व परजातितः ॥ ९३ ॥

वाह्याश्वतनया पञ्च स्फीता जनपदावृताः ।

मुद्गलः सुञ्जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तथा ॥ ९४ ॥

यवीनश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ।

पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ॥ ९५ ॥ .

पञ्चानां ते तु पञ्चान्नाः स्फीता जनपदावृताः ।
 बलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ॥ ६६ ॥
 मुद्गलस्य तु दायादो मीद्गल्यः सुमहायशाः ।
 इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नन्त्वं प्रत्यपद्यत ॥ ६७ ॥
 आसीन् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः ।
 सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः ॥ ६८ ॥
 सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः ।
 सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः ॥ ६९ ॥
 अजमीढसुतो जातः क्षीणे वशे तु सोमकः ।
 सोमकस्य सुतो जन्तुर्यम्य पृत्रशान यमो ॥ १०० ॥
 तेषां यचीयान् पृपतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः ।
 आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मानन्तु सोमकाः ॥ १०१ ॥
 महिषी त्वजमीढस्य धूमिना प्रगृद्धिनी ।
 पतिव्रता महामागा कुलजा मुनिसत्तमाः ॥ १०२ ॥
 सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता ।
 ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ १०३ ॥
 हृत्याग्निं विधिवन् सा तु पवित्रा मितभोजना ।
 अग्निहोत्रकुरोष्वेव मुप्याप मुनिसत्तमाः ॥ १०४ ॥
 धूमिन्या स तथा देव्या त्वजमीढः समीयिवान् ।
 शृङ्गं संञ्जनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम् ॥ १०५ ॥
 शृङ्गान् सम्बरणो जज्ञे कुरुः सम्बरणात्तथा ।
 यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥ १०६ ॥

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।

तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवाः १०७ ॥

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा ।

परीक्षित्वा महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥ १०८ ॥

परोक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ।

श्रुतसेनोऽप्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥ १०९ ॥

एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।

जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥ ११० ॥

सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।

विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥ १११ ॥

द्वितीयस्तु मरुदाज्ञाशाम्ना तेनैव विश्रुतः ।

द्वावृक्षौ सोमयंशोऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ ॥ ११२ ॥

भीमसेनाखयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ ।

ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥ ११३ ॥

प्रपोषो भीमसेनात्तु प्रतोपस्य तु शान्तनुः ।

देवाविर्पाहिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥ ११४ ॥

शान्तनोस्त्वभयद्भोऽप्यस्तस्मिन् यंशो द्विजोत्तमाः ।

वाहिकस्य तु राजपथ्यं शं शृणुत भो द्विजाः ॥ ११५ ॥

पाहिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।

जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिभूरिश्रवाः शलः ॥ ११६ ॥

• मतः परं क्वचिदधिकाःश्लोका इत्यन्ते न ते यद्गुपुस्त
सम्भता इति भोक्तृताः ।

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।
 च्यघनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः ॥ ११७ ॥
 शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणा धुन्धरः ।
 शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वशं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ११८ ॥
 गाङ्गं देववतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभु ।
 स तु भीष्म इति कथातः पाण्डवाना पितामहः ॥ ११९ ॥
 काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भो द्विजाः ।
 शान्तनोर्दयित पुत्र धर्मात्मानमकत्मयम् ॥ १२० ॥
 कृष्णद्वैपायनान्वचैव श्रेत्रे वैचित्रवीर्यके ।
 धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुर चाप्यजीजनत् ॥ १२१ ॥
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम् ।
 तेषां दुष्योधन श्रेष्ठ सर्वेषामपि स प्रभुः ॥ १२२ ॥
 पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सीमद्रस्तस्य चात्मजः ।
 अभिमन्यो परीक्षितु पिता पारीक्षितस्य ह ॥ १२३ ॥
 पारिक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौ सम्यभूवतुः ।
 चन्द्रापीडस्तु नृपति सूर्यापीडश्च मोक्षधित् ॥ १२४ ॥
 चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
 जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥ १२५ ॥
 तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे धारणसाहये ।
 सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १२६ ॥
 सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ।
 अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविशेश तपोघनम् ॥ १२७ ॥

तस्माद्ब्रह्मना गमं यादधीं प्रत्यपद्यत ।

सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ब्राह्ममालिनी ॥ १२८ ॥

सम्भूने स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ।

अन्वगच्छन् कृत पूर्व्यं महाप्रस्थानमच्युतम् ॥ १२९ ॥

सा तु दृष्ट्वा प्रिय त च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात् ।

सुचारोर्दुहिता साध्वी घने राजीवलोचना ॥ १३० ॥

पथि सा सुपुरे बाला सुकुमार कुमारकम् ।

तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्त्वगच्छत ॥ १३१ ॥

पतिव्रता महाभागा द्रौपदीय पुरा सती ।

कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिवृष्टे रुरोद ह ॥ १३२ ॥

दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुगासन्महात्मन ।

श्रविष्ठायाम्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलाक्षिश्च कौशिक ॥ १३३ ॥

दृष्ट्वा कृपा न्वेतौ गृध्र तौ प्राक्षालयतां जले ।

निधृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥ १३४ ॥

अजश्याम स पार्श्वभ्यां धृष्टाभ्या सुसमाहितः ।

अजश्यामौ तु तत्र शौं देवेन सम्बभूवतु ॥ १३५ ॥

अथात्रपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ ।

स तु रैमकरालाया द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः ॥ १३६ ॥

रैमकस्य तु भार्या तमुद्रहन् पुत्रकारणात् ।

रैमत्या स तु पुत्रोऽभूत्पुत्राग्रौसचिरीतु तौ ॥ १३७ ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः ।

स एव पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १३८ ॥

श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेन ययानिता ।
 जरासंक्रमणे पूर्वं तदा प्राणेन धीमता ॥ १३६ ॥
 अचन्द्रार्कप्रहा भूमिर्मरेदियमसशयम् ।
 अपौरवा मही नैव भविष्यति कदानन ॥ १४० ॥
 एष व पौरवो वशो विद्यात कथितो मया ।
 तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुहोश्चानोर्दोस्तथा ॥ १४१ ॥
 तुर्वसोऽस्तु सुतो वहि गोमानुस्तस्य चात्मज ।
 गोमानोस्तु सुतो राजा त्रैशानुरपराजिन ॥ १४२ ॥
 करन्धमस्तु त्रैशानेर्मरुत्तस्तस्य चात्मज ।
 अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्त कथितो मया ॥ १४३ ॥
 अनपन्थोऽभवद्राजा यज्वा विपुत्रक्षिण ।
 दुहिता सम्मता नाम तस्यासौ पृथिव्यापने ॥ १४४ ॥
 दक्षिणार्थं तु सा दत्ता सवर्त्ताय महात्मने ।
 दुप्यन्तं पौरव चापि लेभे पुत्रमकटमपम् ॥ १४५ ॥
 एवं ययानिशापेन जरात्मक्रमणे तदा ।
 पौरवं तुर्वसोर्वंशं प्रविशेश द्विजोत्तमा ॥ १४६ ॥
 दुप्यन्तस्य तु दायाद् करुणाम प्रजेश्वरः ।
 करुणामादथाहं दध्त्वारस्तस्य चान्मजा ॥ १४७ ॥
 पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कीलश्चोत्तश्च पार्थिव ।
 द्रुहोश्च तनयो राजन् वक्रसेतुश्च पार्थिव ॥ १४८ ॥
 अङ्गारसेतुस्तन्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते ।
 यौवनाश्रेण समरे कृच्छ्रेण निहतो यली ॥ १४९ ॥

युद्ध सुमहदप्यासीन्मासान् परि चतुर्दश ।
 अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिव ॥ १५० ॥
 षयायने यस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान् ।
 गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा घाजिना घरा ॥ १५१ ॥
 अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद्द्यूतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
 घुतादनदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥ १५२ ॥
 प्रचेतस सुचेनास्तु कीर्त्तितास्त्वनवो मया ।
 यभूवुस्ते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥ १५३ ॥
 सहस्राद् पयोदश्च व्रीष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ।
 सहस्रादस्य दायादास्त्रय परमधार्मिका ॥ १५४ ॥
 हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा ।
 हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति श्रुत ॥ १५५ ॥
 धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहजस्तस्य चात्मज ।
 साहजनी नाम पुत्री तेन राज्ञा निवेशिता ॥ १५६ ॥
 आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् ।
 भद्रश्रेण्यस्म दायादो दुर्दमो नाम विश्रुत ॥ १५७ ॥
 दुर्दमस्य सुतो धोमान् कनको नाम नामत ।
 कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुता १५८ ॥
 कृतवीर्य्य कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च ।
 कृताग्निस्तु चतुर्योऽभून् कृतशीर्यादयाञ्जुन ॥ १५९ ॥
 योऽसौ बाहुसहस्रग सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
 जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६० ॥

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तप परमदुश्चरम् ।
 दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥ १६१ ॥
 तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
 पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ १६२ ॥
 अधर्मेऽश्रीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् ।
 उग्रेण पृथिवीं जिन्वा धर्मेणैवानुरञ्जनम् ॥ १६३ ॥
 संप्रामान् सुग्रहन् जिन्वा हृत्वा चारीन् सहस्रशः ।
 संग्रामे वर्त्तमानस्य बध चाभ्यधिक्राद्रेणे ॥ १६४ ॥
 तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यत किल भो द्विजाः ।
 योगाद्भुयोगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥ १६५ ॥
 तेनेयं पृथिवी सर्व्या सप्तद्वीपा सपत्तना ।
 ससामुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥ १६६ ॥
 तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै ।
 प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १६७ ॥
 सर्व्ये यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः ।
 सर्व्ये काञ्चनयूपाश्च सर्व्ये काञ्चनपेदयः ॥ १६८ ॥
 सर्व्ये देवैर्भुं निश्रेष्ठा विमानस्यैरलङ्कृतैः ।
 गन्धर्वैरुपसरोमिश्च नियमेवोपशोमिताः ॥ १६९ ॥
 यस्य यज्ञे जगो गाथां गन्धर्व्यो नारदस्तथा ।
 यरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः ॥ १७० ॥

नारद उवाच ।

न नूतं कीर्त्तवीर्यस्य गति यास्यन्ति पार्थिवाः ।
 यज्ञैर्दानैस्तपोमिश्च विक्रमेण धृतेन च ॥ १७१ ॥

स हि सप्तसु द्वीपेषु घर्मो खड्गी शरासनी ।
 रथी द्वापाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः ॥ १७२ ॥
 अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः ।
 प्रभावेण मया राज्ञ प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ १७३ ॥
 स सर्व्वरत्नमाक् सघ्राट् चक्रघर्तो बभूव ह ।
 स एव पशुपालोऽभून् क्षेत्रपाल स एव च ॥ १७४ ॥
 स एव वृष्ट्या पञ्जन्यो योगित्वाद्ज्जुनोऽभवत् ।
 स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातरुठिनत्वचा ॥ १७५ ॥
 भाति रश्मिसहस्रेण शरदीय च भास्करः ।
 स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युति ॥ १७६ ॥
 कर्कोटकपुतान् जित्वा पुण्यां तस्या न्यवेशयत् ।
 स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽभ्युज्जेष्य ॥ १७७ ॥
 क्रीडन्निव भुजोद्विन्नं प्रतिस्त्रोतध्वकार ह ।
 लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तदुग्राममालिनो ॥ १७८ ॥
 चलदूर्भिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्मदा ।
 तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥ १७९ ॥
 मयान्निर्लीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा ।
 चूर्णीकृतमहावीचि चलन्मीनमहातिमिम् ॥ १८० ॥
 माख्ताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम् ।
 प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ॥ १८१ ॥
 देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दरः ।
 मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किताः ॥ १८२ ॥

सहस्रोत्पतिना भाता भाम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ।
 नता निश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगा ॥ १८३ ॥
 सायाह्ने कदलाखण्डा कम्पिता इव वायुना ।
 स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिहृत्सिक्त पञ्चमि शरै ॥ १८४ ॥
 लङ्केश मोहयित्वा तु सगल रावण वलात् ।
 निर्जित्य वशमानीय माहिमत्या वचन्ध तम् ॥ १८५ ॥
 श्रुत्वा तु वद्ध पौलस्त्य रावण त्वञ्जुनेन च ।
 ततो गत्वा पुनस्त्यस्तमज्जुत ददृशे स्वयम् ॥ १८६ ॥
 मुमोच रक्ष पौलस्त्य पुनस्त्येनामियाचित ।
 यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलसन ॥ १८७ ॥
 युगान्ते तीयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिच ।
 अहो वत मुने वार्य्य भार्गवस्य यदच्छिनत् ॥ १८८ ॥
 राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैम तालवन यथा ।
 तृपितेन कदाचित् स मि क्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
 स भिक्षामददाद्वोर सप्त द्वापान् विभासो ।
 पुराणि प्रामथ्रोपाश्च विषयाश्चैव सर्वश ॥ १९० ॥
 जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्द्विदृक्षया ।
 स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मन ॥ १९१ ॥
 ददाह कात्तवोर्य्यन्तु शैलाश्चैव वनानि च ।
 सशून्यमाश्रम रम्य वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
 ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानु सहेहय ।
 य लेभे वरुण पुत्र पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥

षशिष्टं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।
 तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छतवानर्जुन विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्मान्न षर्जितमिदं वनं ते मम हृदय । --
 तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्याति ॥ १९५ ॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
 छित्त्वा बाहुसहस्रान्तेप्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः ।
 अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ।
 प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥ १९८ ॥
 षरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा ।
 तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥ १९९ ॥
 कृताख्या बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ।
 शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥ २०० ॥
 जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।
 कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २०१ ॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।
 तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥ २०२ ॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हृदयाना महात्मनाम् ।
 पीतिहोत्रा सुप्रताश्चभोजाश्चावन्त्यः स्मृताः ॥ २०३ ॥
 तीण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।
 भरताश्च यद्गुः ॥ २०४ ॥

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः ।
 वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥ २०५ ॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशहृत् ।
 वृषणाद्वृषण्यः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥ २०६ ॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
 न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलमेच सः ॥ २०७ ॥
 कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेद्दिह नित्यशः ।
 एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥ २०८ ॥
 कीर्तिता लोकघोराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
 भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यादरजङ्गमान् ॥ २०९ ॥
 श्रुत्वा पञ्च विसर्गान्तु राजा घर्म्मार्थकोविदः ।
 घरी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ २१० ॥
 लमेत् पञ्च घरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
 आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानेश्वर्यं भूमिमेव च ॥ २११ ॥
 धारणाच्छ्रुणाञ्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
 क्रोष्टोर्ध्वशं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं गदतो मम ॥ २१२ ॥
 यदोर्ध्वं तधरस्याथ यज्जिनः पुण्यकर्मिणः ।
 क्रोष्टोर्ध्वशं हि श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१३ ॥
 यस्यान्ववायजो विष्णुर्इरिर्ष्वृष्णिबुलोद्धहः ।

* इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययतिवंशानुकीर्तनं नाम
 त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

षशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ।
 तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छतवानर्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्मान्न षर्जितमिदं धनं ते मम हैहय । -
 तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्याति ॥ १९५ ॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
 छिस्त्वा बाहुसहस्रन्तेप्रमध्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः ।
 धनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ।
 प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः ॥ १९८ ॥
 घरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा ।
 तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः ॥ १९९ ॥
 कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ।
 शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः ॥ २०० ॥
 जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ।
 कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २०१ ॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।
 तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥ २०२ ॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयाना महात्मनाम् ।
 धीतिहोत्रा सुप्रताश्चभोजाश्चावन्तय स्मृताः ॥ २०३ ॥
 तौण्डिकेयाश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ।
 भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः ॥ २०४ ॥ -

वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः ।
 वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥ २०५ ॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत् ।
 वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥ २०६ ॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः ।
 न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥ २०७ ॥
 कार्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः ।
 एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥ २०८ ॥
 कीर्त्तिता लोकवाराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ।
 भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थायरजङ्गमान् ॥ २०९ ॥
 श्रुत्वा पञ्च विसर्गास्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः ।
 पशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥ २१० ॥
 लमेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ।
 आयुः कीर्त्ति तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूमिमेव च ॥ २११ ॥
 धारणाच्छ्रृणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः ।
 क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठाः श्रृणुध्वं गदतो मम ॥ २१२ ॥
 यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्मिणः ।
 क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २१३ ॥
 यस्यान्ववायजो विष्णुर्ईरिर्ष्वृष्णिबुलोद्धहः ।

• इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययतिवंशानुकीर्त्तनं नाम

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

तत्रादौ यदुपुत्र क्रौण्डुवंशवर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

गान्धारी चैव माद्री च क्रौण्डोर्भार्य्ये बभूवतुः ।
गान्धारी जदयामाल अनमित्रं महाबलम् ॥ १ ॥
माद्री युवाजिनं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीदृशम् ।
तेषां वशास्त्रेण भूनां वृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥ २ ॥
माद्रीया पुत्रौ तु तत्रानि श्रुतौ वृष्ण्यन्धकाद्युभे ।
जज्ञाते तत्रथौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ३ ॥
श्वफल्कस्तु मुनिश्च ष्ठा धर्मात्मा यत्र वर्तते ।
नास्ति आश्रमस्य तत्र नावर्षस्तापमेव च ॥ ४ ॥
कदाचिन् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः ।
त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावपन् पाकशासनः ॥ ५ ॥
स तत्र चानयामाल श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः ॥ ६ ॥
श्वफल्क काशिराजस्य सुता भाटर्षामविन्दत ।
गान्दिनीं नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः ॥ ७ ॥
दाता यज्वा च वारश्च श्रुतवान्तिथिप्रियः ।
अक्रूरः सुपुत्रे तस्माच्छ्वपल्काद्भूरिर्दक्षिणः ॥ ८ ॥

उपमद्गु स्तथा मद्गुमदुरध्वारिमेजय ।
 आविक्षितस्तथाक्षेप शत्रुभनश्चारिमर्दन ॥ ६ ॥
 धर्मधृग् यतिधर्मा च धर्मोक्षान्धकरुस्तथा ।
 आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च घराङ्गना ॥ १० ॥
 अकूरेणोप्रसेनाया सुगाय्या द्विजसत्तमा ।
 प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ ११ ॥
 चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्विपृथुरेव च ।
 अश्वप्रोचोऽश्वग्राहुश्च स्वपार्श्वकगवेषणौ ॥ १२ ॥
 अरिष्टनेमिरण्वश्च सुधर्मा धर्मभृत्तथा ।
 सुग्राहुर्वर्द्धुवाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ १३ ॥
 असिकन्या जनयामास शूर वै देवमीदुपम् ।
 महिष्या जज्ञिरे शूरा भोज्याया पुरुषा दश ॥ १४ ॥
 वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुन्दुभि ।
 जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्या प्राणदन् दिवि ॥ १५ ॥
 आनकाना च सहाद सुमहानभवदिवि ।
 पपात पुपवर्षश्च शरस्य जनने महान् ॥ १६ ॥
 मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ।
 यस्यासोत्पुरुषाग्रस्य कान्तिश्चन्द्रमसौ यथा ॥ १७ ॥
 देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवा पुन ।
 अनाधृष्टि कनवको घत्सवानथ गृज्जम ॥ १८ ॥
 श्याम शमाको गण्डूय पञ्च चास्य घराङ्गना ।
 पृथुकीर्त्ति पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा ॥ १९ ॥

राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता धीरमातरः ।
 श्रुतश्रवाया चैद्यस्तु शिशुशालोऽभवन्नृपः ॥ २० ॥
 हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा ।
 पृथुकीर्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्मण ॥ २१ ॥
 करूपाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ।
 पृथा दुहितर चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् ॥ २२ ॥
 यस्या स धर्मपिद्राजा धर्मो जज्ञे युधिष्ठिरः ।
 भामसेनस्तथा घातादिन्द्राञ्चैव धनञ्जय ॥ २३ ॥
 लोकेऽप्रतिरथो धीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः ।
 मनमित्राच्छिन्नजंज्ञे कनिष्ठाद्गृष्णिनन्दात् ॥ २४ ॥
 शौनेष सत्यवस्तम्माद्गुयुयुधानश्च सारथिः ।
 वृद्धपो देवमागम्य मदाभाग सुतोऽभवत् ॥ २५ ॥

असप्रामेण यो धीरो नावर्त्तत कदाचन ।
 रौक्मिणेयो महाबाहु कनीयान् द्विजसत्तमा ॥ ३० ॥
 घायसाना सहस्राणि य यान्तु पृष्ठतोऽन्वयु ।
 चारुनद्योपमोक्ष्यामश्चास्त्रेष्णहतानिति ॥ ३१ ॥
 तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतो कनकस्य तो ।
 धीरुवाश्वहनुश्चैव धीरो तावथ गृञ्जिर्मो ॥ ३२ ॥
 श्यामपुत्रः शमीरुस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
 जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप स ॥ ३३ ॥
 अजातशत्रु शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशन ।
 वसुदेवसुतान् धीरान् कीर्त्तयिष्याम्यस्य परम् ॥ ३४ ॥
 वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाप महोजसम् ।
 धारयन् विपुल वश नानर्थैरिह युयते ॥ ३५ ॥
 या पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गना ।
 पौरवी रोहिणी नाम मतिरादिस्तथापरा ॥ ३६ ॥
 वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
 सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥ ३७ ॥
 वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
 सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिवारिके ॥ ३८ ॥
 पौरवी रोहिणी नाम बाहिरुस्यात्मजामवत् ।
 ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभे ॥ ३९ ॥
 लेभे ज्येष्ठ सुत राम शरण्य शठमेव च ।
 दुर्दम दमन शुभ्र पिण्डारकमुशीनरम् ॥ ४० ॥

चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव ।
 चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमा ॥ ४१ ॥
 वसुदेवाश्च देवक्या जज्ञे शौरिर्महायशा ।
 रामाश्च निशठो जज्ञे रेवत्या दयित सुत ॥ ४२ ॥
 सुभद्राया रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
 अक्रूरात्काशिकन्याया सत्यकेनुरजारत ॥ ४३ ॥
 वसुदेवस्य भाव्यासु महाभागासु सप्तसु ।
 ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा समस्तास्तान्निघोधत ॥ ४४ ॥
 भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ ।
 वृकदेव सुनामाया गदश्चास्ता सुतावुभौ ॥ ४५ ॥
 अगावह महात्मान वृकदेवा व्यजायत ।
 कन्या त्रिगत्तराजस्य भाव्या वै शिशिरायणे ॥ ४६ ॥
 जिहासा पौरुषे चक्रे न चस्कन्दे च पौरुषम् ।
 वृष्णायससमप्रख्या वर्षे द्वादशमे तथा ॥ ४७ ॥
 मिथ्यामिशस्तो गार्ग्यस्तु मन्थुनातिसमीरित ।
 घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे ॥ ४८ ॥
 गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीपेशधारिणा ।
 धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम् ॥ ४९ ॥
 मानुष्या गर्गभाव्याया नियोगाच्छूलपाजित ।
 स कालवधनो नाम यज्ञो राजा महाबल ॥ ५० ॥
 वृत्तपूर्व्यार्द्धकायस्तु सिंहसदनो युवा ।
 मपुत्रस्य स राहस्तु घवृधेऽन्त पुरे शिशु ॥ ५१ ॥

यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत् ।

आयुध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्विजोत्तम् ॥ ५२ ॥

वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः ।

अर्शोहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा ॥ ५३ ॥

दूतं सम्रेपयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ।

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरम्भृत्य महामतिम् ॥ ५४ ॥

समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य मयात्तदा ।

दृष्ट्वा विनिश्चर्य सर्वे पलायनमरोचयन् ॥ ५५ ॥

विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिताकिनम् ।

कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुर्माप्सवः ॥ ५६ ॥

इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियनेन्द्रियः ।

पर्य्यमु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्राह्म मद्रापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्तनं

नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

वृष्णिवंशवर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

श्रोशारयामवन् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।

षार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वार्हि स्वाहाहृता धरम् ॥ १ ॥

स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उपद्रुगुर्वदतां घरः ।
 महाक्रतुमिरीजे यो विविधैर्भूर्दिक्षिणैः ॥ २ ॥
 ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उपद्रुगुःसोऽग्यमात्मजम् ।
 जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३ ॥
 आसीच्चैत्ररथिवीरो यज्वा विपुलदक्षिणः ।
 शशविन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४ ॥
 पृथुश्रवाः पृथुयशा राजासीच्छशविन्दवः ।
 शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्यश्रवसमन्तरम् ॥ ५ ॥
 अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत् ।
 उपतो यज्ञमखिलं स्वधर्मं च कृतादरः ॥ ६ ॥
 शिनेयुरभवत् पुत्र उपतः शत्रुतापनः ।
 मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः ॥ ७ ॥
 मरुतोऽलमत ज्येष्ठं सुतं कम्वलवर्हिषम् ।
 चचार विपुलं धर्मममर्षात् प्रेत्यभागपि ॥ ८ ॥
 स सत् प्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्वलवर्हिषः ।
 यभूव रुक्मकघचः शतप्रसवतः सुतः ॥ ९ ॥
 निहत्य रुक्मकघचः शतं कचचिनां रणे ।
 घन्चिनां निशितैर्याणैरघाप त्रियमुत्तमाम् ॥ १० ॥
 जज्ञे च रुक्मकघचात् पराजित्परघोरहा ।
 जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महाधीर्याः पराजिताः ॥ ११ ॥
 रुक्मेपुः पृथुख्यमश्च उयामघः पालितो हरिः ।
 पालितं च हरिं चैप विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥ १२ ॥

रुक्मपुरमद्राजा पृथुर्व्यमस्य संश्रयान् ।
 ताम्यां प्रत्राजितो राजा ज्यामघोऽवमदाश्रमे ॥ १३ ॥
 प्रथान्तरुच तदा राजा ब्राह्मणैर्ग्वैररोचिनः ।
 जगाम घनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथा ॥ १४ ॥
 नर्मदाकुलमेकाकोमेखला मृत्तिकावतीम् ।
 ऋक्षवन्त गिरिं जित्वा शुक्तिमथ्यामुचास सः ॥ १५ ॥
 ज्यामघस्यामवद्गार्था शैश्या चलन्तो सती ।
 अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्या भार्यामचिन्दत ॥ १६ ॥
 तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
 भार्यामुवाच सन्नस्तः स्तुपेति स जनेश्वर ॥ १७ ॥
 एतच्छ्रुत्वाप्रवीदेवी कम्य देव स्तुपेति वै ।
 अत्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

यस्मिन्ने जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपपादिता ॥ १९ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

उप्रेण तपसा तस्याः कन्याया सा व्यजायत ।
 पुत्रं चिदमं सुमगा शैश्या परिणता सती ॥ २० ॥
 राजापुत्र्यांतुविद्वासी स्तुपायां क्रयकैशिकी ।
 पश्चाद्विदर्मोऽजतयच्छूरी रणविशारदी ॥ २१ ॥
 मीमो चिदर्मस्य सुतः कुन्तिल्लस्यात्मजोऽभवत् ।
 कुन्तेधृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

धृष्टस्य जज्ञिरे श्रास्त्रय परमधामिकाः ।

भावन्तश्च दशार्हश्च यली विपहरश्च सः ॥ २३ ॥

दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योमनो जीमूत उच्यते ।

जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः ॥ २४ ॥

अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ।

तस्य चासौदशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ २५ ॥

तस्मात्करम्मः कारम्मिर्देघरातोऽभवन्नृपः ।

देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशाः ॥ २६ ॥

देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ।

मधूनां वंशहृद्राजा मधुर्मधुरचागपि ॥ २७ ॥

मधोर्जतेऽथ वैदव्यां पुढ्वान्गुरुपोत्तमः ।

पेक्ष्वाकी चामघद्वाव्या मयोऽऽऽतां व्यजायत ॥ २८ ॥

सत्वान् सव्यगुणोपेतः सात्वतां कीर्त्तिवर्द्धनः ।

इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ॥

युज्यते परमप्रोत्या प्रजायांश्च भवेन् सदा ॥ २९ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

सत्वतः सत्वसम्पन्नान् कौशल्या सुपुत्रे सुतान् ।

भागिनं भजमानं च दिव्यं देवावृषं नृपम् ॥ ३० ॥

अन्धकं च महाबाहुं घृष्णिं च यद्गुनन्दनम् ।

तेषां पितृर्गाश्चत्वारो पिस्तरेणेह कीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥

भजमानस्य सृज्यते पापकायोपयागका ।

आस्तां भार्ग्यं त गोस्तस्माज्जैरैवहयःसुताः ॥ ३२ ॥

क्रिमिश्च क्रमगन्धैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः ।
 एते घाहकसृञ्जय्या भजमानाद्विजशिरे ॥ ३३ ॥
 अयुताजिन् सहस्राजिचुता जित्वथ दासकः ।
 उपवाहकसृञ्जय्या भनमानाद्विनजिरे ॥ ३४ ॥
 यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुल तपः ।
 पुत्र सत्त्वगुणोपेतो मम म्यादिति निश्चितम् ॥ ३५ ॥
 संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन् ।
 सदीपम्पृरातस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ३६ ॥
 चिन्तयामिपरीता सा न जगामैव निश्चयम् ।
 कल्याणत्वानरपतेस्तस्या सा निम्नगोत्तमा ॥ ३७ ॥
 नाध्यगच्छन्नुता नारी यस्यामेव विधुः सुतः ।
 भवेत्तस्मान् स्वयं गत्या भवाम्यस्य सहानुगा ॥ ३८ ॥
 अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रती परमं वपुः ।
 धरयामास नपति नामियेय च स प्रभुः ॥ ३९ ॥
 तस्यामाद्यत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः ।
 अथ सा दशमे मासि सुपुत्रे सरिता धरा ॥ ४० ॥
 पुत्रं सत्त्वगुणोपेतं धर्मं देवावृधं द्विजाः ।
 अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति पठिन्नमः ॥ ४१ ॥
 गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महान्मनः ।
 यथैवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकान् ॥ ४२ ॥
 वसु श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
 पृथिश्च पट्टं च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥ ४३ ॥

पतेऽमृतत्व प्राप्ता वै घम्रोदवावृधादपि ।
 यज्वा दानपतिर्धोमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥ ४४ ॥
 तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये मार्त्तिकावताः ।
 अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलमतात्मजान् ॥ ४५ ॥
 कुकुरं भजमानं च ससकं बलवाहिपम् ।
 कुकुरस्य सुतो वृष्टिवृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥ ४६ ॥
 कपोतरोमा तस्याथ तिलिरिस्तनयोऽभवत् ।
 जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादमिजिच्च पुनर्व्वसोः ॥ ४७ ॥
 तथा वै पुत्रमिथुनं बभुवाभिजितः किल ।
 आहुकः श्राहुकश्चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ॥ ४८ ॥
 इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ।
 श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमोमहान् ॥ ४९ ॥
 अशीतिवर्मणा युक्त आहुकः प्रथमं व्रजेत् ।
 नापुत्रघान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः ॥ ५० ॥
 नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ।
 पूर्व्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥ ५१ ॥
 सोमात्सङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सचरुधिनाम् ।
 रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥ ५२ ॥
 रौप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः ।
 तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥ ५३ ॥
 आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति उयाकिङ्किणीकिनः ।
 आहुः किं चाप्यघन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ॥ ५४ ॥

आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्यभूवतुः ।
 देवकस्यामवन् पुत्राश्चन्वारस्त्रिदशोपमाः ॥ ५५ ॥
 देवानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥ ५६ ॥
 कुमार्यः सप्त चास्याथ वसुदेवाय ता ददौ ।
 देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देयरक्षिता ॥ ५७ ॥
 धृकदेव्युपदेवा च मुनार्मा चैव सप्तमी ।
 नवोप्रसेनस्य सुतास्तेषां कसस्तु पूर्वजः ॥ ५८ ॥
 न्यप्रोधश्च सुनामा च तथा कड्कः समूषणः ।
 राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥ ५९ ॥
 तेषां स्वसारः पञ्चासन् कामा कसवती तथा ।
 सुतनू राष्ट्रपाली च कड्का चैव वराङ्गना ॥ ६० ॥
 उपसेन सहापत्यो व्याप्यातः कुकुरोद्धवः ।
 कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ॥ ६१ ॥
 आत्मनो चिपुलं वंशं प्रजावानाप्युयान्नरः ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहा महापुराणे वृष्णिवंशानिरूपणं नाम
 पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

तत्रादौ सत्राजिदुपास्यानर्णनम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथ ।
राजाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥ १ ॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे धीर्ष्यवत्तरा ।
दत्तातिदत्तौ घलिनी शोणाश्च श्रेतवाहन ॥ २ ॥
शमी च दण्डशर्मा च दन्तरात्रुश्च शत्रुजित् ।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारी सम्यभूवतु ॥ ३ ॥
शमिपुत्र प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मज ।
स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्बृहदिक सम्यभूव ह ॥ ४ ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमा ।
कृतवर्माप्रजस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ॥ ५ ॥
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च य ।
सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्य कामदम्भक ॥ ६ ॥
देवस्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्पलवर्हिष ।
बसमौजा सुनस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ ॥ ७ ॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे ।
सुदप्त्रश्च सुचाक्षश्च कृष्ण इत्यन्धका स्मृता ॥ ८ ॥
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्थ्ये बभूवतु ।
गान्धारी जनयामास अनमित्र महाबलम् ॥ ९ ॥

माद्री युधाजित पुत्र ततो वै देवमीदृशम् ।
 अनमित्रममित्राणा जेतारमपराजितम् ॥ १० ॥
 अनमित्रसुतो निन्नो निन्नतो द्वौ यमूयतु ।
 प्रसेनश्वाय सत्राजिच्छत्रुसेनाजितायुर्मा ॥ ११ ॥
 प्रसेनो द्वारवत्या तु निवसन् ये महामणिम् ।
 दिव्य स्यमन्तक नाम स सूर्याद्भुपलघवान् ॥ १२ ॥
 तस्य सत्रानित सूर्यं यथा प्राणसमोऽभवत् ।
 स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिना वरः ॥ १३ ॥
 तोयकृन्मप प्रष्टुमुपम्यातु ययो रविम् ।
 तस्योपतिष्ठत् सूर्यं विचम्बानप्रत स्थित ॥ १४ ॥
 विस्पष्टमूर्त्तिमगवान्नेजोमण्डलवान् विभु ।
 अथ राजा विवस्वन्तमुधाच स्थितमप्रत ॥ १५ ॥
 यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते ।
 नेजोमण्डलिन देव तथैव पुरत स्थितम् ॥ १६ ॥
 को विशेषोऽस्ति मे त्यक्त सद्येनोपगतस्य वै ।
 एतच्छन्वा तु भगवान्मणिरत्न स्यमन्तकम् ॥ १७ ॥
 म्चकण्ठाद्वमुच्यथा एकान्ते न्यस्तवान् विभु ।
 ततो विप्रह्वन्त त ददर्श नपतिम्भवा ॥ १८ ॥
 प्रीतिमानथ त दृष्ट्वा मुहूर्त्तं हृतवान् कथाम् ।
 तमभिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स सत्रजित् ॥ १९ ॥
 लोकान् मासयसे सर्वान् येन त्व सतत प्रभो ।
 तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ २० ॥

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा ।
 स तमावध्य नगरीं प्रविशेश महीपतिः ॥ २१ ॥
 तं जनाः पर्यधावन्तः सूर्योऽयं गच्छतीति ह ।
 स्वां पुरीं स विसिष्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा ॥ २२ ॥
 तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
 ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तम् ॥ २३ ॥
 स मणिं स्थन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।
 कालवर्षो च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥ २४ ॥
 लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके ।
 गोविन्दो न च तं लेभे भक्तोऽपि न जहार सः ॥ २५ ॥
 कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूपितः ।
 स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप घनेचरात् ॥ २६ ॥
 अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः ।
 निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशद्गुह्याम् ॥ २७ ॥
 ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनघघकारणात् ।
 प्रार्थनां तां मणेरुदुध्या सर्व्व एव शशङ्किरे ॥ २८ ॥
 स शङ्क्यमानो धर्मात्मा अकारी तस्य कर्मणः ।
 आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय धनं ययी ॥ २९ ॥
 यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ ।
 प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३० ॥
 ऋक्षवन्तं गिरिघरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् ।
 अन्वेषयन् परिभ्रान्तः स ददर्श महामताः ॥ ३१ ॥

साद्यं हतं प्रसेनं तु नाचिन्दत च तन्मणिम् ।
 यय सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३२ ॥
 ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु मूत्रितः ।
 पदैस्तैरन्वियायाय गुहामृक्षस्य माघवः ॥ ३३ ॥
 स हि ऋक्षविले चाणी शुभ्राय प्रमदेरिताम् ।
 घात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥ ३४ ॥
 क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यधेरिताम् ।

घात्रुवान् ।

सिंहः प्रसेनप्रवर्धीन् सिंहो जाम्बवता हतः ।
 सुकुमारक मा रोदीस्तत्र ह्येष स्यमन्तकः ॥ ३५ ॥
 व्यक्तित्मस्य शब्दस्य तूर्णमेव विलं ययी ।
 प्रविश्य तत्र भगवांस्तदृक्षविलमञ्जसा ॥ ३६ ॥
 म्यापयित्वा विलङ्कारे यदृष्ट्वाङ्गलिता सह ।
 शार्ङ्गधन्वा विलस्थं तु जाम्बवन्नं ददर्श सः ॥ ३७ ॥
 युयुधे घामुदेवस्तु विले जाम्बवता सह ।
 पादुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविरातिम् ॥ ३८ ॥
 प्रविष्टेऽय विले कृष्णे बलदेवपुरःसराः ।
 पुरीं द्वारवतीमेव हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ३९ ॥
 घामुदेवोऽपि निजित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
 लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥ ४० ॥
 मणिं स्यमन्तकं चैव जप्राहात्मपिशुद्धये ।
 अनुनीपक्षराजं तु निर्ययी च ततो विलात् ॥ ४१ ॥

उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः ।
 एवं स भणिराहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ॥ ४२ ॥
 ददौ सत्राजितं तं वै सव्वसाराघतसंसदि ।
 एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ॥ ४३ ॥
 आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् ।
 सत्राजितो दश त्वासन् भाय्यास्तासां शत सुताः ॥ ४४ ॥
 ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषामङ्गकारस्तु पूर्वजः ।
 घीरो घातपतिश्चैव घसुमेधस्तथैव च ॥ ४५ ॥
 कुमाय्यश्वापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः ।
 सत्यभामोत्तमा तासां व्रतिनी च दृढव्रता ॥ ४६ ॥
 तथा प्रस्वापिनी चैव भाय्याः कृष्णाय ता ददौ ।
 सभाय्यो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ ॥ ४७ ॥
 जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ।
 माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥ ४८ ॥
 जज्ञाते तनयो वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ।
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भाय्यामविन्दत ॥ ४९ ॥
 गान्दिनीं नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता ।
 तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतघानतिधिप्रियः ॥ ५० ॥
 अकूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः ।
 उपमद्गुस्तथा मदुगुर्मुदरश्चारिमर्दन ॥ ५१ ॥
 आरिक्षेपस्तयोपेक्ष शत्रुहा चारिमेजयः ।
 धर्मभृद्वापि धर्मां च गृध्रभोजान्धकस्तथा ॥ ५२ ॥

आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ ५३ ॥
 विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या चास्य वसुन्धरा ॥ ५४ ॥
 रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्यसत्त्वमनोहरा ।
 अमूरैणोप्रसेनायां सुतो वै कुलनन्दनो ॥ ५५ ॥
 वसुदेवश्चोपदेवश्च जजाने देववर्चसा ।
 चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ॥ ५६ ॥
 अश्वघ्रीवोऽश्ववाहुश्च सुपार्श्वकगवेषर्जा ।
 अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभृदेव च ॥ ५७ ॥
 सुवाहुर्यहुवाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रिया ।
 इमां मिथ्यामिशस्तिं यः कृष्णम्य समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥
 वेद मिथ्यामिशापान्तं न स्पृशन्ति वदाचन ॥ ५९ ॥

इति स्यमन्तकप्रन्यायनयननिष्पण नाम

पौडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

स्यमन्तकोपाख्यानवर्णनम्

॥ १ ॥ लोमहर्षण उवाच ।

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।

ददायद्वाप्यदुवभ्रुमोज्जेन शतघन्त्रता ॥ १ ॥

सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।
 अक्रूरोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥ २ ॥
 सप्राजितं ततो हत्या शतधन्वा महाबलः ।
 रात्रौ त मणिमादाय तनोऽक्रूराय दत्तवान् ॥ ३ ॥
 अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम् ।
 समयं कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत ॥ ४ ॥
 घयमभ्युन्प्रपन्सुरामः कृष्णेन त्वां प्रधर्षितम् ।
 ममाद्य द्वारका सर्वा घसे तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ५ ॥
 हते पितरि दु खार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी ।
 प्रययौ रथमारुह्य नगरं चारणाद्यतम् ॥ ६ ॥
 सत्यभामा तु तदुष्ट भोजस्य शतधन्वनः ।
 भर्तुर्निषेध दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाभ्रूण्यवर्त्तयत् ॥ ७ ॥
 पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्योदकक्रियाम् ।
 पुत्र्यार्थं चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम् ॥ ८ ॥
 ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मभ्यसूतनः ।
 पूर्वज्ञं हृदिनं धीमानिदं घवनमग्रपीत् ॥ ९ ॥

धीरुष्ण उवाच ।

हतः प्रमेनः मिहेन सप्राजिच्छतधन्वना ।
 स्यमन्तकस्तु मनुगामो तस्य प्रभुरह विभो ॥ १० ॥
 तदारोह रथं शीघ्रं मोक्षं हत्या महारथम् ।
 स्यमन्तको महाबाहो भस्मार्कः स भविष्यति ॥ ११ ॥

लामहर्षेण उवाच ।

तत प्रवृत्ते युद्ध तुमुल भोजगणयो ।

शतधन्या ततोऽनूर सर्गतोदिशमैक्षत ॥ १० ॥

सरद्धौ तापुर्भौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दना ।

शक्तोऽपि शापाद्भार्दिक्यमनूरो नान्वपद्यत ॥ १३ ॥

अपयाने ततो बुद्धि भोजश्चक्रे भयार्दित ।

योजनाना शन साग्र हृदया प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥

विप्रायाता हृदया नाम शतयोजनगामिनी ।

भोजस्य चडवा विप्रा ययौ वृणमयोधयत् ॥ १५ ॥

क्षीणा जपेन हृदयामचन शतयोजने ।

दृष्ट्वा रथस्य स्वा बुद्धि शनधन्यानमर्दयत् ॥ १६ ॥

ततस्तस्या हतायान्तु ध्रमात् गेडाश्च भो द्विजा ।

समुत्पेतुरथ प्राणा वृणो राममथाप्रवीत् ॥ १७ ॥

तिष्ठेह तत्र महागहो दृष्ट्रोपा हता मया ।

पद्भ्या गन्वा हरिष्यामि मणिरत्न स्यमन्तरुम् ॥ १८ ॥

पद्भ्यामेव ततो गन्वा शनधन्यानमच्युत ।

मिथिलाममितो विप्रा जघान परमात्रयिन् ॥ १९ ॥

स्यमन्तरु च नापश्यद्धत्वा भोज महायत्नम् ।

निरुत्त चाप्रवीत् वृण मणि देहीति लाङ्गली ॥ २० ॥

नास्तोति वृणान्वोयाच ततो रामो रुयान्वित ।

धिक्शब्दपूर्वमसृत् प्रन्युषाच जनार्दनम् ॥ २१ ॥

बलराम उवाच ।

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ।
 कृत्यं मे द्वारकाया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥ २२ ॥
 प्रचिवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ।
 सर्व्यकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥ २३ ॥
 पतस्मिन्नेव काले तु घन्नुर्मतिमतां वरः ।
 नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निर्गलान् ॥ २४ ॥
 दीक्षामयं स कथंचं रक्षार्थं प्रचिवेश ह ।
 स्यमन्तकरुते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥ २५ ॥
 अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च ।
 पष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा यज्ञोऽप्येव न्ययोजयत् ॥ २६ ॥
 अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
 षड्ब्रह्मदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥ २७ ॥
 अथ दुष्येधनो राजा गत्वा स मिथिलां प्रभुः ।
 गदाशिक्षां ततो दिव्यां यत्तद्देवादघाप्तवान् ॥ २८ ॥
 स्वप्रसाद्य ततो रामो मृष्यन्धकमहाशयैः ।
 आनीतो द्वारकामेय कृष्णेन च महात्मना ॥ २९ ॥
 अक्रूरध्वान्धशैः सार्द्धमायातः पुरयर्धमः ।
 हृत्वा सत्राजितं सुप्तं सदपन्धुं महायत्नः ॥ ३० ॥
 आतिभेदमयात्कृष्णस्तमुपेक्षितयांस्तदा ।
 धपवाने तदाक्रूरं नापयत्पापशामनः ॥ ३१ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ।
भारतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥ १ ॥
देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥ २ ॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ।
विधिधाश्च कथा दिव्या जन्म चाग्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते ।
प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसांतथा ॥ ४ ॥
स्थायरं जङ्गमं सर्वमुत्पन्नं विविधं जगत् ।
त्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुत्वा चैतन्मनोहरम् ॥ ५ ॥
कथितं पुण्यफलदं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा ।
मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम् ॥ ६ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकलं मण्डलं भुवः ।
पकुमर्हसि सर्व्वज्ञ परं फौतूहलं हि नः ॥ ७ ॥
यापन्तः सागरा द्वीपास्तथा घर्षाणि पर्व्वताः ।
घनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते ॥ ८ ॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं यदात्मकम् ।
संस्थानमस्य जगतो यथावद्वकुमर्हसि ॥ ९ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

भुवनः श्रूयतामेतन् संश्लेषाद्भटनो मम ।

नाम्य धर्षशनेनापि वक्तुं शक्याऽतिविस्तरः ॥ १० ॥

जम्बूद्वीपश्चाहर्षो द्वीपो शात्मलश्चापरो द्विजाः ।

कुन्दाः कौञ्चस्तथा शाक पुष्करश्चैव सतम ॥ ११ ॥

एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सतसतभिरावृताः ।

लवणेश्चुमुरासर्पिर्दाधिदुग्धजलैः समम् ॥ १२ ॥

जम्बूद्वीपः समस्नानामेतेषा मध्यसंस्थितः ।

तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्रा मेरु कनरुपर्जितः ॥ १३ ॥

चतुष्प्रीतिसाहस्रैर्योजनैस्तम्य चांक्षुय ।

प्रविष्टः षोडशसहस्राद्द्वारिशन्मूर्ध्नि विस्तृत ॥ १४ ॥

मृत्ते षोडशसहस्रैर्विस्तारस्तम्य सञ्चतः ।

भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ १५ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निवधस्तम्य दक्षिणे ।

नीलः श्रेतश्च शृङ्गी च उत्तरे धर्षपर्वता ॥ १६ ॥

लक्षप्रमाणो द्वी मध्ये दशहानास्तथापरे ।

सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ १७ ॥

भारतं प्रथमं धर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ।

हरियं तथैवान्यम्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ॥ १८ ॥

रम्यकं चोत्तरं धर्षं तस्यैव तु हिरण्मयम् ।

उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारत तथा ॥ १९ ॥

नवसाहस्रमेकैकमेतेषा द्विजसत्तमा ।
 इलावृत च तन्ध्ये सौवर्णो मेरुच्छिद्रत ॥ २० ॥
 मेरोश्चतुर्दिश तत्र नवसाहस्रविस्तृतम् ।
 इलावृत महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्वता ॥ २१ ॥
 विष्कम्भा वितता मेरोर्योजनायुतविस्तृता ।
 पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादन ॥ २२ ॥
 विपुल पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थित ।
 कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो घट एव च ॥ २३ ॥
 एकादशशतायामा पादपा गिरिकेतव ।
 जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्द्विजोत्तमा ॥ २४ ॥
 महागजप्रमाणानि जम्बास्तस्या फलानि वै ।
 पतन्ति भूभृत पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्व्वत ॥ २५ ॥
 रसेन तेषा विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ।
 न खेदो न च दौर्गन्ध्य न जरा नेन्द्रियक्षय ॥ २६ ॥
 तत्पानस्वस्थमनसा जनाना तत्र जायते ॥ २७ ॥
 तीरमृत्तद्रस प्राप्य मुखवायुचिशोपिता ।
 जाम्बूनदाख्य भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥ २८ ॥
 भद्राश्व पूर्व्वतो मेरो केतुमालञ्च पश्चिमे ।
 वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये त्विलावृतम् ॥ २९ ॥
 घन चैत्ररथ पूर्व्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
 वैभ्राज पश्चिमे तद्दुत्तरे नन्दन स्मृतम् ॥ ३० ॥
 अरुणोद् महाभद्रमसितोदं समानसम् ।
 सरास्येतानि चत्वारि देवमोग्यानि सर्व्वदा ॥ ३१ ॥

शान्तवांश्चक्रुश्च कुररी माल्यवास्तथा ।
 वैकड्कप्रमुखा मेरो पूर्वंत केसराचला ॥ ३२ ॥
 त्रिकूट शिशिरश्चैत्र पतद्गो रुचक्रस्तथा ।
 निपधादयो दक्षिणतस्तस्य केमरपर्यता ॥ ३३ ॥
 शिखिवास सर्वैर्दृष्य कपिलो गन्धमादन ।
 जाराधिप्रमुखान्तद्भत् पश्चिमे केमराचला ॥ ३४ ॥
 मेरोरनन्तरास्ते च जडगटिष्वचम्विता ।
 शङ्खकूर्टाऽथ ऋषभो हसो नागस्तथापरा ॥ ३५ ॥
 कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचला ।
 चतुर्दश सहस्राणि योजनाना महापुरी ॥ ३६ ॥
 मेरोरपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मण कथिता दिवि ।
 तस्या समन्ततश्चाष्टौ देशान्मु विदिशामु च ॥ ३७ ॥
 इन्द्रादिलोरुपालाना प्रयाता प्रवरा पुर ।
 विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥
 समन्ताद्ब्रह्मण पुष्यां गङ्गा पतति त्रै दिवि ।
 सा तत्र पतिता दिशु चतुर्धा प्रन्यपद्यत ॥ ३९ ॥
 सीता चालकनन्दा च चक्षुर्मन्त्रा च वै क्रमान् ।
 पूर्व्येण सीता शीलाश्च शैव यान्त्यन्तरिक्षगा ॥ ४० ॥
 ततश्च पूर्व्यवर्षेण मद्राश्वेनेति सार्णवम् ।
 तथैवालकनन्दा च दक्षिणेनेत्य भारतम् ॥ ४१ ॥
 पयाति सागर भूत्या मप्तमेदा द्विजोत्तमा ।
 चक्षुध पश्चिमगिरीनतीत्य सकलाम्बत ॥ ४२ ॥

पश्चिमं केतुमालाख्यं घर्षमन्वेति सार्णवम् ।
 भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ॥ ४३ ॥
 अनीत्योत्तरमग्भोधिं समभ्येति द्विजोत्तमाः ।
 आनीलनिपधायामौ माल्यघट्टगन्धमादनौ ॥ ४४ ॥
 तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसस्थितः ।
 भारताः केतुमालाश्च भद्राश्च कुरुवस्तथा ॥ ४५ ॥
 पत्राणि लोकशैलाख्य मर्यादाशैलघाहतः ।
 जठरो देवटकूश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥ ४६ ॥
 तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपधायतौ ।
 गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चात्तु तावुभौ ॥ ४७ ॥
 अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।
 निपथः पारियात्रश्च मर्यादापर्वतावुभौ ॥ ४८ ॥
 तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपधायतौ ।
 मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूङ्गोतथा स्थितौ ॥ ४९ ॥
 त्रिशृङ्गो जारु धिरचेय उत्तरो वर्षपर्वतौ ।
 पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ५० ॥
 इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्यादापर्वताद्विजाः ।
 जठरावस्थिता मेरोय्यया द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ॥ ५१ ॥
 मेरोश्चतुर्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्वताः ।
 सीतान्ताद्या द्विजास्तेषामतीव हि मनोहराः ॥ ५२ ॥
 शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ।
 सुरग्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ॥ ५३ ॥

लक्ष्मीविष्णवग्निसूर्य्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः ।
 तास्वायतनवर्षाणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ॥ ५४ ॥
 गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवा ।
 क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ॥ ५५ ॥
 भौमा ह्येते स्मृता सर्गा धर्मिणामालया द्विजाः ।
 नेतेषु पापकर्त्तारो यान्ति जन्मशतैरपि ॥ ५६ ॥
 भद्राश्रे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विजाः ।
 वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक् ॥ ५७ ॥
 मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः ।
 विश्वरूपेण सर्वत्र सद्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥ ५८ ॥
 सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजाभ्रास्तेऽपिलात्मकः ।
 यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमाः ॥ ५९ ॥
 न तेषु शोकानायासो नोद्वेग शुद्धयादिकम् ।
 सुस्था प्रजा निरातङ्का सर्व्वदुःखविचर्जिता ॥ ६० ॥
 दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ।
 नेतेषु भौमान्यन्यानि श्रुत्पिपासादिनि द्विजाः ॥ ६१ ॥
 एतन्नेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ।
 सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥ ६२ ॥
 नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तमाः ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं
 नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।
 वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्तति ॥ १ ॥
 नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजात्तमा ।
 कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥ २ ॥
 महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्वत ।
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वता ॥
 शत स्रग्पापरते श्वर्गो मुक्तिमस्माद्दृश्याति नै
 तिर्यक्कृत्व नरकं चापि यान्त्यत पुण्या द्विजा ॥
 इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मभ्य चान्ते च गच्छति ।
 न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥ ५ ॥
 भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ।
 इन्द्रद्वीपं कसेरुमास्तान्नपणो गभस्तिमान् ॥ ६ ॥
 नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुण ।
 अथ तु नवमस्ते
 योजनाना सह
 पूर्वं किराताः ॥ ७ ॥

शतद्रुच द्रभागाद्या हिमवत्पादनि सूता ।
 वेदस्मृतिमुद्याश्चान्या पारियात्रोद्भवा मुने ॥ १० ॥
 नर्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनि सूता ।
 तापापयोष्णीनिर्गन्ध्याकावेराप्रमुद्या नदी ॥ ११ ॥
 ऋक्षपादोद्भवा ह्येता श्रुता पाप हरन्ति या ।
 गोदावराभीमरर्थाट्टण्णात्रेण्यादिकास्तथा ॥ १२ ॥
 सह्यपादोद्भवा नद्य स्मृता पापमयापहा ।
 हनमालाताम्रपर्णीप्रमुद्या मलयोद्भवा ॥ १३ ॥
 त्रिसन्ध्यऋषिकुट्याद्या महेन्द्रप्रभवा स्मृता ।
 ऋषिकुत्यामुमाराद्या शुक्तिमत्पादसम्भवा ॥ १४ ॥
 व्यासा नगुपनद्यश्च सन्त्यन्धास्तु सहस्रश ।
 तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जना ॥ १५ ॥
 पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिन ।
 प्रोक्ता कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च स वंश ॥ १६ ॥
 तथापरान्त्या सौराष्ट्रा शूद्राभीरास्तथाऽन्बुदा ।
 मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिन ॥ १७ ॥
 सौरारा सैन्धवापना शात्वा शाकलवासिन ।
 मद्रारामास्तथाम्बष्टा पारसीकादयस्तथा ॥ १८ ॥
 व्यासा पितृन्ति सलिल वसन्ति सरिता सदा ।
 समोपेता महाभागा हृष्टपुण्ड्रनाकुला ॥ १९ ॥
 वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
 हन त्रेता द्वापर च कलिश्चाप्यत्र न क्वचित् ॥ २० ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजात्तमाः ।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥ २ ॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ ३ ॥
शतः सम्प्राप्यते स्वर्गे मुक्तिमस्मात् प्रयाति वै ।
तिर्य्यक्कृत्यं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा द्विजाः ॥ ४ ॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्ते च गच्छति ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते ॥ ५ ॥
भारतस्यास्य घर्षस्य नव भेदान्निशामय ।
इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रपणो गभस्तिमान् ॥ ६ ॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्व्वस्तथ चाहणः ।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ ७ ॥
योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरात् ।
पूर्व्वे किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यचनाः स्थिताः ॥ ८ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धयणिज्याद्यवृत्तिमन्तो व्यवस्थिताः ॥ ९ ॥

शनद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनि सूताः ।
 वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥ १० ॥
 नर्मदासुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः ।
 तापीपयोष्णीनिधिर्वन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदीः ॥ ११ ॥
 ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः ।
 गोदावरीमीमरथ्याकृष्णाविण्यादिकास्तथा ॥ १२ ॥
 सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापमयापहाः ।
 रुन्मालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥ १३ ॥
 त्रिसन्ध्यऋषिकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
 ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥ १४ ॥
 आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रशः ।
 ताम्बिमे कुरपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥ १५ ॥
 पूर्वदेशादिकाश्चैव कामम्पनिवासिनः ।
 प्रोक्ताः कलिङ्गा मगधा दक्षिणात्याश्च सर्वशः ॥ १६ ॥
 तथापरान्त्याः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथाऽर्बुदाः ।
 माहका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ॥ १७ ॥
 सौवीराः सैन्धवापन्नाः शाल्याः शाकलवासिनः ।
 मद्रारामाम्थयाम्बुष्टाः पारसीकादयस्तथा ॥ १८ ॥
 आसां पितृन्ति सलिलं वमन्ति सरितां सदा ।
 समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥ १९ ॥
 पसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
 इतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चाप्यत्र न क्वचित् ॥ २० ॥

तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।

दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ २१ ॥

पूरुषैर्यज्ञपुद्गमो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।

यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥ २२ ॥

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।

यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥ २३ ॥

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।

कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंक्षयात् ॥ २४ ॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,

धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूने,

भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥ २५ ॥

कर्मार्ण्यसंकल्पिततत्फलानि,

सन्यस्य विष्णो परमात्मरूपे ।

अथाप्य तां कर्ममहीमनन्ते,

तन्मिदल्लयं ये हवमात्राः प्रयान्ति ॥ २६ ॥

जानीम नो सत्तयं विलीने,

स्वर्गप्रदे कर्मणि देहयन्धम् ।

प्राप्स्यन्ति धन्याः पालु ते मनुष्या,

ये भारतेनेन्द्रियविप्रहीनाः ॥ २७ ॥

नपपयंश्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया ।

स्युषोऽजतविस्तारं संशेषात् कथितं क्रिजाः ॥ २८ ॥

जम्बूद्वीप समावृत्य लक्षयोजनविस्तर ।

सो द्विजा बलयाकार स्थित क्षारोदधिर्बहि ॥ १६ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपण

नामैकोनविंशोऽध्याय ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः ।

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसज्जोऽभिप्रेषित ।

सत्रेऽप्यक्षारमुदधि प्लक्षद्वापन्तथा स्थित ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपस्य विस्तार शतसाहस्रसम्मित ।

स एव द्विगुणो विप्रा प्लक्षद्वापेऽप्युदाहृत ॥ २ ॥

सप्त मेधातिथे पुत्रा प्लक्षद्वापेश्वरस्य वै ।

श्रेष्ठ शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥

सुखोदयस्तथानन्द शिव क्षेमक एव च ।

ध्रुवश्च सप्तमस्तेषा प्लक्षद्वापेश्वरा हि ते ॥ ४ ॥

पूर्व्यं शान्तमय वर्षं शिशिर सुखद तथा ।

आनन्दश्च शिवञ्चैव क्षेमक ध्रुवमेव च ॥ ५ ॥

मर्ष्यादाकारकास्तेषा तथान्ये वर्षपर्व्वता ।

सप्तैव तेषा नामानि शृणुः मुनिसत्तमा ॥ ६ ॥

गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा ।
 सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥ ७ ॥
 वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः ।
 घसन्ति देवगन्धर्वसहिताः सहितं प्रजाः ॥ ८ ॥
 तेषु पुण्या जनपदा वीरा न म्रियते जनः ।
 नाधयो व्याधयो वापि सर्व्यकालसुखं हि तत् ॥ ९ ॥
 तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणान्तु समुद्रगाः ।
 नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ॥ १० ॥
 अनुतप्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः ।
 अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥ ११ ॥
 एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः ।
 क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥ १२ ॥
 ताः पियन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।
 अघसर्पिणी नदी तेषां न चैषोत्सर्पिणी द्विजाः ॥ १३ ॥
 न तेप्यस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तपु ।
 त्रेतायुगसमः कालः सर्व्यदैव द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
 प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै ।
 पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीघन्त्यनामयाः ॥ १५ ॥
 धर्मधनुर्विधस्तेषु घर्णाश्रमविभागजः ।
 घर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् युधाः प्रवक्षामि घः ॥ १६ ॥
 आर्यकाः कुरघश्चैव विचिश्वा भाघिनश्च ये ।
 विप्रक्षत्रिययैश्चास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥

जम्बूद्वीपप्रमाणन्तु तन्मध्ये सुमहातरुः ।
 प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥
 इज्यते तत्र भगवास्तेर्वर्णैराद्यैकादिभिः ।
 सौमरूपी जगत्क्ष्ण्डा सर्व्व, सर्व्वेश्वरो हरिः ॥ १९ ॥
 प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीप, समावृतः ।
 तथैवेश्वरसोदेन परिवेषानुकारिणा ॥ २० ॥
 इत्येतद्गुणो मुनिश्रेण्याः प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।
 संक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत ॥ २१ ॥
 शाल्मलस्येश्वरो वीरो घण्टुमास्तत्सुता द्विजा, ।
 तेषान्तु नाम सज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै ॥ २२ ॥
 श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमृतो गेहितस्तथा ।
 वेद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः ॥ २३ ॥
 शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेश्वरसोदकः ।
 विस्ताराद्द्विगुणनाथ सर्व्वतः सवृतः स्थितः ॥ २४ ॥
 तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ।
 वर्षामियञ्जरास्ते तु तथा सप्तैव निम्नगाः ॥ २५ ॥
 कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः ।
 द्रोणो यत्र मर्द्दापध्यः स चतुर्थो महोधरः ॥ २६ ॥
 कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा ।
 करुदुमान् पर्व्वतवरः सरिन्नामान्यतो द्विजाः ॥ २७ ॥
 श्रोणी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुभ्रा विमोचनी ।
 निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ॥ २८ ॥

श्वेतञ्च लोहितञ्चैव जीमूतं हरितं तथा ।

वैद्युतं मानसञ्चैव सुभभं नाम सप्तमम् ॥ २६ ॥

सप्तैतानि तु घर्षाणि चातुर्व्यर्ण्ययुतानि च ।

घर्षाश्च शाल्मले ये च घसन्त्येषु द्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥

फपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक् ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम् ॥ ३१ ॥

भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम् ।

घायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितम् ॥ ३२ ॥

देवानामत्र साक्षिध्यमतीव सुमनोहरै ।

शाल्मलिश्च महावृक्षो नामनिवृत्तिकारकः ॥ ३३ ॥

एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः ।

विस्ताराच्छाल्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः ॥ ३४ ॥

सुरोदणः परिघृतः कुशद्वीपेण सर्व्वतः ।

शाल्मलस्य तु विस्तारादुद्विगुणेन समन्ततः ॥ ३५ ॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे शृणुध्यं तस्य पुत्रकान् ।

उद्विदो घेणुमांश्चैव स्वैरथो रन्धनो धृतिः ॥ ३६ ॥

प्रभाफरोऽथ फपिलस्तग्राम्ना घर्षपद्धतिः ।

तस्यां घसन्ति मनुजैः सह दैतेयदानयाः ॥ ३७ ॥

तथैव देवगन्धर्षां यक्षकिम्पुण्यादयः ।

घर्षास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥ ३८ ॥

दमिनः शुष्मिणः वनेहा मान्यदास्य द्विजोत्तमाः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ ३९ ॥

यथोक्तकर्मकर्तृत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते ।

तत्र ते तु कुशाद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्दनम् ॥ ४० ॥

यजन्तः क्षपयन्त्यग्रमधिकारफलप्रदम् ।

विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिमांस्तथा ॥ ४१ ॥

कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ।

वर्षाचलान्तु सप्तैते द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः ॥ ४२ ॥

नद्यश्च सप्त तासां तु घक्ष्ये नामान्यनुरुमात् ।

धृतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ॥ ४३ ॥

विद्युदम्भो मर्ही चान्या सत्त्वपापहरास्त्विमाः ।

वन्याः सहस्रशस्तत्र श्रुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥ ४४ ॥

कुशाद्वीपे कुशस्तम्यः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम् ।

तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः ॥ ४५ ॥

घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन सवृतः ।

क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठाः श्रूयता चापरो महान् ॥ ४६ ॥

कुशाद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणो यस्य विस्तरः ।

क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुराः सप्त महात्मनः ॥ ४७ ॥

तत्रामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महामनाः ।

कुशागो मन्दगण्डोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥ ४८ ॥

मुनिश्च दुन्दुमिश्चैव सप्तैते तन्मुता द्विजाः ।

तत्रापि देवगन्धर्व्यसेविताः सुमनोरमाः ॥ ४९ ॥

वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि मो द्विजाः ।

क्रौञ्चश्च चामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥ ५० ॥

देवव्रतो धमश्चैव तथान्य पुण्डरीकवान् ।
 दुन्दुभिश्च महाशैला द्विगुणास्ते परस्परम् ॥ ५१ ॥
 द्वापाद्द्वीपेषु ये शैलास्तथा द्वीपानि ते तथा ।
 वर्षेप्येतेषु रम्येषु वर्षशैलवरेषु च ॥ ५२ ॥
 निवसन्ति निरातङ्का सह देशगणैः प्रजा ।
 पुष्कला पुष्करा धन्यास्ते रथाताश्च द्विजोत्तमा ॥ ५३ ॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चानुक्रमोदिता ।
 तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा या पियान्ति तु ते सदा ॥ ५४ ॥
 सप्त प्रधाना शतशरतथान्या क्षुद्रनिम्नगा ।
 गौरी कुमुदती चैव सन्ध्या रात्रिमनोजवा ॥ ५५ ॥
 रथातिश्च पुण्डरीका न सप्तैता वर्षनिम्नगा ।
 तथापि वर्षैर्मगवान् पुष्कराद्यैर्जनाह्वन ॥ ५६ ॥
 ध्यानयोगै रद्रूप इज्यन्ते यज्ञसन्निधौ ।
 वीश्रवाप समुद्रेण दाधमण्डोदयेन तु ॥ ५७ ॥
 भागृत सत्येन वीश्रवपतु येन मानत ।

तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारकाः ।

पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः ॥ ६२ ॥

तथा रैवतक्रः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिद्विजाः ।

आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ॥ ६३ ॥

शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः ।

यत्पत्रचातसम्पर्शादाहादो जायते परः ॥ ६४ ॥

तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ।

निवसन्ति महात्मानो निरातङ्गा निरामयाः ॥ ६५ ॥

नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः ।

सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका च या ॥ ६६ ॥

इक्षुश्च धेनुका चैव गमस्ती सप्तमी तथा ।

अन्यास्तद्युतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥

महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।

ताः पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः ॥ ६८ ॥

वर्षेषु ये जनपदाश्चतुर्थार्थसमन्विताः ।

नद्यश्चात्र महापुण्याः स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम् ॥ ६९ ॥

धर्महानिर्न तेष्वस्ति न संहर्षो न शुक् तथा ।

मर्ष्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥ ७० ॥

मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।

मगा ग्राहणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियाम्तु ते ॥ ७१ ॥

चैव्यास्त मानसास्तेषां शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगाः ।

शाकद्वीपे स्थितैर्विष्णुः सूर्यरूपधरो हरिः ॥ ७२ ॥

यथोक्तैरिज्यते सभ्यकर्मभिर्नियतात्मभिः ।

शाकद्वीपस्ततो विप्राः क्षीरोदेन समन्ततः ॥ ७३ ॥

शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टितः ।

क्षीराब्धिः सर्वतो विप्राः पुष्कराख्येन वेष्टितः ॥ ७४ ॥

द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ।

पुष्करे सवनस्यापि महावीतोऽभवत् सुतः ॥ ७५ ॥

धातकिञ्च तयोस्तद्वद्वे घर्षे नामसंज्ञिते ।

महावीतं तथैवान्यद्धातकीखण्डसंज्ञितम् ॥ ७६ ॥

एकश्चात्र महाभागाः प्रख्यातो घर्षपर्वतः ।

मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो बलयाकृतिः ॥ ७७ ॥

योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।

तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ॥ ७८ ॥

पुष्करद्वीपबलयं मध्येन विभजन्निव ।

स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नंजातं घर्षद्वयं हि सत् ॥ ७९ ॥

बलयाकारमेकैकं तयोर्मध्ये महागिरिः ।

दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ॥ ८० ॥

निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः ।

अधमोत्तमो न तेष्वास्तां न घध्यवधकौ द्विजाः ॥ ८१ ॥

नेर्ष्यासूया भयं रोषोदोषोलोमादिकं न च ।

महावीतं घहिव्यं धातकीखण्डमन्ततः ॥ ८२ ॥

मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ।

सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ॥ ८३ ॥

न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते ।
 तुल्यवेयास्तु मनुजा देवान्त्रैकरूपिणः ॥ ८४ ॥
 घर्णाश्रमाचारहीनं घर्माहरणवर्जितम् ।
 श्रयाचारार्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं च तत् ॥ ८५ ॥
 वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः ।
 सर्वस्य सुखदः कालो जरारोगविचञ्जितः ॥ ८६ ॥
 पुष्करे धातकीण्डे महावाने च यै द्विजाः ।
 न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मण स्थानमुत्तमम् ॥ ८७ ॥
 तस्मिन्निपसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ।
 स्याद्दूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥ ८८ ॥
 समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा ।
 एवं द्वीपाः समुद्रेस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥ ८९ ॥
 द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ ।
 पयांसि सर्वदा सर्वसमुद्रेषु समानि धै ॥ ९० ॥
 न्यूनातिरिक्ता तेषां कदाचिन्नैव जायते ।
 स्यालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा ॥ ९१ ॥
 तपेन्दुवृद्धौ सलिलमग्नीध्री मुनिसत्तमाः ।
 अग्नूनातिरिक्ताश्च घर्द्धन्त्यापो हसन्ति च ॥ ९२ ॥
 उदयास्तमणेः त्विन्दोः पक्षयोः शुल्करूपणयोः ।
 दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च ॥ ९३ ॥
 अपां वृद्धिक्षयीं दृष्टौ सामुद्रीणां द्विजोत्तमाः ।
 भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥ ९४ ॥

भुञ्जन्ति षड्रसं विप्राः प्रजाः सर्वाः सदैव हि ।
 स्वादूदकस्य परितो दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥ ६५ ॥
 द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ।
 लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतघिस्तृतः ॥ ६६ ॥
 उच्छ्रयेणापि तावन्ति सहस्राण्ययलोहि सः ।
 ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्वत स्थितम् ॥ ६७ ॥
 तमध्याण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ।
 पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्वो द्विजोत्तमाः ॥ ६८ ॥
 सहैषाण्डकटाहेन सद्दीपा समहोधरा ।
 सेयं धात्री विधात्री च सर्वभूतगुणाधिका ।
 आधारभूता जगतां सर्वेषां सा द्विजोत्तमाः ॥ ६९ ॥
 इति श्रोत्राह्नी महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनं
 नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

तत्रादीपातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

विस्तारः एष कथितः पृथिव्या मुनिसत्तमाः ।
 सप्ततिस्तु सहस्राणि तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥
 दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तमाः ।
 अतलं पितलञ्चैव नितलं सुतलं तथा ॥ २ ॥

तलातलं रसातलं पातालञ्चापि सप्तमम् ।
 कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा गैलकान्वनी ॥ ३ ॥
 भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोमिताः ।
 तेषु दानप्रदत्रैय-जातयः शतशः स्थिताः ॥ ४ ॥
 नागानाञ्च महाद्गानां जातयश्च द्विजोत्तमा ।
 स्रल्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः ॥ ५ ॥
 प्राह स्वर्गसदोमध्ये पानालेभ्यो गतो दिवम् ।
 आहादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रमाः ॥ ६ ॥
 नागामरणभूषाञ्च पाताल केन तन्समम् ।
 द्रैत्यदानवरुण्यामिरितश्चेतश्च शोमिने ॥ ७ ॥
 पाताले कस्य न प्रीतिर्विमृक्तम्यापि जायते ।
 दिवार्करुण्यो यत्र प्रभास्नन्वन्ति नातपम् ॥ ८ ॥
 शशिनश्च न शोताय निशि द्योताय केचलम् ।
 भद्रयमोज्यमहापानमदमत्तैश्च भौगिमिः ॥ ९ ॥
 यत्र न जायते कालो गतोऽपि दनुजादिमिः ।
 घनानि नद्यो रम्याणि सरासि कमलाकराः ॥ १० ॥
 पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्यराणि च ।
 भूपणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यञ्चानुलेपनम् ॥ ११ ॥
 वीणावेणुमृदङ्गानां नि स्वनाश्च सश द्विजाः ।
 एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यमोग्यानि दानवैः ॥ १२ ॥
 दैत्यारगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ।
 पातालानामधश्चास्ते चिष्णोर्यां तामसी तनुः ॥ १३ ॥

शेषाख्या यद्गुणान् घत्तुं न शक्ता दैत्यदानघाः ।
 योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवदेवर्षिपूजितः ॥ १४ ॥
 सहस्रशिरसा व्यक्तं स्वस्तिकामलभूषणः ।
 फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ॥ १५ ॥
 सर्वान् करोति निर्बोध्यान् हितायजगतोऽसुरान् ।
 मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ॥ १६ ॥
 किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निश्वेत इवाचलः ।
 नीलघासा मद्रोत्सिकः श्वेतहारोपशोभितः ॥ १७ ॥
 साम्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कैलासाद्रिरिधोत्तमः ।
 लांगलासक्तहस्ताग्रो विभ्रन्मुपलमुत्तमम् ॥ १८ ॥
 उपास्यते स्वयं कान्ता यो वारुण्या च मूर्त्तया ।
 कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विपानलशिखोज्ज्वलः ॥ १९ ॥
 संकर्षणात्मको रुद्रो निष्कम्पात्ति जगत्त्रयम् ।
 स विभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥ २० ॥
 आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषपुरार्चितः ।
 तस्य धीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥ २१ ॥
 न हि घर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि ।
 यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ॥ २२ ॥
 आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं घदिष्यति ।
 यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥ २३ ॥
 तदा चलति भूरैषा साद्रितोयाधिकानना ।
 गन्धर्व्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगधारणाः ॥ २४ ॥

नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः ।
 यस्य नागवधूहस्तैर्लापितं हरिचन्दनम् ॥ २५ ॥
 मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पट्टचासताम् ।
 यमाराध्य पुराणपिर्गर्गो ज्योतीपि तत्त्वतः ॥ २६ ॥
 ज्ञातवान् सकलं चैव निमित्तपठितं फलम् ।
 तेनेयं नागवर्ष्येण शिरसा विधृता मही ।
 विमर्त्ति सकलाल्लोकान् स देवासुरमानुषान् ॥ २७ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाण-
 कीर्त्तनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच ।

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रौरवादयः ।
 पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्जृणुर्ध्वद्विजोत्तमाः ॥ १ ॥
 रौरवः शौकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ।
 महाज्वालस्तप्तकुड्यो महालोमो विमोहनः ॥ २ ॥
 रुधिरान्धो वसातप्तः कृमीशः कृमिमोजनः ।
 असिपत्रघनं कृष्णो लालामक्षश्च दारुणः ॥ ३ ॥

तथा पूयवहः पापो घट्टिज्वालो ह्यधःशिराः ।
 सन्दंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ॥ ४ ॥
 श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः ।
 इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥ ५ ॥
 यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निविषदर्शिनं ।
 पतन्ति येषु पुण्याः पापकर्मरताश्च ये ॥ ६ ॥
 कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो घदेत् ।
 यश्चान्यदनृतं घक्ति स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥
 भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः ।
 यान्ति ते रौरवं घोरं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥ ८ ॥
 सुरापो ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य च शूकरे ।
 प्रयाति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ॥ ९ ॥
 राजन्यवैश्यहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ।
 तप्तकुम्भे स्वसृगामी हन्ति राजभटञ्च यः ॥ १० ॥
 माध्योचिक्रयवृद्धध्यपालः केसरविक्रयी ।
 तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥ ११ ॥
 सुतां स्नुषाञ्चापि गत्या महाज्वाले निपात्यते ।
 अधमन्ता गुरुणां यो यश्चाग्रौष्टा नराधमः ॥ १२ ॥
 घेददूपयिता यश्च घेदविक्रयकरश्च यः ।
 अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शयलं द्विजाः ॥ १३ ॥
 चौरौ पिमोहे पतति मर्त्यादादूपकस्तथा ।
 देवद्विजपितृद्वेष्टा रसदूपयिता च यः ॥ १४ ॥

स याति क्रमिभक्ष्ये वै वृमीशे तु दुरिष्टिहृत् ।
 पितृदेवातिथीन् यस्तु पर्यग्नान्ति नराधम ॥ १५ ॥
 लालामक्षे स यात्युग्रे शरकर्ता च वेधने ।
 करोति कर्णिनो यश्च यश्च सङ्गाडिञ्जर ॥ १६ ॥
 प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारणे ।
 असत्प्रतिप्रहाता च नरके यात्यधोमुपे ॥ १७ ॥
 अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचक ।
 कृमिपूये नरक्षैको याति मिष्टान्भुक् सदा ॥ १८ ॥
 लाक्षामासरसानाञ्च तिलाना लवणस्य च ।
 विन्नेता ब्राह्मणो याति तमेव नरक द्विजा ॥ १९ ॥
 माञ्ज्जारकुक्कुटञ्छागश्ववराहविहङ्गमान् ।
 पोषयन्नरक याति तमेव द्विजसत्तमा ॥ २० ॥
 रङ्गोपजावी वैवर्त्त कुण्डाशा गरदरतथा ।
 सूची माहिषिकश्चैव प र्गामी च यो द्विज ॥ २१ ॥
 अगारदाही मित्रन्न शत्रुनिग्रामयाजक ।
 रुधिरान्धे पतन्त्येते सोम विन्नीणते च ये ॥ २२ ॥
 मधुहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नर ।
 रेत पानादिकर्तारो मर्यादाभेदिनश्च ये ॥ २३ ॥
 ते वृच्छे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये ।
 असिपत्रवन याति घनच्छेदी वृथैव य ॥ २४ ॥
 उरम्रिका मृगन्याधा वह्निञ्चाले पतन्ति वै ।
 यान्ति तत्रैव ते विप्रा यश्चापाङ्गेषु घहिद ॥ २५ ॥

ब्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य ।
 सन्दशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि ॥ २६ ॥
 दिवा स्वप्नेषु स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिण ।
 पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने ॥ २७ ॥
 एते चान्ये च नरका शतशोऽथ सहस्रश ।
 येषु दुष्कृतकर्माण पच्यन्ते यातनागता ॥ २८ ॥
 तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रश ।
 भुज्यन्ते जातिपुहपैर्नरकान्तरगोचरै ॥ २९ ॥
 घर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नरा ।
 कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते । ३० ॥
 बध शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवता ।
 देवाश्चाधोमुखान् सर्वानथ पश्यन्ति नारकान् ॥ ३१ ॥
 स्थावरा कृमयोऽजाश्च पक्षिण पशवो नरा ।
 धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥
 सहस्रभाग प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तथा ।
 सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रया ॥ ३३ ॥
 यावन्तो जन्तव स्वर्गे तावन्तो नरकौकस ।
 पापट्टयाति नरक प्रायश्चित्तपराडमुख ॥ ३४ ॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्दुयथा ।
 तथा तथैव सस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभि ॥ ३५ ॥
 पापे गुरुणि गुरुणि स्वत्पान्यत्पे च तद्धिद् ।
 प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगु स्यायम्भुवादय ॥ ३६ ॥

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तप कर्मात्मकानि वै ।
 यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ ३७ ॥
 कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
 प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥ ३८ ॥
 प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् ।
 नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयात्नरः ॥ ३९ ॥
 विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः ।
 मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात् ॥ ४० ॥
 घासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
 तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ ४१ ॥
 क नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
 क जपो घासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥
 तस्माद्दहर्निश विष्णुं संस्मरन् पुण्यो द्विजः ।
 न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातक ॥ ४३ ॥
 मनःप्रोतिकर स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः ।
 नरकस्वर्गसङ्घे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमा ॥ ४४ ॥
 घस्त्वैकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च ।
 कोपाय च यतस्तस्माद्द्वस्तु दुःखात्मकं कुतः ॥ ४५ ॥
 तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते ।
 तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते ॥ ४६ ॥
 तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम् ।
 मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥ ४७ ॥

ज्ञानमेव परं ब्रह्माज्ञानं बन्धाय चेप्यते ।
 ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥ ४८ ॥
 विद्याविद्ये हि भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्यताम् ।
 एवमेतन्मयाख्यातं भवतां मण्डलं भुवः ॥ ४९ ॥
 पातालानि च सर्वाणि तथैव नरका द्विजाः ।
 समुद्राः पर्वताश्चैव ह्रीपा चर्पाणि निम्नगाः ॥ ५० ॥
 संक्षेपात् सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्त्तनं नाम
 द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भूर्भुवःस्वरादिलोकवर्णनम्

मुनय ऊचु ।

कथितं भवता सर्वमस्माकं सकलं तथा ।
 भुवर्ल्लोकादिकाल्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे धयम् ॥ १ ॥
 तथैव ब्रह्मसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
 समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण ॥ २ ॥

ल्लोमहर्षण उवाच ।

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूषैरवभास्यते ।
 ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥ ३ ॥

यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला ।
 नमस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥ ४ ॥
 भूमैर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम् ।
 लक्षे दिवाकराद्यापि मण्डल शशिनः स्थितम् ॥ ५ ॥
 पूर्वे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
 नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते ॥ ६ ॥
 द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
 तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥ ७ ॥
 बङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।
 लक्षद्वयेन भोमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ ८ ॥
 सौरिर्वृहस्पतेरुद्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः ।
 सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तमाः ॥ ९ ॥
 ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूद्ध्वं व्यवस्थितः ।
 मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै भ्रुवः ॥ १० ॥
 त्रैलोक्यमेतत् कथितं संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।
 इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥
 ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
 एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते ॥ १२ ॥
 द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
 सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः ॥ १३ ॥
 चतुर्गुणोत्तरं चोद्ध्वं जनलोकान्तपः स्मृतम् ।
 वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविर्जिताः ॥ १४ ॥

यद्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते ।
 अपुनर्मारकं यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ॥ १५ ॥
 पादगम्यं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
 स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥ १६ ॥
 भूमिसूर्यान्तरं यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
 भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमाः ॥ १७ ॥
 ध्रुवसूर्यान्तरं यत्तु नियुतानि चतुर्दश ।
 स्वर्लोकः सोऽपि कथितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ॥ १८ ॥
 त्रैलोक्यमेतत् कृतक विप्रैश्च परिपठ्यते ।
 जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ॥ १९ ॥
 कृतकाकृतको मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
 शून्यो भवति कल्पान्ते योऽन्तं न च विनश्यति ॥ २० ॥
 एते सप्त महालोका मया धः कथिता द्विजाः ।
 पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तरः ॥ २१ ॥
 एतदण्डकटाहेन तिर्यग्गूढध्वंमधस्तथा ।
 कपित्थस्य यथा बीजं सर्व्वतो वै समावृतम् ॥ २२ ॥
 दशोत्तरेण पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदुवृतम् ।
 स चाम्बुपरिवारोऽसौ षड्विना षेष्टितो षट्तिः ॥ २३ ॥
 षट्तिस्तु पायुना पायुर्चिप्रास्तु नमसावृतः ।
 शाकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टितः ॥ २४ ॥
 दशोत्तराण्यशेषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै ।
 महान्तश्च समावृत्य प्रधानं समपरिच्यतम् ॥ २५ ॥

अनन्तस्य न तस्यान्त सरयानं चापि विद्यते ।
 तदनन्तमसरयात् प्रमाणेनापि वै यत् ॥ २६ ॥
 हेतुभूतमशेषस्य प्रवृत्ति सा परा द्विजा ।
 अन्तानान्तु सहस्राणा सहस्राण्ययुतानि च ॥ २७ ॥
 ईदृशाना तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ।
 दारुण्यस्त्रिर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥ २८ ॥
 प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिषेद्धन ।
 प्रधानञ्च पुमाञ्चैव सर्वभूतानुभूतया ॥ २९ ॥
 विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धूर्तो सश्रयधर्मिणो ।
 तयो सैव पृथग्भावे कारण सश्रयस्य च ॥ ३० ॥
 क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमा ।
 यथा शैत्यं जले चातो विमर्त्ति कणिकागतम् ॥ ३१ ॥
 जगच्छक्तिस्तथा विष्णो प्रधानपुरयात्मकम् ।
 यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसयुत ॥ ३२ ॥
 आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै तत ।
 प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परं द्रुमा ॥ ३३ ॥
 तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यनारणानुगता द्विजा ।
 एवमव्याहृतात् पूर्वं जायन्ते महदादय ॥ ३४ ॥
 विशेषान्तास्ततस्तेभ्य सम्भवन्ति सुगदय ।
 तेभ्यश्च पुत्रास्तेषा तु पुत्राणा परमे सुता ॥ ३५ ॥
 बीजाद्द्रव्यप्ररोहेण यथा नापवयस्तरौ ।
 भूताना भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥ ३६ ॥

सन्निधानाद्दुयथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः ।
 तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥ ३७ ॥
 ग्रीहिचीजे यथा मूलं नाल पत्राङ्कुरौ तथा ।
 काण्डकोपास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः ॥ ३८ ॥
 तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।
 प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः ॥ ३९ ॥
 तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः ।
 विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥ ४० ॥
 स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत् ।
 जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन्विलयमेष्यति ॥ ४१ ॥
 तद्ब्रह्म परम धाम सदसत् परमं पदम् ।
 यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम् ॥ ४२ ॥
 स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।
 तस्मिन्नेव लयं सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥ ४३ ॥
 कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः,
 स एव तत् कर्मफलञ्च यस्य यत् ।
 युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो-
 हरेर्न किञ्चिदुच्यतिरिक्तमस्ति तत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीब्राह्मणे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकीर्त्सनं नाम

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

ध्रुवमस्थिति निरूपणम् ।

लोमहर्षण उवाच ।

तारामय भगवत शिशुमारावृत्ति प्रभो ॥ १ ॥
दिवि रूप हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुव ।
तैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रानित्यादिकान् ग्रहान् ।
भ्रमन्तमनु त यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहे सह ।
घातानोकमयैर्वर्धैध्रुवे घटानि तानि वै ॥ ३ ॥
शिशुमारावृत्ति प्रोक्त यद्रूप ज्योतिषा दिवि ।
नारायण पर धाम तस्याधार स्वय हृदि ॥ ४ ॥
उत्तानपादतनयस्तमाराभ्य प्रजापतिम् ।
स ताराशिशुमारम्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थित ॥ ५ ॥
आधार शिशुमारम्य स चाभ्यक्षो जनार्दन ।
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्यवस्थित ॥ ६ ॥
तदाधार जगच्चेद सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
विवस्वानष्टमिर्मासैर्प्रसत्यापो रसात्मिका ।
वर्षत्येषु ततश्चान्नमन्नादमखिल जगत् ॥ ८ ॥
विवस्वानशुमिस्तादणैरादाय जगतो जलम् ।
सोम पुष्यत्यथेन्दुश्च चायुनाडीमयेदिवि ॥ ९ ॥

जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु ।
 न भ्रस्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः ॥ १० ॥
 अत्रस्थाः प्रपतन्त्यापो घायुना समुदीरिताः ।
 संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्मलाः ॥ ११ ॥
 सरित्समुद्रा भौमास्तु यथापः प्राणिसम्भवाः ।
 चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः ॥ १२ ॥
 आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान् ।
 अनभ्रगतमेवोळ्व्या सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥ १३ ॥
 तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमा ।
 न याति नरक मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥ १४ ॥
 दृष्टसूर्यं हि तद्धारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः ।
 आकाशगङ्गासलिलंतद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥ १५ ॥
 कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विपमेष्वग्न्यु यद्विद्विः ।
 दृष्ट्याकं पतितं ह्येयं तद्गङ्गां दिग्गजोद्धृतम् ॥ १६ ॥
 युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः ।
 तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥ १७ ॥
 उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः ।
 आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥
 यत्तु मेघैः समुत्सृष्ट धारि तत् प्राणिनां द्विजाः ।
 पुष्पात्योपधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥ १९ ॥
 तेन वृद्धिं परां नीतः सफलश्चौपधीगणः ।
 साधकः फलपाफान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥ २० ॥

तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः ।
 कुर्वन्तेऽहरहश्चैव देवानाप्याययन्ति ते ॥ २१ ॥
 एवं यज्ञाश्च वेदाश्च घर्णाश्च द्विजपूर्वकाः ।
 सर्व्यदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥ २२ ॥
 वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्यं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
 सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥ २३ ॥
 आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिचरोत्तमाः ।
 ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥ २४ ॥
 हृदि नारायणस्तम्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
 विमर्त्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥ २५ ॥
 एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् ।
 भूतमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ २६ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम
 चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ सर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मुनय ऊचः ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
 षष्ठुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतुं नो घर्तते मनः ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।

विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,

घाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।

एतानि तीर्थानि शरीरजानि,

स्वर्गस्य मार्गं प्रतियोधयन्ति ॥ ३ ॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ।

शतशोऽपि जलैर्घातं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ ४ ॥

न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः ।

दृष्टाशयं दण्डरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः ।

तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥ ६ ॥

तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च ।

संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि कानि वै ॥ ७ ॥

विस्तरैण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ।

प्रथमं पुष्करं तीर्थः नैमिषारण्यमेव च ॥ ८ ॥

प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमाः ।

धेनुकं चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥ ९ ॥

पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च ।

गया प्रभासं धीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा ॥ १० ॥

भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं मीमारण्यं कुशस्थलीम् ।
 लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च ॥ ११ ॥
 महाबलं कोटितीर्थं सर्वपापहरं तथा ।
 रूपतीर्थं शूकर्यं चक्रतीर्थं महाफलम् ॥ १२ ॥
 योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं तथा ।
 तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥ १३ ॥
 सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं म्कन्दाश्रम तथा ।
 कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं तथा ॥ १४ ॥
 धर्मोद्धृत्तं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम् ।
 गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च ॥ १५ ॥
 चक्रप्रभं मतङ्गञ्च क्रुशदत्तञ्च विश्रुतम् ।
 दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वकामिकमेव च ॥ १६ ॥
 तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभ तथा ।
 ब्रह्मकुण्डं वह्नि कुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा ॥ १७ ॥
 चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम् ।
 मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तथोर्व्वशी ॥ १८ ॥
 लोकपालं मनुवर सोमाहंशैलमेव च ।
 सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम् ॥ १९ ॥
 महान्घोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम् ।
 सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम् ॥ २० ॥
 शालप्रभं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम् ।
 विल्वप्रभं देवहदं तीर्थं विष्णुहदं तथा ॥ २१ ॥

शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं यज्ञायुधं तथा ।
 भग्निप्रभञ्च पुद्गारं देवप्रभमनुत्तमम् ॥ २२ ॥
 विद्याधरं सगान्धर्व्यं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम् ।
 सातीर्थं लोकपालाख्यं मणिपूरगिरिं तथा ॥ २३ ॥
 तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा ।
 मलयं गोप्रभावञ्च गोवरं घटमूलकम् ॥ २४ ॥
 स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा ।
 कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम् ॥ २५ ॥
 गभस्तित्तीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि ।
 कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा ॥ २६ ॥
 नर्मदातीर्थमपर तीर्थं ब्रजं तथाव्युदम् ।
 पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम् ॥ २७ ॥
 तीर्थं दौर्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम् ।
 ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम् ॥ २८ ॥
 शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च ।
 पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम् ॥ २९ ॥
 मणिमत्तञ्च कामाख्यं कृष्णतीर्थं कुशाविलम् ।
 यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम् ॥ ३० ॥
 पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् ।
 दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥ ३१ ॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च ।
 घखापदं दाख्यल छायारोहणमेव च ॥ ३२ ॥

सिद्धेश्वर मित्रवल् कालिकाश्रममेव च ।
 घटाघट भद्रवट कौशाम्यी च दिवाकरम् ॥ ३३ ॥
 द्वीप सारस्यतञ्चैव विजय कामट तथा ।
 छकोटि सुमनस तीर्थं सद्राघनामितम् ॥ ३४ ॥
 स्यमन्तपञ्चक तार्थं प्रह्लातार्थं सुदर्शनम् ।
 सतत पृथिवीसर्तुं पारिप्लवपृथूदको ॥ ३५ ॥
 दशाण्वमेधिक तीर्थं सर्पिज विषयान्तिकम् ।
 कोटितीर्थं पञ्चनद वाराह यक्षिणीहटम् ॥ ३६ ॥
 पुण्डराक सोमतीर्थं मुखवाट तथोत्तमम् ।
 वद्रीवनमासीन रत्नमलकमेव च ॥ ३७ ॥
 लोकद्वार पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च ।
 सूर्यतीर्थं शङ्खिनी च गवा भवनमेव च ॥ ३८ ॥
 तीर्थञ्च यक्षराजस्य प्रह्लावत्तं सुतीर्थकम् ।
 कामेश्वर मातृतीर्थं तीर्थं शीतवन तथा ॥ ३९ ॥
 स्नानलोमापहञ्चैव मासससरक तथा ।
 दशाश्वमेघ केदार प्रह्लोदुम्बरमेव च ॥ ४० ॥
 सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्या सुजम्बुकम् ।
 ईहास्पद कोटिकूट किन्दान किञ्चप तथा ॥ ४१ ॥
 कारण्ड्य चाप्रेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम् ।
 पाणिखात मिश्रकञ्च मधुघटमनोजवो ॥ ४२ ॥
 कौशिकी देवतीर्थाञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम् ।
 दिव्यञ्च नृगधूमाख्य तार्थं विष्णुपद तथा ॥ ४३ ॥

अमराणां हृदं पुण्यं फोटितोर्थं तथापरम् ।
 श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशीपञ्च विश्रुतम् ॥ ४४ ॥
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च ।
 ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं चै कारुपायनम् ॥ ४५ ॥
 सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती ।
 ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम् ॥ ४६ ॥
 त्रिशूलधारं माहेन्द्र देवस्थान कृतालयम् ।
 शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं हृदम् ॥ ४७ ॥
 क्षीरस्त्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् ।
 ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्ज्वतमेव च ॥ ४८ ॥
 कुजाग्रकं भद्रवटं घसिष्ठपदमेव च ।
 स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च ॥ ४९ ॥
 रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्व कपिलावनमेव च ।
 भद्रकर्णहृदञ्चैव शङ्कुकर्णहृदं तथा ॥ ५० ॥
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमोशनस तथा ।
 कपालमोचनञ्चैव अवकीर्णञ्च काम्यकम् ॥ ५१ ॥
 चतु.सामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्रिकम् ।
 रेणुकं पञ्चघटकं विमोचनमथोजसम् ॥ ५२ ॥
 स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम् ।
 विश्वेश्वरं माणवकं कूप नारायणाश्रयम् ॥ ५३ ॥
 गङ्गाहृदं घटञ्चैव घदरीपाटनं तथा ।
 इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च ॥ ५४ ॥

सोमतीर्थं दधीचञ्च श्रुततीर्थञ्च मो द्विजा ।
 कोटितीर्थमथलीञ्चैव भद्रकालाह्वरं तथा ॥ ५५ ॥
 अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम् ।
 अश्वमेदी कुन्जावन यमुनाप्रभव तथा ॥ ५६ ॥
 वीरं प्रमोक्ष सिन्धूत्थमृषिकुल्या सऋत्तिकम् ।
 उर्वीमन्मणञ्चैव मायाविद्योद्भव तथा ॥ ५७ ॥
 महाध्रमो वैतसिकाम्प सुन्दरिकाध्रमम् ।
 वाटुनीयं चारुनदीं विमलाशोकमेव च ॥ ५८ ॥
 तीर्थ पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
 सोमतीर्थं सितोदञ्च तार्थं मत्स्योदरी तथा ॥ ५९ ॥
 सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च ।
 अरणाम्पद् कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम् ॥ ६० ॥
 पिशाचमोचनञ्चैव सुभद्राहृदमेव च ।
 कुण्ड विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेण्वरस्य च ॥ ६१ ॥
 ज्येष्ठम्यानहृदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसर तथा ।
 जैगापयगुहा चैव हरिशेखर तथा ॥ ६२ ॥
 अजामुखसरञ्चैव घण्टाकर्णहृद तथा ।
 पुण्डरीकहृदञ्चैव वार्षी कर्कोटकस्य च ॥ ६३ ॥
 सुवर्णास्योद्धानञ्च श्येततीर्थाहृद तथा ।
 कुण्ड घर्गरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका ॥ ६४ ॥
 श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकहृद तथा ।
 कूप सिन्धूद्वयञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसर तथा ॥ ६५ ॥

रुद्रावासं तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम् ।
 भक्तहृदं क्षीरसरः प्रेताधारं कुमारकम् ॥ ६६ ॥
 ब्रह्मावत्तं कुशावत्तं दधिकर्णोदपानकम् ।
 शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थाश्रेष्ठा महानदी ॥ ६७ ॥
 दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं घटम् ।
 दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥ ६८ ॥
 कपिलाहृदं गृध्रघटं साचित्रीहृदमेव च ।
 प्रभासन सीतवनं योनिदारञ्च धेनुकम् ॥ ६९ ॥
 धन्यकं कोकिलाख्यञ्च मतङ्गहृदमेव च ।
 पत्ररूपं रुद्रतीर्थं शकतीर्थं सुमालिनम् ॥ ७० ॥
 ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नहृदं तथा ।
 कौशिक्यं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥ ७१ ॥
 षड्शेखरं फल्पसरः कन्यासंवेद्यमेव च ।
 निश्चीवाप्रभवश्चैव घसिष्ठाश्रममेव च ॥ ७२ ॥
 देवकूटञ्च कूपञ्च घसिष्ठाश्रममेव च ।
 घोरश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥ ७३ ॥
 कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च ।
 शुनः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितोर्थं तथैव च ॥ ७४ ॥
 कुमारघासं ध्रुवासर्मावीर्षातीर्थमेव च ।
 बुद्धकर्णहृदञ्चैव कौशिकीहृदमेव च ॥ ७५ ॥
 धर्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालकं तथा ।
 सन्ध्यातीर्थं फारतोयं फपिलं लोहितार्णवम् ॥ ७६ ॥

शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषमं कलतीर्थकम् ।
 पुण्यावतीहृदं तीर्थं तीर्थं चद्रिकाश्रमम् ॥ ७७ ॥
 रामतीर्थं पितृवन विरजातीर्थमेव च ।
 मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा घटम् ॥ ७८ ॥
 रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रगुह्यसरञ्च यत् ।
 सानुगर्तं समाहेन्द्र धीतीर्थं श्रोनदं तथा ॥ ७९ ॥
 इषुतीर्थं धार्षमञ्च कावेरीहृदमेव च ।
 कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च ॥ ८० ॥
 यदरीहृदमन्यच्च मध्यम्यानं चिकर्णरुम् ।
 जातोहृदं देवकूपं कुशाप्रवणमेव च ॥ ८१ ॥
 सर्व्यदेवव्रतञ्चैव कन्याश्रमहृदं तथा ।
 तथान्यद्दुवालखिल्यानां सपूर्वाणां तथापरम् ॥ ८२ ॥
 तथान्यच्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा ।
 तीर्थेष्वेतेषु विधिवन् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥ ८३ ॥
 स्नानं करोति यो मर्त्यं सोपयासौ जितेन्द्रियः ।
 देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च क्रमान् ॥ ८४ ॥
 अम्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्या च रजनीत्रयम् ।
 पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु मां द्विजाः ॥ ८५ ॥
 प्राप्नोति ह्यमेघस्य नरो नात्यत्र संशयः ।
 यस्त्विदं शृणुयात्त्रितयं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
 पठेच्च श्रावयेद्दुवापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८६ ॥

इति श्रीब्राह्म 'महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
 पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पड़्विंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ स्वयम्भूत्रह्यर्पिसंवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

पृथिव्यामुत्तमां भूमिं धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो घदतावर ॥ १ ॥

लोमहर्षण उवाच ।

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुरा ।
तमह सम्प्रक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥ ३ ॥
पुत्रागैः फर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैरर्धखादिरैः ॥ ४ ॥
पाटलाशोकवकुलैः करधोरैः सचम्पकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥ ५ ॥
बुल्लक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां परम् ।
महामारतकर्तारं सर्व्यशास्त्रविशारदम् ॥ ६ ॥
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्यज्ञं सर्व्यभूतहिते रतम् ।
पुराणागमपकारं घेदयेदाङ्गयारणम् ॥ ७ ॥
पराशरस्तुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
द्रष्टुमभ्यापयुः प्रीत्या मुनयः संशितप्रता ॥ ८ ॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
 वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ घात्मिकिः ॥ ६ ॥
 विश्वामित्रः शतानन्दो घात्स्यो नाग्योऽथ आसुरिः ।
 सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः ॥ १० ॥
 माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा ।
 मौद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥ ११ ॥
 सम्वर्त्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा ।
 शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोमशस्तथा ॥ १२ ॥
 नारदः पर्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ ।
 भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥ १३ ॥
 उलूकः पुलहो घायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः ।
 सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥ १४ ॥
 एतैर्मुनिचरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः ।
 'रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ १५ ॥
 तानागतान्मुनीन् सर्वान् पूजयामास वेदवित् ।
 तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥ १६ ॥
 कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम् ।
 पप्रच्छुः सशयं सर्वे तपोवननिवासिनः ॥ १७ ॥

मुनय ऊचुः ।

मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागममारतम् ।
 भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं जानासि घाड्मयम् ॥ १८ ॥

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारं भवसागरे ।
 रागप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥ १९ ॥
 इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्मिशतसङ्कुले ।
 मोहपङ्काविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे ॥ २० ॥
 निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम् ।
 पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो मुनिसत्तम ? ॥ २१ ॥
 श्रेयः किमत्र संसारं भैरवे लोमहर्षणे ।
 उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥
 दुर्लभं परमं क्षेत्रं कर्तुमर्हसि मोक्षदम् ।
 पृथिव्यां कर्ममूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ २३ ॥
 कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म भूमौ यथोदितम् ।
 प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥ २४ ॥
 मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः ।
 तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञं यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥ २५ ॥
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 व्यासः प्रोवाच भगवान्भूतमव्यमविष्यवित् ॥ २६ ॥

व्यास उवाच ।

शृणुष्वं मुनयः सर्व्वं वक्ष्यामि यदि पृच्छथ ।
 यः सवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह ॥ २७ ॥
 मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते ।
 नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥ २८ ॥

नानापक्षिष्ठे रम्ये नानाप्रसचनाकुले ।
 नानासत्यसमाकीर्णे नानाश्र्वर्यसमन्विते ॥ २६ ॥
 नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते ।
 नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते ॥ २७ ॥
 तत्रासीनं जगन्नायं जगदुयोनिं चतुर्मुखम् ।
 जगत्पतिं जगद्गन्धं जगदाधारमाश्र्वरम् ॥ २८ ॥
 देवदानवगन्धर्वैर्यक्षविश्राघरोरगै ।
 मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च घृतमन्यैर्दिवालयैः ॥ २९ ॥
 केचित् स्तुयन्ति तं देवं केचिद्नायन्ति चाप्रतः ।
 केचिद्वाद्यानि घायन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥ ३० ॥
 एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे ।
 नानाकुसुमगन्धाद्ये दक्षिणानिलसेविते ॥ ३१ ॥
 भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् ।
 इममर्थमृषिचरा पप्रच्छु पितरं द्विजाः ॥ ३२ ॥

ऋषय ऊचु ।

भगवन्श्रोतुमिच्छामः कर्मभूमिं महीतले ।
 पकुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥ ३३ ॥

यास उवाच ।

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः ।
 पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्न तत्सर्व्वे मुनिसत्तमा ॥ ३४ ॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूरहृषिसवादे
 प्रश्ननिरूपण नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ भारतर्पणवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्व मुनय सर्व्वे यद्द्वो घक्षयामि साम्प्रतम् ।
पुराण वेदसम्पद्ध भुक्तिमुक्तिप्रद शुभम् ॥ १ ॥
पृथिव्या भारत वर्षं कर्मभूमिरदाहृता ।
कर्मण फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरक तथा ॥ २ ॥
तस्मिन् वर्षे नर पाप कृत्वा धर्मञ्च भो द्विजा ।
अवश्य फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाद्या स्वक कर्म कृत्वा सम्यक्सुसयता ।
प्राप्नुवन्ति परा सिद्धि तस्मिन्वर्षे न सशय ॥ ४ ॥
धर्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमा ।
प्राप्नोति पुरुष सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसयत ॥ ५ ॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमा ।
कृत्वा सुशोभन कर्म देवत्व प्रतिपेक्षिरे ॥ ६ ॥
अन्येऽपि लेमिरे मोक्ष पुरुषा सयतेन्द्रिया ।
तस्मिन् वर्षे बुधा शान्ता घीतरागा विमत्सरा ॥ ७ ॥
ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतञ्चरा ।
तेऽपि कृत्वा शत कर्म तस्मिन् वर्षे दिघ गता ॥ ८ ॥
निवास भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुरा ।
स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्याम कदा घयम् ॥ ९ ॥

मुनय ऊचुः ।

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम् ।

पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा च भारतम् ॥ १० ॥

ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते ।

न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥ ११ ॥

तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नम्माकं भारतं वद ।

यदि तेऽस्ति दयाम्मासु यथावस्थितिरेव च ॥ १२ ॥

तस्माद्वर्षमिदं नाथ ये चाम्मिन् वर्षपर्वताः ।

भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्वानशीपतः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्वं भारतं वर्षं नवमेदेन भो द्विजाः ।

समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परम्परम् ॥ १४ ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गमस्तिमान् ।

नागद्वीपस्तथा सौम्या गान्धर्व्यौ चारुणस्तथा ॥ १५ ॥

अयन्तु नवमस्तेषां द्वीप सागरसंवृतः ।

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः १६ ॥

पूर्वे किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः ॥ १७ ॥

इज्यायुद्धवणिज्यायैः कर्मभिः कृतपावनाः ।

तेषां संयवहारश्च त्रिमिः कर्मभिरिष्यते ॥ १८ ॥

स्वर्गापवर्गहेतोश्च पुण्यं पापञ्च वै तथा ।

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैषात्र कुलाचलाः ।
 तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥ २० ॥
 विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः ।
 कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो ददुर्दुराचलः ॥ २१ ॥
 यातन्धयो वैद्युतश्च मैनाकः सुरसस्तथा ।
 तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः ॥ २२ ॥
 पुष्पगिरिवैजयन्ती रैवतोऽव्वुर्द एव च ।
 ऋष्यमूकः स गोमन्थः कृतशैलः कृताचलः ॥ २३ ॥
 श्रीपार्व्यतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्व्वताः ।
 तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः ॥ २४ ॥
 तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः ।
 गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥ २५ ॥
 यमुना शतद्रुचिपाशा वितस्तीरावती कूहुः ।
 गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥ २६ ॥
 विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्टकी तथा ।
 कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥ २७ ॥
 देवस्मृतिर्देवती घातग्नी सिन्धुरेव च ।
 वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥ २८ ॥
 चर्मण्वती वृषी चैव विदिशा वेदवत्यपि ।
 सिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः ॥ २९ ॥
 शोणा महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ।
 मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥ ३० ॥

चित्रोत्पला वेत्रघपी करमोदा पिशाचिका ।
 तथान्यातिलघुश्रोणी विपापा शैवला नदी ॥ ३१ ॥
 सध्रेरुजा शुक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः ।
 ऋक्षपादप्रसूता चै तथान्या वेगवाहिनी ॥ ३२ ॥
 सिप्रा पयोष्णी निर्ब्रिन्ध्या तापी चैव सरिद्धरा ।
 वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुम्भती ॥ ३३ ॥
 तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।
 विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभा ॥ ३४ ॥
 गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणा तथापगा ।
 तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी ॥ ३५ ॥
 सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरितां घराः ।
 कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्यजा प्रत्यलावती ॥ ३६ ॥
 मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमाः ।
 पितृसोमर्षिभुत्या च घञ्जुला त्रिदिवा च या ॥ ३७ ॥
 लाङ्गुलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
 सुविकाला कुमारी च मनुगा मन्दगामिनी ॥ ३८ ॥
 क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ।
 सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गा समुद्रगा ॥ ३९ ॥
 विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाः पापहरा स्मृताः ।
 धन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥
 प्राट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः ।
 मत्स्या मुकुटकुल्याश्रव कुन्तला काशिकौरलाः ॥ ४१ ॥

अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह ।
 मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥ ४२ ॥
 सहस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी ।
 पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ४३ ॥
 गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः ।
 घाहीका घाटघानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥ ४४ ॥
 अपरास्ताश्च श्द्राश्च वाहिकाश्च सकेरलाः ।
 गान्धारा यवनाश्चव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥ ४५ ॥
 शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारदा हारमूषिकाः ।
 माठराश्चैव कनकाः कैवेया दम्भमालिकाः ॥ ४६ ॥
 क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
 काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा वर्धराश्च सर्लोकिकाः ॥ ४७ ॥
 घीराश्चैव तुपाराश्च पहवाधायता नराः ।
 आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥ ४८ ॥
 लम्पकाः शुनःशोकाश्च कुलिका जाङ्गलैः सह ।
 औपध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥ ४९ ॥
 तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीराः करुणास्तथा ।
 शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥ ५० ॥
 एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशाग्निबोधत ।
 अन्धा घामङ्शुरावश्च बहवश्च रुढान्तकाः ॥ ५१ ॥
 तथापरेऽङ्गा यङ्गाश्च मरुदा मालवर्त्तिकाः ।
 भद्रतुङ्गाः प्रतिज्ञया भाट्याङ्गाश्चापमर्हकाः ॥ ५२ ॥

प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
 मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदारतथा ॥ ५३ ॥
 तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
 पूर्णाश्च केरलाश्चैत्र गोलाङ्गूलास्तथैव च ॥ ५४ ॥
 ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामटाः शकाः ।
 महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सत्र्यशः ॥ ५५ ॥
 आमीराः सह वैशिकया भटव्या सरवाश्च ये ।
 पुलिन्दाश्चैव मौलेया घैर्द्भा दन्तरीः सह ॥ ५६ ॥
 पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः ।
 कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालकाः ॥ ५७ ॥
 दक्षिणात्याम्त्यमी देशा अपरान्ताग्निथोधत ।
 शूर्पारकाः कालिप्रना लोलाम्तालकट्टै सह ॥ ५८ ॥
 इत्येते एपरान्ताश्च शृणुभ्यं विन्ध्यवासिनः ।
 मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोत्तरीः सह ॥ ५९ ॥
 उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्ध्यकैः सह ।
 तोपलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा घैदिशाम्नथा ॥ ६० ॥
 तुम्बुराम्नु चराध्वैव यवनाः पवनेः सह ।
 अमया रुण्डिकेराश्च चर्चता होत्रधर्तयः ॥ ६१ ॥
 एते जनपदा सत्र्ये तत्र विन्ध्यनिवासिन ।
 अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पत्र्यताभ्रयिणश्च ये ॥ ६२ ॥
 नौदारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा मसाः ।
 कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा र्घ्याः सशुन्तकाः ॥ ६३ ॥

चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह ।
 कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥ ६४ ॥
 एयं तु भारतं घर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् ।
 दक्षिणे परतो यस्य पूर्वे चैव महोदधिः ॥ ६५ ॥
 हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ।
 तदेतद्भारतं घर्षं सर्व्ववीजं द्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥
 ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा ।
 मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥ ६७ ॥
 स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्रा शुभाशुभैः ।
 प्रयान्ति कर्मभूर्धिप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥ ६८ ॥
 देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः ।
 अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युताः क्षितौ ॥ ६९ ॥
 मनुष्यः कुरते यत्तु तत्र शक्यं सुरासुरैः ।
 तत्कर्मनिगङ्गप्रस्तैस्तत्कर्मक्षपणोन्मुखैः ॥ ७० ॥
 न भारतसम घर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः ।
 यत्र विप्रादयो घर्षाः प्राप्नुवन्त्यभिघाञ्छितम् ॥ ७१ ॥
 धन्यास्ते भारते घर्षं जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ ७२ ॥
 प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
 सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥ ७३ ॥
 तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा ।
 देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥ ७४ ॥

यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् ।
 नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥ ७५ ॥
 अर्हिसादिफलं सम्यक्फलं सर्वातिवाञ्छितम् ।
 ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥ ७६ ॥
 यत् फलं वनवासेन सन्यासेन च यत्फलम् ।
 इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्मणाम् ॥ ७७ ॥
 प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमा ।
 कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्यापिलान्द्विजाः ॥ ७८ ॥
 एवं सम्यङ्गया प्रोक्तं भारत वर्षमुत्तमम् ।
 सर्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिचिदर्जनम् ॥ ७९ ॥
 य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रिय ।
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८० ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्त्तनं
 नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

तत्रादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः ।

ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायक ॥ १ ॥ - -

समुद्रादुत्तरं तावद्दयावद्विरजमण्डलम् ।
 देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्वैरलङ्कृतः ॥ २ ॥
 तत्र देशे प्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः ।
 तपःस्वाध्यायनिरता घन्याः पूज्याश्च ते सदा ॥ ३ ॥
 श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे चाचार्य्यकर्मणि ।
 प्रशस्ताः सर्वकार्य्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजाः ॥ ४ ॥
 पट्कर्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
 इतिहासचिदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥ ५ ॥
 सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो धीतमत्सराः ।
 अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निदत्तपराः ॥ ६ ॥
 पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः सत्यवादिनः ।
 नियसन्नुत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवचिभूषिते ॥ ७ ॥
 इतरेऽपि त्रयो घर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसयताः ।
 म्यधम्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः ॥ ८ ॥
 । कोणादित्य इति रयातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः ।
 । यं दृष्ट्वा भास्करं मर्त्यः सध्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

मुनय ऊचुः ।

श्रातुमिच्छाम तद्गृहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम् ।
 तस्मिन् देशे सुरथेष्ट यत्रास्ते स दिपाकरः ॥ १० ॥

दृष्ट्वाप्यसौ ।

लपणस्योदधेस्तारे पवित्रे सुमनोहरे ।
 सूर्य्यत्र पालुक्ताकीर्णे देशे सूर्य्यगुणान्विते ॥ ११ ॥

विलिख्य पद्मं मेधावो रक्तचन्दनवारिणा ।
 अष्टपत्रं केसराढ्यं घर्तुलं चोर्द्धकर्णिकम् ॥ २३ ॥
 तिलतण्डुलतुयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम् ।
 रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने ॥ २४ ॥
 ताम्रामावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम् ।
 पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत् ॥ २५ ॥
 करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गै ह्युक्षयादिभिः ।
 आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् धृद्धासमन्वितः ॥ २६ ॥
 मध्ये चाग्निदले धीमात्रै र्भृते श्वासने दले ।
 फामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत् ॥ २७ ॥
 प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम् ।
 सम्पूज्य पद्ममावाप्त्य गगनात्तत्र भास्करम् ॥ २८ ॥
 कर्णिकोपरि सन्ध्याप्य सतो मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
 कृत्वा स्नानादिकं सर्व्यं ध्यात्वा तं सुसमाहितः ॥ २९ ॥
 मितपद्मोपरि रविं तेजोविश्ये व्ययस्थितम् ।
 विद्वांसं त्रिभुजं रत्नं पद्मपत्राकृणाभ्यरम् ॥ ३० ॥
 सर्व्यलक्षणसंयुतं सर्व्याभरणभूषितम् ।
 सुरूपं परदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥ ३१ ॥
 उद्यन्तं भास्करं कृत्वा सान्द्रमिन्दूरमग्निगम् ।
 तत्तप्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धारणीं गतः ॥ ३२ ॥
 कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकवित्तन्तु पाण्यतः ।
 श्वशरेण तु मन्त्रेण शृण्व्यांशुभ्यं निषेदयेत् ॥ ३३ ॥

अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नेवाभ्यं प्रयच्छति ।
 श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिप्राप्तो रक्षिर्यत ॥ ३४ ॥
 अग्निनिर्घृतिचाट्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च ।
 हच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राप्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥ ३५ ॥
 दत्ताभ्यं गन्धधूपञ्च दीप नैवेद्यमेव च ।
 जप्त्वा स्तुत्वा नमस्त्वा मुद्रा वद्भवा विसर्जयेत् ॥ ३६ ॥
 ये चाभ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रिया ।
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या स्त्रिय शूद्राश्च सयता ॥ ३७ ॥
 भक्तिभावेन सतत विशद्देनान्तरात्मना ।
 ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परा गतिम् ॥ ३८ ॥
 त्रैलोक्यदीपक देव भास्कर गगनेस्तम् ।
 ये सश्रयन्ति मनुजास्ते स्यु सुखस्थ भाजनम् ॥ ३९ ॥
 यावन्न दीयते चाभ्यं भास्कराय यथोदितम् ।
 तावन्न पूजयेद्विष्णु शङ्कर चा सुरेश्वरम् ॥ ४० ॥
 तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादभ्यं दिने दिने ।
 आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमै ॥ ४१ ॥ ।
 एव ददाति यश्चाभ्यं सप्तम्या सुसमाहित ।
 आदित्याय शचि स्नात स लभेदीप्सित फलम् ॥ ४२ ॥
 रोगाद्धिमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् ।
 विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥ ४३ ॥
 य य काममभियायन् सूर्यायाभ्यं प्रयच्छति ।
 तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरप सुधी ॥ ४४ ॥

स्नात्वा वै सागरे दत्त्वा सूर्यायाख्यं प्रणम्य च
 नरो वा यदि वा नारां सर्वकामफलं लभेत् ॥ ४५ ॥
 ततः सूर्यालयं गच्छेत् पुण्यमादाय वाग्यतः ।
 प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ४६ ॥
 पूजयेत् परया भक्त्या कोणाकं मुनिसत्तमाः ।
 गन्धं पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपैर्नैवेद्यकैरपि ॥ ४७ ॥
 दण्डवन् प्रणिपातेश्च जयशब्दैस्तथा स्तवैः ।
 पर्यं सम्पूज्य तं देवं सहस्रांशं जगत्पतिम् ॥ ४८ ॥
 दशानामभ्यमेधाना फलं प्राप्नोति मानवः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो युष्मा दिव्यघर्षुर्नरः ॥ ४९ ॥
 सप्तापरान् सप्त परान् घशानुद्भृत्य भो द्विजाः ।
 विमानेनाशेषेणैव कामगेन सुपर्शसा ॥ ५० ॥
 उपर्णीयमानो गन्धर्वैः सृष्ट्यलोकं स गच्छति ।
 भुक्त्या तत्र परान् भोगान् यापयद्भूतसंग्रहम् ॥ ५१ ॥
 पुण्यक्षयादिहायातः प्रयरे योगिनां कुले ।
 घनुष्येदेशे भयेद्विप्रः स्यधर्मनिरत शूचिः ॥ ५२ ॥
 योगं विवश्यतः प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
 घेत्रे मामि मिते पशे यात्रां दमनमञ्जिकाम् ॥ ५३ ॥
 यः करोति नरस्तत्र गृष्णीतः स फलं लभेत् ।
 शवनीत्यापने भानोः संक्रान्त्यां विष्णुवायने ॥ ५४ ॥
 पारे रथेऽग्निर्धौ चैव पर्यकाण्डेऽथवा द्विजाः ।
 ये तत्र यात्रां कुर्यन्ति धरुषा संवतेन्द्रिया ॥ ५५ ॥

विमानेनार्कवर्णेण सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते ।

आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपने ॥ ५६ ॥

रामेश्वर इति ख्यात सर्वकामफलप्रद ।

ये तं पश्यन्ति कामारि स्नात्वा सम्प्रष्टमहोदधौ ॥ ५७ ॥

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यकैश्चरैः ।

प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥ ५८ ॥

राजसूयफलं सम्प्रवाजिमघफलं तथा ।

प्राप्नुवन्ति मशतमान संसिद्धिं परमा तथा ॥ ५९ ॥

कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।

उपगोयमाना गन्धर्वैः शिबलोकं व्रजन्ति ते ॥ ६० ॥

आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।

पुण्यक्षयादिहागत्य चातुर्वेदा भवन्ति ते ६१ ॥

शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते ।

यस्तत्र सवितु क्षेत्रे प्राणास्त्यजति मानव ॥ ६२ ॥

स सूर्य्यलोकमास्थाय देववन्मोक्षते दिवि ।

पुनर्मानुषता प्राप्य राजा भवति धार्मिक ॥ ६३ ॥

योगं रवेः समासात्र ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।

एवं मया मुनिश्रेष्ठाः प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम्

कोणार्कस्योदधेस्तीरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ६४ ॥

इति श्रात्राक्षे महापुराणे स्वयम्भु ऋषिसवादे कोणादि-

त्यमाहात्म्यकीर्त्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

तत्रादौसूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊच ।

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् ।
भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिपुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥
न तृप्तिमधिगच्छाम शृण्वन्तः सुखदां कथाम् ।
तव चक्रोद्गमवा पुण्यामादित्यस्याघनाशिनाम् ॥ २ ॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतावर ।
देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥ ३ ॥
प्रणिपाने नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे ।
दीपधूपप्रदाने च संमार्ज्जनविधौ च यत् ॥ ४ ॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने ।
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा संप्रदीयते ॥ ५ ॥
कथञ्च क्रियते भक्ति कथं देवः प्रसीदति ।
एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

अर्घ्यं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजात्तमाः ।
भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥ ७ ॥
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कोत्स्यते ।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ८ ॥

तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयित्वा ।
 अग्निशुभ्रपकश्चैव स वै भक्तः सनातनः ॥ ९ ॥
 तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा ।
 तत्कर्मभृद्भवेद् यस्तु वै भक्तः सनातनः ॥ १० ॥
 देवार्थं क्रियमाणानि यः कर्माण्यनुमन्यते ।
 कीर्तनाद्वापरो विप्राः स वै भक्ततरो नरः ॥ ११ ॥
 नाम्यसूपेत तद्भक्तान् ननिन्द्याद्यान्यदेवताम् ।
 आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो नरः ॥ १२ ॥
 गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्चिन्ननुन्मिपञ्चिमिपन्नपि ।
 यः स्मरेद्भाम्भकरं नित्यं स वै भक्ततरो नरः ॥ १३ ॥
 एवंविधा त्वियं भक्तिः सदा कार्या विजानता ।
 भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा ॥ १४ ॥
 क्रियते नियमो यस्तु दानं विप्राय दीयते ।
 प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरम्नथा ॥ १५ ॥
 पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भक्त्या समुपाहृतम् ।
 प्रतिगृह्णन्ति तद्देवो नास्त्रिकान् घर्ज्जयन्ति च ॥ १६ ॥
 भावशुद्धिः प्रयोक्त्या नियमाचारसंयुता ।
 भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत् ॥ १७ ॥
 स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि धिवस्वतः ।
 उपवासेन भक्त्या वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८ ॥
 प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः ।
 तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते मात्र संशयः ॥ १९ ॥

भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्व्यात् प्रदक्षिणाम् ।
 प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ २० ॥
 सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्व्याद्भ्योमप्रदक्षिणाम् ।
 प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥ २१ ॥
 एकाहारो नरो भूत्वा पृथ्यां योऽर्चयते रविम् ।
 नियमव्रतचारी च भवेद्भक्तिसमन्वितः ॥ २२ ॥
 सप्तम्यां वा महाभागा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
 अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥ २३ ॥
 सप्तम्यामथवा पृथ्यां स याति परमां गतिम् ।
 कृष्णपक्षस्य सप्तम्या सोपवासो जिनेन्द्रियः ॥ २४ ॥
 सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ।
 पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति ॥ २५ ॥
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः ।
 सर्व्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥ २६ ॥
 सर्व्वपापविनिर्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति ।
 अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥ २७ ॥
 क्रमवृद्ध्या चतुर्द्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः ।
 द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥ २८ ॥
 सर्व्वकामप्रदा ह्येवा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी ।
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥ २९ ॥
 सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् ।
 स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥ ३० ॥

दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ।
 यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥ ४२ ॥
 सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया ।
 रक्तचन्दनसमिश्रै रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः ॥ ४३ ॥
 उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सरालभेत् ।
 उदयात् परिवर्त्तत यावदस्तमने स्थितः ॥ ४४ ॥
 जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा ।
 आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम् ॥ ४५ ॥
 अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदापयेत् ।
 उदये श्रद्धया युक्तं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४६ ॥
 सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसंयुतम् ।
 अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ४७ ॥
 अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुर्वौ भूम्यां तथैव च ।
 प्रतिमायां तथा पिण्ड्या दैयमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
 नापसर्व्व्यं न सत्यञ्च दद्यादभिमुख. सदा ।
 सद्युतं गुग्गुलं घापि रवेर्भक्तिसमन्वितः ॥ ४९ ॥
 तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
 श्रीवासं चतुरस्रञ्च देवदारुं तथैव च ॥ ५० ॥
 कर्पूरागुरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्गगामिन. ।
 अयने तूत्तरे सूर्यमथवा दक्षिणायने ॥ ५१ ॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।
 विपुत्रेपूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च ॥ ५२ ॥

पूजयित्वा विशेषेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 एव वेलासु सर्वासु सर्वकालञ्च मानय ॥ ५३ ॥
 भक्त्या पूजयते योऽकं सोऽर्कलोके महायते ।
 कसरैः पायसे पूरि फलमूर्च्छतोदने ॥ ५४ ॥
 घलिं कृत्वा तु सूर्याय सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
 घृतेन तर्पणं कृत्वा सर्वसिद्धो भवेन्नर ॥ ५५ ॥
 क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तार्पेन युज्यते ।
 दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्थसिद्धि लभेन्नर ॥ ५६ ॥
 स्नानार्थमाहरेद्दु यस्तु जलं भानो समाहित ।
 तीर्थेषु शुचितापत्र स याति परमा गतिम् ॥ ५७ ॥
 छत्र ध्वजं वितानं वा पनाका चामराणि च ।
 श्रद्धया मानये दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
 यदुयद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति ।
 तत्तस्य शतसाहस्रमुन्पादयति भारकर ॥ ५९ ॥
 मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुरुरुनम् ।
 सर्वं सूर्यप्रसादेन तद्दशैव त्रयोहति ॥ ६० ॥
 एकाहेनापि यद्भानो पूजाया प्राप्यते फलम् ।
 यथोक्तदक्षिणधिर्नैर्न तत् ऋतुशतैरपि ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सूर्यपूजादि नामैकोन

त्रिंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगतपते ।
भास्करस्य सुरश्रेष्ठ घटनस्तेषु दुल्लभम् ॥ १ ॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥ २ ॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च घातप्रस्थोऽथ मिश्रुकः ।
य इच्छेन्मोक्षमास्थ तुं देवतां कां यजेत सः ॥ ३ ॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गं कृतो नि श्रेयसं परम् ।
स्वर्गतश्चैव किं कुर्याद्भूयेन च च्यवने पुनः ॥ ४ ॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव क पिता ।
यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥ ५ ॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं सर्वं स्यावरजङ्गमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तद्ब्रवान् धक्तुमर्हति ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

उद्यन्तेवैप कुरुने जगद्विति मिरं करैः ।
नातः परतरो देवः कश्चिदस्यो द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥
अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।
तापयत्येष त्रौल्लोकान् भवन् रश्मिभिरुल्बणः ॥ ८ ॥

सर्व्वदेवमयो ह्येव तपता तपनो घर ।

सर्व्वस्य जगतो नाथ सर्व्वसाक्षी जगत्पति ॥ ६ ॥

सक्षिपन्त्येव भूतानि तथा विसृजने पुन ।

एष भाति तपत्येव वर्णत्येव गमस्तिमि ॥ १० ॥

एष घाता विघाता च भूतादिर्मूतभावन ।

न ह्येव क्षयमायानि नित्यमक्षयमण्डल ॥ ११ ॥

पितृणा च पिता ह्येव देवताना हि देवता ।

ध्रुवस्थान स्मृतं ह्येतद्गुणम्मात्र च्यवने पुन ॥ १२ ॥

सर्गकाले जगत् ऋत्स्नमादित्यान् सम्प्रसूरते ।

प्रलये च तमन्ये ते भास्कर दीप्ननेत्रसम् ॥ १३ ॥

योगिनश्च प्यमरयातास यत्त्रा गृहकृतेवरम् ।

वायुर्मूर्त्वा विशन्त्यस्मिन्ते नोराशी दिवाकरे ॥ १४ ॥

अस्य रग्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमा ।

वसन्त्याश्रि य मुनय ससिद्धा देवते सह ॥ १५ ॥

गृहस्था जनकायाश्च राजानो योगधर्मिण ।

वालखिलादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिन ॥ १६ ॥

वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाया मिश्रयन्तथा ।

योगमास्थाय सर्व्वे ते प्रविष्टा सूर्यमण्डलम् ॥ १७ ॥

शुको व्यासनुत श्रोमान्योगप्रममवाप्य स ।

आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भायमास्थित ॥ १८ ॥

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मचिणुशिवादय ।

प्रत्यक्षोऽय परो देव सूर्यस्तिमिरनाशन ॥ १९ ॥

चतुर्थी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
 स्थिता घनस्पती सा तु औपधीषु च सर्व्वतः ॥ ३१ ॥
 पञ्चमी तस्य या मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
 अग्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजा पुष्पाति नित्यश ॥ ३२ ॥
 मूर्त्तिं षष्ठी रवेर्या तु अर्य्यमा इति विश्रुता ।
 घायो संसग्णा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥ ३३ ॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
 भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥ ३४ ॥
 मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
 अग्नीं प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥ ३५ ॥
 नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामत ।
 प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥ ३६ ॥
 दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
 घायो प्रतिष्ठिता सा तु प्रहादयति वै प्रजाः ॥ ३७ ॥
 मूर्त्तिस्त्येकादशी भानोर्नाम्ना घरुणसङ्गिता ।
 जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥ ३८ ॥
 मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता ।
 लोकाना सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरिस्तटे ॥ ३९ ॥
 घायुमक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।
 अनुगृह्णन् सदा भक्तान् घरैर्नानाविधैस्तु सः ॥ ४० ॥
 पयं सा जगता मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
 तत्र मित्र स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्र परं स्मृतम् ॥ ४१ ॥

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता ।
 यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ २० ॥
 अतो भवद्भिः सततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः ।
 स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरु ॥ २१ ॥
 अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः ।
 मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमा ॥ २२ ॥
 अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च ।
 सृष्ट्वा ससामरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥ २३ ॥
 लोकानां स हितार्थाय स्थितचन्द्रसरित्तटे ।
 सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान्सृष्ट्वा च विविधा प्रजाः ॥ २४ ॥
 तत शतसहस्राशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम् ।
 कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते ॥ २५ ॥
 इन्द्रो धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्च्यमा भगः ।
 विष्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥ २६ ॥
 आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना ।
 कृत्स्नं जगदिदं व्याप्त मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥ २७ ॥
 तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता ।
 स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी ॥ २८ ॥
 द्वितीया तस्य या मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता ।
 स्थिता प्रजापतित्वेन विविधा सृजते प्रजाः ॥ २९ ॥
 तृतांयार्कस्य या मूर्तिर् पर्जन्य इति विधुता ।
 मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः ॥ ३० ॥

चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता ।
 स्थिता धनस्पती सा तु औपधीषु च सर्व्वतः ॥ ३१ ॥
 पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता ।
 अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥ ३२ ॥
 मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या तु अर्घ्यमा दात विश्रुता ।
 वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता ॥ ३३ ॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता ।
 भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम् ॥ ३४ ॥
 मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता ।
 अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम् ॥ ३५ ॥
 नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः ।
 प्रादुर्भवति सा नित्य देवानामरिसूदनी ॥ ३६ ॥
 दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता ।
 वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रहादयति वै प्रजाः ॥ ३७ ॥
 मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना धरुणसंज्ञिता ।
 जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः ॥ ३८ ॥
 मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता ।
 लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्ते ॥ ३९ ॥
 वायुमक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा ।
 अनुगृह्णन् सदा भक्तान् धरैर्नानाधिधैस्तु सः ॥ ४० ॥
 एवं सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा ।
 तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्र परं स्मृतम् ॥ ४१ ॥

आमिद्वादशभिस्तेन सचित्रा परमात्मना ।

कृ स्त जग देद व्याप्त मूर्त्तैर्मिथ द्विजोत्तमा ॥ ४२ ॥

तस्माद्गुह्ये गो नमस्यश्च द्वादशस्थासु मूर्त्तिषु ।

भक्तिमद्विरैर्नर्नित्य तद्गतेनान्तरात्मना ॥ ४३ ॥

इत्येव द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानव ।

नित्य श्रुत्वा पठित्वा च सूर्यलोके महीयते ॥ ४४ ॥

मुनय ऊचु ।

यदि तावदय सूर्यश्चादिदेव सनातन ।

तत कस्मात्तपस्नेवे घरेषु प्राकृतो यथा ॥ ४५ ॥

एतद् सप्रवक्ष्यामि पर गुह्य विभावसो ।

पृष्ट मित्रेण यत् पूर्वं नारदाय महात्मने ॥ ४६ ॥

प्राडमयोक्तास्तु युष्मभ्य रवेर्द्वादश मूर्त्तय ।

मित्रश्च घरुणश्चाभी तासा तपसि स स्थेनी ॥ ४७ ॥

अव्भक्षो घरुणस्तासा तस्थौ पश्चिमसागरे ।

मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा ॥ ४८ ॥

अथ मेरुगिरे शृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात् ।

नारदस्तु महायोगो सर्वलोकाश्चरन् घशी ॥ ४९ ॥

धाजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तप ।

तं दृष्ट्वा तु तपस्यन्त यस्य कौतूहल ह्यभूत् ॥ ५० ॥

योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यकाव्यक्त सनातन ।

धृतमेकात्मकं येन त्रैलोक्य सुमहात्मना ॥ ५१ ॥

य पिना सर्व्यदेवानां पराणामपि यः परः ।
 अयजद्देवताः कास्तु पितृन् वा कानसौ यजेत् ॥ ५२ ॥
 इति सञ्चिन्त्य मनसा त देवं नारदोऽब्रवीत् ।

नारद उवाच ।

वेदेषु स पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे ।
 त्वमज्ज शाश्वतो धाता त्वं निधानमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥
 मृतं मम्य भवच्चैव त्वयि सर्व्यं प्रतिष्ठितम् ।
 चत्वारश्चथमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि ॥ ५४ ॥
 यजन्ति त्वामहरहस्त्यां मूर्त्तित्व समाश्रितम् ।
 पिता माता च सर्व्यस्य देवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥ ५५ ॥
 यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विदुमहे ॥ ५६ ॥

मित्र उवाच ।

अवाच्यमेतद्दकव्यं परं गुह्यं सनातनम् ।
 त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥ ५७ ॥
 यत्तन् सूक्ष्मविज्ञेयमयत्कमचलं ध्रुवम् ।
 इन्द्रियेरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैर्विचर्जितम् ॥ ५८ ॥
 स ह्यन्तरात्मा भूताना क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते ।
 त्रिगुणाद्भ्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥ ५९ ॥
 हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः ।
 महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥ ६० ॥
 सांख्यश्च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः ।
 स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः ॥ ६१ ॥

धृतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना ।
 अशरीरः शरीरेषु सर्वेषु निवसत्यसौ ॥ ६२ ॥
 वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः ।
 ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥ ६३ ॥
 सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् ।
 सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥ ६४ ॥
 सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
 सर्वतः श्रुतिमङ्गलोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६५ ॥
 विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।
 एकश्चरति वै क्षेत्रे स्त्रैरचारी यथासुखम् ॥ ६६ ॥
 क्षेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम् ।
 तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥ ६७ ॥
 अथक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते ।
 विश्वं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्वत्र उच्यते ॥ ६८ ॥
 तस्मात् स बहुरूत्याद्विश्वरूप इति स्मृतः ।
 तस्यैकस्य महत्त्वं हि स चैकः पुरुषः स्मृतः ॥ ६९ ॥
 महापुरुषशब्दं हि विभर्त्येकः सनातनः ।
 स तु विधिक्रियायुक्तः सृजत्यात्मानमात्मना ॥ ७० ॥
 शतधा सद्भ्रथा चैव तथा शतसद्भ्रथा ।
 कोटिशञ्च करोत्येव प्रत्यगात्मानमात्मना ॥ ७१ ॥
 आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा ।
 भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु सः ॥ ७२ ॥

एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा ।
 एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः ॥ ७३ ॥
 स्थानान्नरविशेषाच्च यथाग्निर्लभनं पराम् ।
 संज्ञां तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादियु तथाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
 यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते ।
 तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते ॥ ७५ ॥
 यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवलः ।
 एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्तते ॥ ७६ ॥
 नित्यं हि नास्ति जगति भूत स्यावरजद्गमम् ।
 अक्षयश्चाप्रमेषश्च सर्वगश्च स उच्यते ॥ ७७ ॥
 तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमाः ।
 अयक्तायक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते ॥ ७८ ॥
 तां योनिं ब्रह्म गो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।
 लोके च पूज्यते योऽसौ देवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ७९ ॥
 नास्ति तस्मान् पते ह्यन्यं पिता देवोऽपि वा द्विजाः ।
 आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्त्वं पूजयाम्यहम् ॥ ८० ॥
 स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्त नमस्यन्ति देहिनः ।
 तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफला गतिम् ॥ ८१ ॥
 तं देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः ।
 भक्त्या नम्यन्त्यन्याद्यं गतिश्चैवा ददाति सः ॥ ८२ ॥
 स हि सर्वगश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते ।
 एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥ ८३ ॥

ये च तद्भाषिता लोक एकतत्य समाश्रिताः ।
 एतदप्यधिकं तेषां यदेक प्रविशन्त्युत ॥ ८४ ॥
 इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः ।
 अस्मद्भक्त्वापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम् ॥ ८५ ॥
 सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणैर्वरद स्मृतम् ।
 सर्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥ ८६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमेतन् पुराख्यातं नारदाय तु भानुना ।
 मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमाः ॥ ८७ ॥
 इदमाख्यानमारयेयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः ।
 न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देय कदाचन ॥ ८८ ॥
 यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः ।
 स सहस्रार्चियं देयं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥ ८९ ॥
 मुच्येतार्चास्तथा रोगान्छुत्वेमामादित कथाम् ।
 जिज्ञासुलभने ज्ञानं गतिमिष्टा तथैव च ॥ ९० ॥
 क्षणेन लभतेऽध्याजमिदं यः पठने मुने ।
 यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसशयम् ॥ ९१ ॥
 तस्माद्भयदुग्भिः सततं स्मर्त्वाग्नौ भगवान् रविः ।
 स च धाता विधाता च सर्व्यम्य जगतः प्रभुः ॥ ९२ ॥

इति श्रीब्रह्मणे महापुराणे आदित्यमहात्म्यवर्णनं

नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

आदित्यमूलमपिलं त्रैलोक्य मुनिसत्तमाः ।
भयत्यस्माज्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १ ॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवीकसाम् ।
महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं भार्ग्वलीककम् ॥ २ ॥
सर्व्यात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापति ।
सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥ ३ ॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्षृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ४ ॥
सूर्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ।
भाषाभाषी हि लोकानामादित्याग्नि सृती पुरा ॥ ५ ॥
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम् ।
तत्र गच्छन्ति निर्व्वान जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥ ६ ॥
क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः ।
मासाः सम्बत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥ ७ ॥
अथादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते ।
कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया ॥ ८ ॥
ऋतुनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः ।
कृतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणोपधिगणः कुतः ॥ ९ ॥

अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च ।
 जगत्प्रभावाद्द्विशते भास्कराद्धारितस्करात् ॥ १० ॥
 नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति ।
 नावृष्ट्या परिधिं धत्ते धारिणा दीप्यते रविः ॥ ११ ॥
 घसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः ।
 श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः ॥ १२ ॥
 हेमन्ते ताम्रवर्णाभः शिशिरे लोहितो रविः ।
 इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥ १३ ॥
 ऋतुस्वभाधवर्णैश्च सूर्यः क्षेमसुभिक्षकृत् ।
 अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥
 द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि घक्ष्याम्यशेषतः ।
 आदित्यः सचिता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः ॥ १५ ॥
 मार्चाण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ।
 रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः ॥ १६ ॥
 विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो धरुणोऽप्यर्च्यमा ।
 विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः ॥ १७ ॥
 इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः ।
 उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥ १८ ॥
 विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्च्यमा तथा ।
 विवस्वान् ज्यैष्ठमासे तु भापाढे चांशुमान् स्मृतः ॥ १९ ॥
 पर्जन्यः श्रावणे मासि धरुणः प्रौष्ठसंज्ञके ।
 इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥ २० ॥

मार्गशीर्षे तथा मित्रं पौषे पूषा दिवाकर ।
 माघे भगस्तु विश्वेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥ २१ ॥
 शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दोष्यते सदा ।
 दीप्यते गौसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्ष्यमा ॥ २२ ॥
 द्वि सप्तकैर्विषस्वास्तु अशुमान् पञ्चमिस्त्रिभि ।
 त्रिषस्वानिव पर्जन्यो घरुणश्चार्य्यमा तथा ॥ २३ ॥
 मित्रवद्भगवास्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ।
 इन्द्रस्तु द्विगुणै पडभिर्घातैकादशभि शतै ॥ २४ ॥
 सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभि शतै ।
 उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य घर्द्धन्ते रश्मयस्तथा ॥ २५ ॥
 दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्य्यरश्मय ।
 एव रश्मिसहस्रन्तु सूर्य्यलोकादनुग्रहम् ॥ २६ ॥
 एतन्नाम्ना चतुर्विंशदेक एषा प्रकीर्त्तित ।
 विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम् ॥ २७ ॥

मुनय ऊचु ।

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्येकं प्रजापते ।
 तेषा भवति किं पुण्य गतिश्च परमेश्वर ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्व मुनिशाद्दूर्वा सारभूत सनातनम् ।
 अल नामसहस्रेण पठन्नेत्र स्तव शुभम् ॥ २९ ॥
 यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च ।
 तानि च कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्व भास्करस्य वै ॥ ३० ॥

विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भाम्करो रवि ।
 लोकप्रकाशक श्रीमाल्लोकचक्षुर्महेश्वर ॥ ३१ ॥
 लोकसाक्षी त्रिलोकेश कर्त्ता हर्त्ता तमिन्द्रहा ।
 तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्ताश्ववाहन ॥ ३२ ॥
 गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सत्र्यदेघनमसृत्त ।
 एकत्रिंशतिरित्येव स्तव इष्ट सदा रत्रे ॥ ३३ ॥
 शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर ।
 स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥ ३४ ॥
 य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये ।
 स्तौति सूर्य्यं शुचिभूत्वा सर्व्वपापै प्रमुच्यते ॥ ३५ ॥
 मानस वाचिक वापि देहज कर्मज तथा ।
 एकजप्येन तत्सर्व्वं नश्यत्यर्क्स्य सन्निधौ ॥ ३६ ॥
 एकजप्यश्च हामश्च सन्ध्योपासनमेव च ।
 धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च ॥ ३७ ॥
 अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे ।
 पूजितोऽयं महामन्त्र सर्व्वपापहर शुभ ॥ ३८ ॥
 तस्माद्भूय प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजा ।
 स्तुवीध्व चरद् देव सर्व्वकामफलप्रदम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीब्राह्म महापुराणे मार्त्तण्डस्यैकत्रिंशतिनामानुकीर्त्तन
 नाम एकत्रिंशोऽध्याय ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

मार्तण्डजन्ममाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचु ।

निर्गुण. शाश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकरः ।
पुनर्द्वादशधा जात ध्रुतोऽस्मामिस्त्वयोदित ॥ १ ॥
स कथं तेजसो रश्मि म्रियया गर्भे महाद्युति ।
सम्भूतो भाम्करो जातस्तत्र न सशयो महान् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

दक्षस्य हि सुता श्रेष्ठा बभूव षष्टि शोभना ।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव विनताद्यास्तथैव च ॥ ३ ॥
दक्षस्ता प्रददौ कन्या कश्यपाय त्रयोदश ।
अदितिर्जनयामास देवास्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ ४ ॥
वैत्यान्दितिर्दनुश्चोप्रान्दानवान् उलदपितान् ।
विनताद्यास्तथा चान्या. सुपुबु म्याणुजङ्गमान् ॥ ५ ॥
तस्याथ पुत्रदोहित्रैर् पौत्रदोहितृकादिभिः ।
व्याप्तमेतज्जगत् सत्र्यं तेषा तासा च वै मुने ॥ ६ ॥
तेषा कश्यपपुराणा प्रधाना देवतागणाः ।
सात्विका राजासाश्चान्ये तामसाश्च गणा स्मृता ॥ ७ ॥
देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा. त्रिभुवनेश्वरान् ।
ऋष्या ब्रह्मविदा श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ॥ ८ ॥

तानवाधन्त सहिताः सापत्न्याहैत्यदानवाः ।

ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ॥ ६ ॥

इतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः ।

आच्छिन्नद्वयत्रभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम् ॥ १० ॥

आराधनाय सचितुः पर यत्नं प्रचक्रमे ।

एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥

तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥

अदितिख्याच ।

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्म सुपुण्यं विभ्रतेऽतुलम् ।

धाम धामवतामीशं धामाधारं नमस्कृत्य व्रतम् ॥ १२ ॥

जगतामुपकाराय त्वामहं स्तो

त्राददानस्य यद्रूपं तोषं तस्मै

ग्रहीतुमष्टमासेन

विन्नतस्तव यद्रूपमतितीव्रं

समेतमग्निपोमाभ्यां

यद्रूपमृग् यजुः साम्नामैक्ये

धिश्चमेतत्त्रयीसंशं

यत्तु तस्मात्परं

अस्थूलं स्थूलममलं

ततः कालेन ममता भगवास्तपनो द्विजा ।

प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥

सा ददर्श महाकूटतेजसोऽम्बरसंवृतम् ।

भूमौ च सस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम् ॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा च ततो देवो साध्वसं परमं गता ॥ २० ॥

अदितिर्वाच ।

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वा पश्यामि गोपते ।

प्रसादं कुरु पश्येयं यद्वृषं ते दिवाकर ॥ २१ ॥

भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान् ।

ब्रह्मोवाच ।

ततः स तेजसस्तस्मादाधिभूतो विभावसुः ।

अदृश्यत तदादित्यस्तत्तताम्रोपमः प्रभु ॥ २२ ॥

ततस्तां प्रणता देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजा ।

प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि ॥ २३ ॥

प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी ।

प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥ २४ ॥

अदितिर्वाच ।

देव प्रसीद पुत्राणा हृतं त्रिभुवनं मम ।

यज्ञभोगाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः ॥ २५ ॥

तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते ।

अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून् ॥ २६ ॥

तानवाधन्त सहिताः सापत्न्याद्द्वैत्यदानचाः ।
 ततो निराकृतान् पुत्रान्द्वैतेयैर्दानवैस्तथा ॥ ९ ॥
 हतं त्रिभुवनं द्रुष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः ।
 आच्छिन्नद्वयज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम् ॥ १० ॥
 आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ।
 एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥
 तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥

अदितिरुवाच ।

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं विभ्रतेऽतुलम् ।
 धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥ १२ ॥
 जगतामुपकाराय त्वामहं स्तोमि गोपते ।
 आददानस्य यद्रूपं तोत्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥ १३ ॥
 ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम् ।
 विभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥ १४ ॥
 समेतमग्निषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने ।
 यद्रूपमृग् यजुः साम्नामैक्येन तपते तव ॥ १५ ॥
 विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मैविभावसो ।
 यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् ॥
 अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥ १६ ॥

ब्रह्मावाच ।

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
 निराहारा धिवस्वन्तमारिराधयिषुर्द्विजाः ॥ १७ ॥

ततः कालेन ममता मगवांस्तपनो द्विजाः ।

प्रत्यक्षनामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥

सा ददर्श महाकृततेजसोऽम्बरसंवृतम् ।

भूमौ च संस्थितं भास्वञ्ज्वालामिरतिदुर्दृशम् ॥ १९ ॥

तं दृष्ट्वा च ततो देवां साध्वसं परमं गता ॥ २० ॥

अदितिरुवाच ।

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ।

प्रसादं कुरु पश्येयं यदृपं ते दिवाकर ॥ २१ ॥

भक्तानुक्म्पक विभो त्वद्वक्तान् पाहि मे सुतान् ।

ब्रह्मोवाच ।

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।

अदृश्यत तदादित्यस्ततताम्रोपमः प्रभुः ॥ २२ ॥

ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः ।

प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं घरं मत्तो यमिच्छसि ॥ २३ ॥

प्रणता शिरसा सा तु जानुर्पीडितमेदिनी ।

प्रत्युवाच विचस्वन्तं घरदं समुपस्थितम् ॥ २४ ॥

अदितिरुवाच ।

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम ।

यज्ञभोगाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः ॥ २५ ॥

तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते ।

अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्या तान्नाशये रिपून् ॥ २६ ॥

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रमो ।
 भवेयुरधिपाञ्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ २७ ॥
 तथानुकल्यं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम ।
 कुरु प्रसन्नार्तिहर काव्यं कर्त्ता त्वमुच्यते ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामाह भगवान् भास्करो पारितस्करः ।
 प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः ॥ २९ ॥

सूर्य्य उवाच ।

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमदोपतः ।
 त्वत्पुत्रशत्रून् दृष्टोऽहं नाशयाम्याशु निर्गृतः ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच ।

सा च तं प्राह गर्मान्तमेतत्पश्येति कोपना ।
 न मारित विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥ ३५ ॥
 इत्युक्त्वा तं तदा गर्ममुत्सर्ज सुरारणिः ।
 जाड्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्यचनक्रोपिता ॥ ३६ ॥
 तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्ममुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
 तुष्टाव प्रणतो भूत्वा धान्भिराद्याभिरादरात् ॥ ३७ ॥
 संस्तूयमान स तदा गर्माण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
 पद्मपत्रसवर्णाभिस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुक्तः ॥ ३८ ॥
 अथान्तरिक्षादाभाप्य कश्यप मुनिसत्तमम् ।
 सतोयमेवगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३९ ॥

वागुवाच ।

मारितमितियत् प्रोक्तमेतदण्डं त्वयादिते ।
 तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ ४० ॥
 हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ।
 देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥ ४१ ॥
 प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतोजसः ।
 ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥
 सह देवैर्मुदा युक्तो दानवाश्च तमभ्ययुः ।
 तेषां युद्धमभूद्दुघोरं देवानामसुरैः सह ॥ ४३ ॥
 शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् ।
 तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिताः ॥ ४४ ॥

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुज प्रभो ।
 भयेयुरधिपाञ्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ २७ ॥
 तथानुकल्प पुत्राणा सुप्रसन्नो रवे मम ।
 कुरु प्रसन्नार्चिहर काव्यं कर्त्ता त्वमुच्यते ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामाह भगवान् भास्करो धारितस्कर ।
 प्रणतामदिति विप्रा प्रसादसुमुखो विभु ॥ २९ ॥

सूर्य उवाच ।

सहस्रादीन ते गर्भं सम्भूयाद्दमरोपत ।
 त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽह नाशयाम्याशु निर्गृत ॥ ३० ॥

ब्रह्मोवाच ।

ब्रह्मोवाच ।

सा च तं प्राह गर्मान्तमेतत्पश्येति कोपना ।
 न मारित विपश्चाणा मृत्युरेव भविष्यति ॥ ३५ ॥
 इत्युत्त्वा तं तदा गर्भमुत्सर्ज सुरारणिः ।
 जाञ्ज्वल्यमानं तेजोमि पत्युर्वचनकोपिता ॥ ३६ ॥
 तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
 तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥ ३७ ॥
 संस्तूयमान स तदा गर्माण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
 पद्मपत्रसवर्णाभिस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुख ॥ ३८ ॥
 अथान्तरिक्षादाभाप्य कश्यप मुनिसत्तमम् ।
 सतोयमेवगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३९ ॥

वागुवाच ।

मारितमितियत् प्रोकमेतदण्डं त्वयादितेः ।
 तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डारयो भविष्यति ॥ ४० ॥
 हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञमागहरानरीन् ।
 देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम् ॥ ४१ ॥
 प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हर्ताजसः ।
 ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥
 सह देवैर्मुदा युको दानवाश्च तमभ्ययुः ।
 तेषां युद्धमभूद्दुघोरं देवानामसुरैः सह ॥ ४३ ॥
 शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् ।
 तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरीक्षिता ॥ ४४ ॥

तेजसा दद्यामानास्ते भस्मीभूता महासुराः ।

ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्व्ये दिव्यौकसः ॥ ४५ ॥

तुष्टुद्युस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदिति तथा ।

स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्व्वत् ॥ ४६ ॥

भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ।

कदम्बपुष्पचद्वास्वानधश्चोद्भ्र्वञ्च रश्मिभिः ।

वृत्तोऽग्निपिण्डसदृशो दध्ने नातिस्फुटं घपुः ॥ ४७ ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं कान्ततरं पश्चाद्द्रूपं संलब्धवान् रविः ।

कदम्बगालकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वष्टा तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विचस्वते ।

प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ४९ ॥

श्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः ।

द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा ॥ ५० ॥

यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विचस्वतः ।

तेनाति तापयामास त्रीं ल्लोकान् सचराचरान् ॥ ५१ ॥

तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विचस्वतः ।

असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां धाक्यमग्रधीत् ॥ ५२ ॥

संज्ञोवाच ।

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।

निर्व्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥ ५३ ॥

इमौ च बालकौ महा कन्या च घरवर्णिनी ।
सम्मात्र्या नैव चात्थेयमिदं भगवते त्वया ॥ ५४ ॥

छायोवाच ।

आ कचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यता यत्र घाञ्छितम् ॥ ५५ ॥
इत्युक्त्वा व्रीडिता सज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् ।
घत्सराणां सहस्रन्तु घसमाना पितुर्गृहे ॥ ५६ ॥
मर्तुं समीपे याहीति विप्रोक्ता सा पुनः पुनः ।
आगच्छद्वडवा भूत्वा कुरुनथोत्तरास्ततः ॥ ५७ ॥
तत्र तेषु तपसाध्वी निराहारा द्विजोत्तमा ।
पितुः समीपं याताया सज्ञाया घाम्पतत्परा ॥ ५८ ॥
तद्रूपधारिणी छाया भास्करसमुपस्थिता ।
तस्याञ्च भगवान् सूर्यः सङ्क्षेपमिति चिन्तयन् ॥ ५९ ॥
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यका तथा ।
सज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां तथाकरोत् ॥ ६० ॥
स्नेहं न पूर्वज्जातानां तथा कृतवती तु सा ।
मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥ ६१ ॥
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः ।
स वै कोपाच्च वात्स्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।
पदा सन्तर्ज्जयामास न तु देहे न्यपातयत् ॥ ६२ ॥

छायोवाच ।

पद्म तज्जयसे यस्मात्पितुर्भाष्या गरीयसीम् ।
 तस्मात्तवैप चरण पतिष्यति न सशयः ॥ ६३ ॥
 यमस्तु तेन शापेन भृश पीडितमानस ।
 मनुना सह धर्मात्मा पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६४ ॥

यम उवाच ।

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते ।
 विसृज्य ज्यायस भक्त्या कनीयास बुभूषति ॥ ६५ ॥
 तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित ।
 यात्पाद्वा यदि घा मोहात्तद्गघान् क्षन्तुमर्हसि ॥ ६६ ॥
 शप्तोऽहं तात कीपेन जनन्या तनयो यत ।
 ततो मन्ये न जननीमिमा यै तपतांघर ॥ ६७ ॥
 तप प्रसादाद्यरणो भगवन् न पतेद्दुयथा ।
 मातृशापाद्य मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥ ६८ ॥

रविरवाच ।

धर्मशय महत्पुत्र भविष्यत्यत्र पारणम् ।
 येन त्वामापिशस्त्रोधो धर्मज्ञ धर्मशालिन् ॥ ६९ ॥
 स्वर्ग्येषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते ।
 न तु मात्रागिराजानां व विच्छादनियर्त्तनम् ॥ ७० ॥
 न शक्यमेतन्निष्क्या तु कर्तुं, मातुर्यंघरतप ।
 विशिन्तेऽहं विधास्यामि पुत्रज्जेहादुप्रदम् ॥ ७१ ॥

वृमयो मासमात्राय प्रयास्यन्ति महीतलम् ।

वृत्तं तस्या घञ सन्त्य त्वञ्च प्राता भविष्यसि ॥ ७२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

आदित्यमस्त्वर्वाच्छाया किमर्थं तनयेषु वै ।

तुल्येष्वप्यधिक स्नेह एक प्रति वृत्तस्त्वया ॥ ७३ ॥

नूनं नैषा त्वं जननी सज्ञा कापि त्वमागता ।

निर्गुणेष्वप्यपत्येषु माता शाप न दास्यति ॥ ७४ ॥

सा तन्परिहरन्ती च शापाद्दमाता तदा रवे ।

कथयामास वृत्तान्तं स श्रुत्वा ज्यशुरं यर्या ॥ ७५ ॥

स चापि त यथान्यायमर्चयित्वा तदा रविम् ।

निर्दग्धुकाम रोपेण सान्त्वयानस्तमर्वाङ् ॥ ७६ ॥

विश्वकर्म्मोवाच ।

तवातिनेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदु सहम् ।

असहन्ता तु तत्संज्ञा घने चरति वै तप ॥ ७७ ॥

द्रश्यते ता भवानग्र स्वा भार्यां शुभचारिणीम् ।

रूपार्यं भवतोऽरण्ये चरन्ती सुमहत्तप ॥ ७८ ॥

श्रुत मे ब्रह्मणो घाक्यं तव तेजोऽघरोधने ।

रूपं निवर्त्तयाम्यद्य तघ कान्त दिवस्पते ॥ ७९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तथेति त प्राह त्वष्टार भगवान् रवि ।

ततो विवस्वतो रूपं प्रागासोत्परिमण्डलम् ॥ ८० ॥

विश्वकर्म्म त्वनुज्ञात शाकद्वीपे विवस्वता ।

भ्रमिमारोप्य तत्तेज शतनायोपचक्रमे ॥ ८१ ॥

भ्रमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता ।
 समुद्राद्रिवनोपेता त्वारुरोह मही नमः ॥ ८२ ॥
 गगनञ्चाखिलं चिप्राः सचन्द्रग्रहतारकम् ।
 अधो गतं महाभागा यभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥ ८३ ॥
 चिक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे यभ्रुवुध्व तथार्णवाः ।
 ध्वमिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिघन्धनाः ॥ ८४ ॥
 ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः ।
 प्रुष्टवद्रश्मिनियन्धीनि यन्धनानि अधो ययुः ॥ ८५ ॥
 येगन्नमणसम्पातवायुक्षिप्तां सहस्रशः ।
 व्यशीर्ष्यन्त महामेघा घोराराधचिराधिणः ॥ ८६ ॥
 भाम्बदुन्नमणपिन्नान्तभूम्याकाशरसातलम् ।
 जगदाबुल्लमत्यथं तदासोन्मुनिसत्तमाः ॥ ८७ ॥
 त्रैलोक्यपमाबुल्लं धीक्ष्यन्नममाणं सुरर्षयः ।
 देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुषुः ॥ ८८ ॥
 धादिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वंभूतये भुयः ।
 स्वर्गंभित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥ ८९ ॥
 स्वस्ति मेऽस्तु जगन्नाथ धर्मोपयं दिवापर ।
 इन्द्रादपान्तदा देवा लिङ्गयमानमभास्तुपन् ॥ ९० ॥
 जय देव जगत्स्यामिन् जयाशेष जगत्पते ।
 श्रुपयध नत. सप्त षसिष्टात्रिपुरांगमाः ॥ ९१ ॥
 तुष्टुषुर्विधिभिः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वर्वातिपादिनः ।
 यशोक्ति,मिरयावागिर्षाल,विद्याशय तुष्टुषुः ॥ ९२ ॥

अग्निराद्याश्च मास्वन्तं लिख्यमानं मुक्षु युताः ।
 त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥ ६३ ॥
 त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डविवर्तिनाम् ।
 सम्पूज्यस्तं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥ ६४ ॥
 शं नोऽस्तु द्विपदे निन्यं शं नद्वाम्स्तु चतुष्पदे ।
 ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ६५ ॥
 कृत्वाञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोमिः प्रणता रविम् ।
 ऊचुस्ते धिविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखाद्यहाः ॥ ६६ ॥
 सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन ।
 ततो द्वाहाह्वृश्चैव नारदस्तुम्युरुस्तथाः ॥ ६७ ॥
 उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम् ।
 पङ्कजमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः ॥ ६८ ॥
 मूर्च्छनामिश्च तालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम् ।
 विश्वार्चा च घृताची च उर्व्वश्चय तिलोत्तमा ॥ ६९ ॥
 मेनका सहजन्या च रम्या चाप्सरसांवरा ।
 ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावर्त्सा ॥ १०० ॥
 भावहासविलासाद्यान् कुर्व्वत्योऽमिनयान्धहृन् ।
 प्रावाचन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिभर्त्कराः ॥ १०१ ॥
 पणवाः पुष्कराश्चैव भृदङ्गाः पट्टहानकाः ।
 देवदुन्दुमयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०२ ॥
 गायद्मिश्चैव नृत्यद्मिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः ।
 सूर्य्यवादित्रयोपैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम् ॥ १०३ ॥

ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनघ्रात्ममूर्त्तयः ।
 लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः ॥ १०४ ॥
 ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे ।
 तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥ १०५ ॥
 आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्म्मणा ।
 नाम्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥ १०६ ॥
 न तु निर्भत्सितं रूपं तेजसो हननेन तु ।
 कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः ॥ १०७ ॥
 इति हिमजलयर्म्मकालहेतोहरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
 तदुपरि लिखनं निशम्य भानो
 ब्रजति, दिवाकरलोकमायुपोऽन्ते ॥ १०८ ॥
 एवं जन्म रवेः पूर्वं बभूव मुनिसत्तमाः ।
 रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्त्तितम् ॥ १०९ ॥
 इति श्रीब्राह्मो महापुराणे मार्त्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम
 द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

भूयोऽपि कथयास्माकं कथा सूर्यसमाश्रिताम् ।

न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम् ॥ १ ॥

योऽयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः ।

एतद्वेदितुमिच्छाम प्रभायोऽस्य कुतः प्रभो ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तमोभूतपु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु पूर्वं बुद्धिरजायत ॥ ३ ॥

अहङ्कारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्त्तकः ।

घाट्यग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमाजयत ॥ ४ ॥

तस्मिन्नण्डे त्विमे लाकाः सप्त चैव प्रतिष्ठिताः ।

पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः ॥ ५ ॥

तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं विष्णुर्महेश्वरः ।

विमूढास्तामसाः सर्वे प्रध्यायन्ति तमीश्वरम् ॥ ६ ॥

ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः ।

ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञात सविता तदा ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक् पृथक् ।

दिव्याभिस्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽऽस्माभिस्तदेश्वरः ॥ ८ ॥

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः ।

आदिकर्त्ताऽसि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥ ९ ॥

जीवनः सर्वभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम् ।

मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥ १० ॥

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्व विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।

घायुरिन्द्रश्च सामश्च विवश्वान्वयघ्नस्तथा ॥ ११ ॥

त्वं फालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः ।

सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूपि च ॥ १२ ॥

प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः मनातनः ।

ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः ॥ १३ ॥

शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः ।

सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥ १४ ॥

सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः ।

भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च मद्गः सत्यं तपो जनः ॥ १५ ॥

प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम् ।

दुर्निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १६ ॥

सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः ।

स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १७ ॥

वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् ।

सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १८ ॥

विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्चिर्वितम् ।

विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ १९ ॥

परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः ।

परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ २० ॥

अविद्धेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम् ।

अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥ २१ ॥

नमो नमः कारणकारणाय,

नमो नमः पापविमोचनाय ।

नमो नमस्ते दितिजार्दनाय,

नमो नमो रोगघिमोचनाय ॥ २२ ॥

नमो नमः सर्वघरप्रदाय,

नमो नमः सर्वसुखप्रदाय ।

नमो नमः सर्वधनप्रदाय,

नमो नमः सर्वमतिप्रदाय ॥ २३ ॥

स्तुतः स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः ।

उवाच वाचा कल्याण्या को घरो घः प्रदीयताम् ॥ २४ ॥

देवा ऊचुः ।

त्वातितैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत् ।

सहनीयं तद्भवतु दिताय जगतः प्रमो ॥ २५ ॥

एषमस्त्विति सोऽप्युत्तवा भगवानादिकृत् प्रभुः ।

लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्मवर्षहिमप्रदः ॥ २६ ॥

ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः ।

ध्यायन्ति ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥ २७ ॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ।

सर्वञ्च तरते पापं देवमकं समाश्रितः ॥ २८ ॥

अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ।

मानोर्भक्तिमस्कारकला नार्हन्ति पाङ्गशीम् ॥ २९ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ।

पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते दिवाकरम् ॥ ३० ॥

भूताश्रयो भूतपति सर्व्वलोकनमस्कृतः ।
 स्रष्टा सम्वर्त्तको वह्निः सर्व्वस्याऽऽदिरल्लोलुपः ॥ ४१ ॥
 अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्व्वतोमुखः ।
 जयो विशालो वरदः सर्व्वभूतनिपेवितः ॥ ४२ ॥
 मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रग प्राणधारणः ।
 धन्वन्तरिधूर्मकेतुरादिदेवोऽदिते सुतः ॥ ४३ ॥
 द्वादशात्मा रविर्दक्ष पिता माता पितामहः ।
 स्वर्गद्वार प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥
 देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
 चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः ॥ ४५ ॥
 एतद्वै कीर्त्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजसः ।
 नाम्नामष्टशत रम्य मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ॥ ४६ ॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं,

ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्दितम् ।

परकनकहुताशनप्रभं,

प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥ ४७ ॥

सूर्य्योदये यः सुसमाहितः पठेत्,

स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान् ।

लभेत् जातिस्मरतां नरः स तु,

स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम् ॥ ४८ ॥

इमं स्तत्र देववरस्य यो नरः,

प्रकीर्त्तयेच्छद्धमनाः समाहितः ।

मुनय ऊचुः ।

किमर्थं स भवो देवः सर्वभूतहिने रतः ।

जघान यज्ञं दक्षस्य देवैः सर्वैरलङ्कृतम् ॥ ७ ॥

न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम् ।

श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

दक्षस्याऽऽसन्नपुत्र कन्या याश्चैवं पतिसङ्गताः ।

स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीय ताः पिताऽभ्यर्चयद्गृहे ॥ ९ ॥

ततस्त्वभ्यर्चिता विप्रा न्यवसंस्ताः पितुर्गृहे ।

तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै ॥ १० ॥

नाऽऽजुहावाऽत्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिव्रिण् ।

अकरोत्सन्नतिं दक्षे न च काञ्चिन्महेश्वरः ॥ ११ ॥

जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थितः ।

ततो ज्ञात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ताः पितुर्गृहम् ॥ १२ ॥

जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम् ।

ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसम्मताम् ॥

ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी कोधसमाकुला ॥ १३ ॥

सत्युवाच ।

यधीयसीभ्यः श्रेष्ठाऽहं किं न पूजसि मां प्रभो ।

असत्कृतामवस्थां यः कृतवानसि गर्हिताम् ॥

अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च मां त्वं सत्कर्तुंमर्हसि ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः ॥ १५ ॥

दक्ष उवाच ।

त्वत्तः श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बालाः सुता मम ।

तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमताः सति ॥ १६ ॥

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्थाश्च महायोगाः सुधार्मिकाः ।

गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्वे ते श्यम्बकात् सति ॥ १७ ॥

वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।

भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥ १८ ॥

तैश्चापि स्पर्द्धते शर्व्यः सर्वे ते चैव तंप्रति ।

तेन त्वां न युभूपामि प्रतिकूलो हि मे भवः ॥ १९ ॥

इत्युक्तवांस्तदा दक्षः सम्भ्रमूढेन चेतसा ।

शापार्थमात्मनश्चैव येनोक्ता धै महर्षयः ।

तथोक्ता पितरं सा धै क्रुद्धा देवी तमग्रयोत् ॥ २० ॥

सत्युवाच ।

याद्मनःकर्मभिर्यस्माद्दुष्टां मां विगर्हसि ।

तस्मात्पजाभ्यहं देहमिमं तात तपाऽऽत्मजम् ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तत्रस्नेनापमानेन सती नृगाद्मर्षिता ।

अप्रर्षीद्वनं देवी नमस्त्वय्य श्यमगुणे ॥ २२ ॥

सन्युवाच ।

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता ।
तत्राप्यहमसम्मृडा सम्भृता धार्म्मिकी पुन ।
गच्छेय धर्मपत्नीत्व त्र्यम्बकस्यैव धीमता ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तत्रैवाथ समासीना रुष्टाऽऽत्मान समादधे ।
धारयामास चाऽऽनेयीं धारणामान्मनाऽऽत्मनि ॥ २४ ॥
तत स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरित ।
सर्चाङ्गभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्मस्म चकार ताम् ॥ २५ ॥
तदुपश्रुत्य निघ्न सत्या देव्या म शूलधृक् ।
सवादञ्च तयोरुद्गुचा यथातथ्येन शङ्कर ।
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभु ॥ २६ ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती ।
प्रशस्ताश्चेतरा सर्व्वास्त्वत्सुता भर्तृमि सह ॥ २७ ॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षय ।
उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्ययोनिजा ॥ २८ ॥
दुने वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
अभिज्याहृत्य सप्तपर्नि दक्ष सोऽभ्यशपत् पुन ॥ २९ ॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषम्यान्तरे मनो ।
प्राचीनरहिंष पौत्र पुत्रश्चापि प्रचेतस ॥ ३० ॥

दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मारिष्यायां जनिष्यसि ।
 कन्यायां शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥ ३१ ॥
 अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते ।
 धर्मकामार्थयुक्तेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
 ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥ ३३ ॥

दक्ष उवाच ।

यस्मात्त्वं मत्कृते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि ।
 तस्मात् सादं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥ ३४ ॥
 कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अपः स्पृशन्नि कर्मसु ।
 इहैव घत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽऽ युगक्षयात् ।
 ततो देवैस्तु ते सादं न तु पूजा भविष्यति ॥ ३५ ॥

रुद्र उवाच ।

चातुर्वर्ण्यन्तु देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते ।
 न भोक्ष्ये सहितस्तैस्तु ततो भोक्ष्याम्यहं पृथक् ॥ ३६ ॥
 सर्वेषाञ्चैव लोकानामादिर्भूलोक उच्यते ।
 तमहं धारयाम्येकः स्येच्छया न तवाऽऽज्ञया ॥ ३७ ॥
 तस्मिन् धृते सर्व्य (स्वर्ग) लोकाः सर्वे तिष्ठन्ति शाश्वताः ।
 तस्मादहं घसामीह सततं न तवाज्ञया ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा ।
 स्वायम्भुषीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह ॥ ३९ ॥

यदागृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरः प्रभुः ।
 समस्तेनेह यज्ञेन सोऽयजद्दैघतैः सह ॥ ४० ॥
 अथ देवी सती (यत्ते) जज्ञे प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ।
 मेनायां तामुमां देवी जनयामास शैलराट् ॥ ४१ ॥
 सा तु देवी सती पूर्वमासीत् पश्चादुमाऽभवत् ।
 सहव्रता भवस्यैषा नैतया मुच्यते भवः ॥ ४२ ॥
 यावदिच्छति संस्थानं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह ।
 मारीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता ॥ ४३ ॥
 साऽहं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा ।
 विष्णुं कीर्तिरूपा सूर्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती ॥ ४४ ॥
 नैतांस्तु विजहत्येता भर्तृन् देव्यः कथञ्चन ।
 एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाश्रुपेऽन्तरे ॥ ४५ ॥
 प्राचीनवर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसाम् ।
 दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां पुनर्नृप ॥ ४६ ॥
 जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम् ।
 भृगवादयस्तु ते सर्वे जज्ञिरे वै महर्षयः ॥ ४७ ॥
 आद्ये त्रेतायुगे पूर्वं मनोर्वैघस्वतस्य ह ।
 देवस्य महतो यज्ञे चारुणीं विभ्रतस्तनुम् ॥ ४८ ॥
 इत्येषोऽनुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरे गतः ।
 प्रजापतेश्च दक्षस्य श्यम्वकस्य च धीमतः ॥ ४९ ॥
 तस्मान्नानुशयः काप्यो घरेष्विह कदाचन ।

जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य शुभाशुभैः ।
जन्तोर्न भूतये ख्यातिस्तन्न कार्थं विजानता ॥ ५० ॥

मुनय ऊचुः ।

कथं रोपेण सा पूर्वं दक्षस्य दुहिता सती ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे ब्रभो ॥ ५१ ॥
देहान्तरे कथं तस्या पूर्व्वदेहो बभूय ह ।
भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम् ॥ ५२ ॥
स्वयम्बरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि ।
विवाहश्च जगन्नाथ सर्व्याश्चर्य्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥
तत्सर्व्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ।
श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां चातिमनोहराम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कथां पापप्रणाशिनीम् ।
उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्व्वकामफलप्रदाम् ॥ ५५ ॥
कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम् ।
अपृच्छद्विमघान् घृत्तं लोके ख्यातिकरं हितम् ॥ ५६ ॥
केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ख्यातिश्च परमा मुने ।
तथैव चार्थनीयत्वं सत्सु तत्कथयस्व मे ॥ ५७ ॥

कश्यप उवाच ।

अपत्येन महायाहो सर्व्वमेतदवाप्यते ।
ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभिः सह ॥ ५८ ॥

किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि ।
वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्ट पुराऽचल ॥ ५६ ॥
घाराणसीमह गच्छन्नपश्य सस्थित द्विवि ।
विमान सुनत्र दिव्यमनीषस्य महर्द्धिमत् ॥ ६० ॥
तस्याधस्तादार्यानाड गर्त्तस्थाने शृणोम्यहम् ।
तमह तपसा ज्ञात्वा तत्रैवान्तर्हित स्थित ॥ ६१ ॥
अथागात्तत्र शैलेन्द्र विप्रो नियमवान् शुचि ।
तीर्यामिपेकपूतात्मा पर तपसि सस्थित ॥ ६२ ॥
अथ स व्रजमानस्तु व्यात्रेणाऽऽभीपितो द्विज ।
विपेश त तदा देश स गर्तो यत्र भूधर ॥ ६३ ॥
गर्त्ताया घोरणस्तम्बे लग्नमानास्तदा मुनीन् ।
अपश्यदार्त्तोऽदु पात्ता स्तानपृच्छच्च स द्विज ॥ ६४ ॥
द्विज उवाच ।

के यूय घोरणस्तम्बे लग्नमाना ह्यधोमुखा ।
दु सिता केत मोक्षश्च युष्माक मविताऽनघा ॥ ६५ ॥
पितर ऊचु ।

घय ते वृत्तपुण्यस्य पितर सपितामहा ।
प्रपितामहाश्च त्रिष्यामस्तव दुष्टेन कर्मणा ॥ ६६ ॥
नरकोऽय महाभाग गर्त्तारूपेण सस्थित ।
त्व चापि घोरणस्तम्बस्त्वयि लग्नमहे घयम् ॥ ६७ ॥
यावच्च जीवसे विप्र तावदेव घय स्थिता ।
मृते त्वयि गमिष्यामो नरक पापचेतस ॥ ६८ ॥

यदि त्वं दारसंयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम् ।
 उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम घयमेनसः ॥ ६६ ॥
 नान्येन तपसा पुत्र तीर्थानाञ्च फलेन च ।
 एतत् कुर्वन् महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥ ७० ॥
 कश्यप उवाच ।

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम् ।
 पितॄन् गर्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥ ७१ ॥
 स्वयं रुद्रस्य दयितः सुवेशो नाम नामतः ।
 सम्मतो बलवांश्चैव रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥ ७२ ॥
 तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणघट्टभृशम् ।
 उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं घरवर्णिनीम् ॥ ७३ ॥
 ब्रह्मोवाच ।

स एवमुक्त्वा ब्रह्मपिणा शैलेन्द्रो नियमस्थितः ।
 तपश्चकाराप्यतुलं येन तुष्टिरभून्मम ॥ ७४ ॥
 तदा तमुत्पपाताहं घरदोऽस्मीति चाब्रवम् ।
 ब्रूहि तुष्टोऽसि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥ ७५ ॥
 हिमवानुवाच ।

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणैः सर्वैरलङ्कृतम् ।
 एवं घरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे प्रमो ॥ ७६ ॥
 ब्रह्मोवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः ।
 तदा तस्मै घरं घाहं दत्तयाम्नसत्प्लितम् ॥ ७७ ॥

कन्या भवित्री शैलेन्द्र तपसाऽनेन मुन्नत ।
 यस्याः प्रमाद्यात्सर्वत्र कीर्त्तिमाप्स्यसि शोभनाम् ॥ ७८ ॥
 अर्धितः सर्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः ।
 पावनश्चैव पुण्येन देवानामपि सर्वतः ॥ ७९ ॥
 ज्येष्ठा च सा भवित्री ते अन्ये चात्र ततः शुभे ॥ ८० ॥
 सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुत्पादयत् ।
 अपर्णामेकपर्णान्च तथा चैकपाटलाम् ॥ ८१ ॥
 न्यप्रोधमेकपर्णन्तु पाटलञ्चैकपाटलाम् ।
 अशित्वा त्वेकपर्णन्तु अनिरेतस्तपोऽचरत् ॥ ८२ ॥
 शतं घर्षसहस्राणां दुश्चरं देषदानवैः ।
 आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत् ॥ ८३ ॥
 पाटलेन तथैरेन विदधे चैकपाटला ।
 पूर्णं घर्षसहस्रे तु आहारं ता प्रचक्रतुः ॥ ८४ ॥
 अपर्णा तु निराहारा ता माता प्रत्यभाषत ।
 निषेधयन्ती चोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता ॥ ८५ ॥
 सा तयोक्ता तथा मात्रा देवा दुधरचारिणी ।
 तेनैव नाम्ना लोकेषु पिष्याता मुरपूजिता ॥ ८६ ॥
 एतच्च त्रिकुमारीकं जगत्स्यापरजङ्गमम् ।
 एतासां तपसां वृत्तं यावद्भूमिर्घरिष्यति ॥ ८७ ॥
 तपशरीरास्ताः सर्वास्तिष्ठो योगं समाश्रिताः ।
 सर्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिर्यापनाः ॥ ८८ ॥

ता लोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च । ,
 अनुगृह्णन्ति लोकांश्च तपसा स्वेन सर्व्वदा ॥ ८६ ॥
 उमा तासां घरिष्ठा च ज्येष्ठा च घरवर्णिनी ।
 महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥ ६० ॥
 दत्तकध्वोशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दन' ।
 आसीत्तस्यैकपर्णा तु देवलं सुपुत्रे सुतम् ॥ ६१ ॥
 या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला ।
 पुत्रं सा तमलर्कस्य जैगोपव्यमुपस्थिता ॥ ६२ ॥
 तस्याश्च शङ्खलितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ ।
 उमा तु या मया तुभ्यं कीर्त्तिता घरवर्णिनी ॥ ६३ ॥
 अथ तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा ।
 प्रधूपितमिहाऽऽलक्ष्य घञस्तामहमत्रवम् ॥ ६४ ॥
 देधि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने ।
 त्वया सृष्टमिदं सर्व्वं मा हृत्वा तद्विनाशाय ॥ ६५ ॥
 एवं हि धारयसे लोकानिमान् सर्व्वान् स्वतेजसा ।
 ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः ॥ ६६ ॥

देव्युवाच ।

यदर्थं तपसो तस्य चरणं मे पितामह ।
 त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः ॥ ६७ ॥

प्रत्यावाच ।

ततस्तामप्रयं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे ।
 स त्वां स्वयमुपागम्य इदं परयिष्यति ॥ ६८ ॥

शर्व एव पति श्रेष्ठः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ।

वयं सदैव यस्येमे वक्ष्या वै किङ्कराः शुभे ॥ ९९ ॥

स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं,

स्वयम्भुरायास्यति देवि तैऽन्तिकम् ।

उदाररूपो विहृतादिन्पः,

समानरूपोऽपि न यस्य कस्यचित् ॥ १०० ॥

महेश्वरः पर्वतलोकवासि,

चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः ।

वितेन्दुना हीन्द्रसमानवर्चसा,

विभीषणं रूपमिवास्थिता यः ॥ १०१ ॥

इति श्री आदि ब्राह्मो महापुराणे स्वयम्भुःकृपि

संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः—२३८०

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पार्वत्युपाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

ततस्तामनुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम् ।

देवी शीघ्रिण कालेन धूर्जटिर्नोल्लोहितः ॥ १ ॥

स भर्ता तव देवेशो भविता मा तपः कृयाः ।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम् ॥ २ ॥

जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह ।
 सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥ ३ ॥
 द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता ।
 अथागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्त्तिहरो हरः ॥ ४ ॥
 विहृतं रूपमास्थाय हस्यो.वाहुक एव च ।
 विभग्ननासिको भूत्वा कुब्जः केशान्तपिङ्गलः ॥ ५ ॥
 उवाच विहृतास्यश्च देवि त्वां धरयाम्यहम् ।
 अथोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम् ॥ ६ ॥
 अन्तर्भावविशुद्धात्मा कृपानुष्ठानलिप्सया ।
 तमुवाचार्य्यपाद्याभ्यां मधुपर्केण चैव ह ॥ ७ ॥
 सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥ ८ ॥

देव्युवाच ।

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीर्गृहे ।
 स प्रभुर्मम दाने चै कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥ ९ ॥
 गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमययम् ।
 स चेद्दाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततः स भगवान् देवस्तथैव विहृतः प्रभुः ।
 उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट् ॥ ११ ॥
 स तं विहृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमथाव्ययम् ।
 भीतः शापाद्य विमना इदं ध्वजमब्रवीत् ॥ १२ ॥

शैलेन्द्र उवाच ।

भगवन्नाचमन्येऽहं ब्राह्मणान् भुवि देवताः ।
 मनीषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते ॥ १३ ॥
 स्वयम्बरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः ।
 वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति ॥ १४ ॥
 तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः ।
 देव्या समीपमागत्य इदमाह महामनाः ॥ १५ ॥

शिव उवाच ।

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयम्बर इति श्रुतिः ।
 तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता भवेदिति ॥ १६ ॥
 तदापृच्छ्य गमिष्यामि दुर्लभां त्वां वरानने ।
 रूपवन्त समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम् ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्तो तदोरितम् ।
 भारञ्च रुद्रनिहितं प्रसादं मनसस्तथा ॥ १८ ॥
 सम्प्राप्योवाच देवेश मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा ।
 अहं त्वां वरविष्यामि नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥ १९ ॥
 अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन ।
 इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच ।

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्या तत्र संस्थिता ।
 स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे ॥ २१ ॥

ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा ।

उवाच तमशोकं वै घाचा सञ्जीवयन्निव ॥ २२ ॥

शिव उवाच ।

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम् ।

तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्यमरः सम्भविष्यसि ॥ २३ ॥

कामरूपां कामपुष्पः कामदो दयितो मम ।

सर्वाभरणपुष्पाढ्यः सर्वपुष्पफलोपगः ॥ २४ ॥

सर्वान्नभक्षकश्चैव अमृतस्वाद एव च ।

सर्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढप्रियः ॥ २५ ॥

निर्भयः सर्वलोकेषु भविष्यसि सुनिर्वृतः ।

आश्रमं वेदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥ २६ ॥

यो हि यास्यति पुण्यार्थी सोऽश्वमेधमवाप्स्यति ।

यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥

यश्चात्र नियमेर्युक्तः प्राणान् सम्यक् परित्यजेत् ।

स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छ्य हिमवत्सुताम् ।

अन्तर्द्वेषे जगत्स्रष्टा सर्वभूतप ईश्वरः ॥ २९ ॥

सापि देवी गते तस्मिन् भगवत्यमितात्मनि ।

तत एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह ॥ ३० ॥

उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतांप्रभौ ।

निशेव चन्द्ररहिता न घर्भौ विमनास्तदा ॥ ३१ ॥

अथ शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्त्तस्य शैलजा ।
 सरस्युदकसम्पूर्णं समीपे चाश्रमस्य च ॥ ३२ ॥
 स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेवः स्वयं शिवः ।
 क्रीडाहेतोः सरोमध्ये ग्राहग्रस्तोऽभवत्तदा ॥ ३३ ॥
 योगमायां समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम् ।
 तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं समभाषत ॥ ३४ ॥

बाल उवाच ।

त्रातु मां कश्चिदित्याह ग्राहेण हतचेतसम् ।
 धिकृष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथः ॥ ३५ ॥
 प्रयामि निधनं घने ग्राहस्यास्य दुरात्मनः ।
 शोचामि न स्वकं देहं ग्राहग्रस्तः सुदुःखितः ॥ ३६ ॥
 यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीं ।
 ग्राहगृहीतं मां श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुकी ॥ ३७ ॥
 प्रियपुत्रावेकपुत्रीं प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यतः ।
 अहो घत सुकृष्टं वै योऽहंबालोऽकृताश्रमः
 अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा तु देवी तं नादं विप्रस्याऽऽर्त्तम्य शोभना ।
 उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठन्वसोःद्विजः ॥ ३९ ॥
 सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुरूपिणम् ।
 ग्राहस्य मुह्यमाणं वैपमानमवस्थितम् ॥ ४० ॥

सोऽपि ग्राहवरः श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम् ।
 तं गृहीत्वा द्रुतं यातो मध्यं सरस एव हि ॥ ४१ ॥
 स कृप्यमाणस्तेजस्यी नादमात्तं तदाकरोत् ।
 अथाह देवि दुःखार्त्ता बालं दृष्ट्वा ग्राहावृतम् ॥ ४२ ॥

पार्वत्युवाच ।

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम् ।
 विमुञ्चेमं महादंष्ट्र क्षिप्रं भोमपराक्रम ॥ ४३ ॥

ग्राह उवाच ।

यो देवि दिवसे पठे प्रथमं समुपैति माम् ।
 स ग्राहरो मम पुरा विहितो लोककर्तृभिः ॥ ४४ ॥
 सोऽयं मम महाभागे पठेऽहनि गिरीन्द्रजे ।
 ग्राहणा प्रेरितो नूनं नैनं मोक्ष्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥

देव्युवाच ।

यन्मया हिमपच्छुद्धे चरितं तप उत्तमम् ।
 तेन बालमिमं मुञ्ज ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥ ४६ ॥

ग्राह उवाच ।

मा ष्यस्तपसो देवि भृशं बाले शुभानने ।
 यद्गृह्णीमि कुट धेष्टे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥ ४७ ॥

देव्युवाच ।

ग्राहाधिप यद्गम्यासु यन् गतामविगर्हितम् ।
 तन् कर्त्तव्यं तन्देशो यतो मे ग्राहणाः प्रिया ॥ ४८ ॥

ग्राह उवाच ।

यत् कृत वै तप किञ्चिद्वचत्या स्वतपमुत्तमम् ।
तत् सर्व मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥ ४६ ॥

दैव्युवाच ।

जन्मप्रभृति यत् पुण्य महाग्राह कृत मया ।
तत्ते सर्व मया दत्त बाल मुञ्च महाग्रह ॥ ५० ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूपित ।
आदित्य इव मभ्याहे दुर्निराक्ष्यस्तदाभवत् ॥ ५१ ॥
उवाच चैत्र तुष्टात्मा देवो लोकस्य धारिणीम् ॥ ५२ ॥

ग्राह उवाच ।

देवि कि कृत्यमेतत्ते सुनिश्चित्य महाव्रते ।
तपसोऽप्यर्जन दुःख तस्य त्यागो न शस्यते ।
गृहाण तप एव त्व बाल चैम सुमध्यमे ।
तुष्टोऽसि ते विप्रभक्त्या धर तस्माद्दामि ते ॥
सा त्वेषमुक्ता ग्राहेण उवाचेद् महाव्रता ॥ ५३ ॥

दैव्युवाच ।

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्र प्रयत्नत ।
तप पुनर्मया प्राप्य न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥ ५४ ॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृत बालस्य मोक्षणम् ।
न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥ ५५ ॥
दत्त्वा चाह न गृह्णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते ।
न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्ता पुनराहरेत् ॥ ५६ ॥

दत्तमेतन्मया तुभ्यं नाऽऽददानि हि तन् पुनः ।
त्वय्येष रमतामेतद्दालध्यायं विमुच्यताम् ॥ ५७ ॥

प्रह्लोवाच ।

तथोक्तस्तां प्रशस्याथ मुक्त्वा यालं नमस्य च ।
देयीमादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५८
यालोऽपि सरसस्तीरे मुक्तो प्राहेण वै तदा ।
स्वप्रलम्भ इषार्थोऽस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५९ ॥
तपसोऽपचयं मत्वा देवो हिमगिरीन्द्रजा ।
भूय एव तपः कर्तुंमारेभे नियमस्थिता ॥ ६० ॥
कर्तुकामां तपो भूयो ज्ञात्वा तां शङ्करः स्वयम् ।
प्रोवाच घञ्चनं विप्रा मा कृथास्तप इत्युत ॥ ६१ ॥
मह्यमेतत्तपो देवी त्वया दत्तं महाव्रते ।
तत्तेनैवाक्षयं तुभ्यं भविष्यति सहस्रधा ॥ ६२ ॥
इति लब्ध्वा घरं देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम् ।
स्वयम्वरमुदीक्षन्ती तस्थौ प्रीता मुदा युता ॥ ६३ ॥
इदं पठेद्भुयो हि नरः सदैव, बालानुभावाचरणं हि शम्भोः
स देहभेदं समवाप्य पूतो भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्यः ॥ ६४

इति श्रीब्राह्म महापुराणे स्वयम्भु ऋषि-

संवादे पार्वत्याः सत्त्वदर्शनं नाम

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२४४३

पट्त्रिंशोऽध्यायः ।

पार्वतीस्वयम्बरवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले ।

अभवत् स तु कालेन शैलपुत्र्या स्वयम्बर ॥ १ ॥

अथ पर्वतराजोऽसौ हिमवान् ध्यानकोचिद् ।

दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥ २ ॥

जानन्नपि महाशैल समदारक्षणेप्सया ।

स्वयम्बर तनो देव्या सर्वलोनेष्वघोषयत् ॥ ३ ॥

देवदानवसिद्धाना सर्वलोकनिवासिनाम् ।

वृणुयात् परमेशान समक्ष यदि मे सुता ॥ ४ ॥

तदेव सुम्न श्लाघ्य ममाभ्युदयसम्मतम् ।

इति सञ्चिन्त्य शैलेन्द्र ऋचा हृदि महेश्वरम् ॥ ५ ॥

आब्रह्मकेषु देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम ।

चृत्वा रत्नाकुल देश स्वयम्बरमचाकरत् ॥ ६ ॥

अथैवमाघोषितमात्र एव,

स्वयम्बरे तत्र नगेन्द्रपुत्र्या ।

देवादय सर्वजगन्निवासा ,

समाययुस्तत्र गृहातपेशा ॥ ७ ॥

प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्ट ,

सिद्धैर्वृतो योगिभिस्त्रमेयै ।

विनापितस्तेन महीधराणाऽऽ,

गतस्तदाऽहं त्रिदिवैरपेतः ॥ ८ ॥

अक्षणां सहस्रं सुरराट् स विभ्रद्-

दिव्याङ्गहारस्त्रगुदाररुपः ।

पेरायतं सर्व्वगजेन्द्रमुख्यं,

स्त्रयन्मदासारशृतप्रवाहम् ॥ ९ ॥

आरुह्य सर्व्वामरराट् स घञ्जं,

विभ्रत् समागात् पुरतः सुराणाम् ।

तेजःप्रभावाधिकतुल्यरूपी,

प्रोद्भासयन् सर्व्वदिशो विचखान् ॥ १० ॥

हैमं विमानं स बलत्पताक-

मारूढं भागाच्चरितं जवेन ।

मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च

घह्यर्कतेजःप्रतिमे विमाने ॥ ११ ॥

समभ्यगात् कश्यपसूनुरेकः

आदित्यमध्याद्भगनामधारी ।

पीनाङ्गयष्टिः सुकृताङ्गहार-

तेजोबलाज्ञासदृशप्रभावः ॥ १२ ॥

दण्डं समागृह्य कृतान्त आगा-

दारुह्य भीमं महिषं जवेन ।

महामहीध्रोच्छ्रयपीनगात्र-

। स्वर्णादिरत्नाञ्जितचारुवेशः ॥ १३ ॥

समीरण सर्व्वजगद्धिमर्त्ता,

विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि ।

सतापयन् सर्व्वसुरासुरेशा-

स्तेजोधिरुस्नेजसि सन्निविष्ट ॥ १४ ॥

वह्निः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये,

ज्वलन् प्रतस्थौ वरपेशधारी ।

नानामणिप्रज्वलिताङ्ग्यष्टि

र्जगद्गुरं दिव्यविमानमग्रम् ॥ १५ ॥

वारुह्य सर्व्वद्रविणाधिपेश,

स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च ।

आप्याययन् सर्व्वसुरासुरेशान्,

कान्त्या च वेशेन च चारुरूप ॥ १६ ॥

ज्वलन्महारत्नविविचरुप,

विमानमारुह्य शशी समायात् ।

श्यामाङ्ग्यष्टि सुविचित्रेश,

सर्व्वाङ्ग आवद्धसुगन्धिमाल्य ॥ १७ ॥

ताक्ष्यं समाह्वय महीध्रकल्प,

गदाधरोऽसौ त्वरित समेत ।

अथाश्विनौ चापि मिषगुरौ द्वा

वेक विमान त्वरत्याऽधिह्य ॥ १८ ॥

मनोहरौ प्रज्वलचारुशै,

आजगमतुर्देवघरौ सुवीरौ ।

सहस्रनागः स्फुरदग्निषणं,

विभ्रत्तदानीं ज्वलनार्कनेजाः ॥ १६ ॥

सादं स नागैरपरैर्महात्मा,

विमानमाह्वय समभ्यगाच्च ।

दितेः सुतानाञ्च महासुराणां,

षड्दुर्कशक्रानिलतुल्यभासाम् ॥ २० ॥

घरानुरूपं प्रविधाय वेशं,

वृन्द समागात् पुरतः सुराणाम् ।

गन्धर्वराजः स च चारुरूपी,

दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी ॥ २१ ॥

गन्धर्वसङ्घैः सहितोऽप्सरोभिः,

शक्राज्ञया तत्र समाजगाम ।

अन्ये च देवास्त्रिदिवान्तदानीं,

पृथक् पृथक् चारुगृहीतयेशाः ॥ २२ ॥

आजग्मुरारह्य विमानपृष्ठं,

गन्धर्व्ययक्षोरगकिन्नराश्च ।

शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये,

रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्तिः ॥ २३ ॥

आज्ञावलैश्वर्यकृतप्रमोदः,

स्थयम्बरं तं समलञ्चकार ।

हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेः,

माता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥ २४ ॥

पत्नी च शम्भो पुरुषस्य धीमतो,
 गीता पुराणे प्रकृति परा या ।
 दक्षस्य कोपाङ्गिमवदुगृह सा
 कायार्थमायास्त्रिदिवोकसा हि ॥ २५ ॥
 विमानपृष्ठे मणिहेमनुष्टे
 स्थिता बलन्चामरवीनिताङ्गी ।
 सर्व्वत्तुपुष्पा सुसुगन्धमाला
 प्रगृह्य देवी प्रसम प्रतस्थे ॥ २६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

माला प्रगृह्य देयान्तुस्थिताया देवससदि ।
 शम्भोरागतैर्देवै स्वयम्बर उपागते ॥ २७ ॥
 देया निजासया शम्भूमूत्वा पञ्चशिव शिशु ।
 उत्सङ्गनलसमुप्तो बभूव सहसा विभु ॥ २८ ॥
 ततो ददश त देवा शिशु पञ्चशिख स्थितम् ।
 ज्ञात्वा त समवय्यानाञ्जगृहे प्रातिसयुता ॥ २९ ॥
 अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षिन प्राप्य सत्पतिम् ।
 निवृत्ता च तदा तस्यै कृन्वा सा हृदि त विभुम् ॥ ३० ॥
 ततो कृष्णा शिशु देवा देया उत्सङ्गवर्त्तिनम् ।
 कोऽयमत्रेति समन्य चुन्नुशुर्भृशमोहिता ॥ ३१ ॥
 वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा ।
 स घाहुरुत्थितस्तस्य तथैव समतिष्ठत ॥ ३२ ॥

स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना ।

घञ्जं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च ॥ ३३ ॥

भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली ।

उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेतुमिच्छन् विमोहितः ॥ ३४ ॥

तस्यापि भगवान् घाटुं तथैवास्तम्भयत्तदा ।

घलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः ॥ ३५ ॥

शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवैक्षत ।

अथ तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च ॥ ३६ ॥

अहं परमसंविन्नो ध्यानमास्थाय सादरम् ।

बुद्धवान् देवदेवेशमुत्सङ्गे समास्थितम् ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वाऽहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम् ।

घवन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवांस्तमहं द्विजाः ॥ ३८ ॥

पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः ।

अज्ञस्त्यमज्ञरो देवः स्रष्टा विभुः परापरम् ॥ ३९ ॥

प्रधानं पुरुषो यस्यं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम् ।

अमृतं परमात्मा च श्वरः कारणं महत् ॥ ४० ॥

ब्रह्मासृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वरूपप्रकृतेः परः ।

इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम् ॥ ४१ ॥

पत्नीरूपं समास्थाय जगन्कारणमागता ।

नमस्तुभ्यं महादेव महादेया ये सद्विताय च ॥ ४२ ॥

प्रमादात्तप देवेश नियोगाद्य मया प्रजाः ।

देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मृदात्त्ययोगमायया ॥ ४३ ॥

कुरु प्रसादमेतेषा यथापूर्वं भवन्त्विमे ।
 तत एवमहविप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥
 स्तम्भितान् सर्वदेवास्तानिदं चाह तदोक्तवान् ।
 मूढाश्च देवता सर्वा नैनं पुथ्यत शङ्करम् ॥ ४५ ॥
 गच्छन्त्य शरणं शीघ्रमेतमेव महेश्वरम् ।
 सार्धं मयैव देवेश परमात्मानमभ्ययम् ॥ ४६ ॥
 ततस्ते स्तम्भिता सर्वे तथैव त्रिदिवीकस ।
 प्रणेमुर्मनसा सर्वं भावशुद्धेन चेतसा ॥ ४७ ॥
 अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवी महेश्वर ।
 यथापूर्वं चकाराऽऽशु देवतानां तनूस्तदा ॥ ४८ ॥
 तत एव प्रवृत्ते तु सर्वदेवनिवारणे ।
 षण्णवकार देवेशस्त्वयश्च परममद्भुतम् ॥ ४९ ॥
 तेजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चतुः सर्वे न्यमीलयन् ।
 तेभ्यः स परम चतुः स्ववपुर्द्रष्टिशक्तिमत् ॥ ५० ॥
 प्रादात् परमदेवेशमपश्यस्ते तदा विभुम् ।
 ते दृष्ट्वा परमेशान् तृतीयेक्षणधारिणम् ॥ ५१ ॥
 शम्भाद्या मेनिरे देवा सर्वे एव सुरेश्वरा ।
 तस्य देवो तदा दृष्टा समश्च त्रिदिवीकसाम् ॥ ५२ ॥
 पादयोः स्थापयामास नन्दमालाममितद्युति ।
 साधु साध्विति ते होयुः सर्वे देवा पुनर्विभुम् ॥ ५३ ॥
 सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्मूललाश्रितैः ।
 अथास्मिन्नन्तरे विप्रास्तमहं दीवतैः सह ॥ ५४ ॥

हिमवन्तं महाशैलमुक्तवांश्च महाद्युतिम् ।

श्लाघ्यः पूज्यश्च वन्द्यश्च सर्व्वेषां त्वं महानसि ॥ ५५ ॥

शर्व्वेण सह सम्बन्धो यस्य तेऽभ्युदयो महान् ।

क्रियतां चारुद्वाहः किमर्थं स्थीयते परम् ॥

ततः प्रणम्य हिमवांस्तदा मां प्रत्यभाषत ॥ ५६ ॥

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्व्वोदये मम ।

प्रसादः सहस्रोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि ॥

उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (कं वि) घट्स्व पितामह ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततः एवं वचः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः ।

उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥ ५८ ॥

मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकपः ।

तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्मितं पुरम् ॥ ५९ ॥

उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम् ।

रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥ ६० ॥

मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम् ।

चित्रा मारकती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥ ६१ ॥

भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता ।

तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्मिता ॥ ६२ ॥

शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः ।

सोमादित्यौ समं तत्र तापयन्तौ महामणी ॥ ६३ ॥

सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः ।

प्रचर्वा सुखसंस्पर्शो भवमक्तिं प्रदर्शयन् ॥ ६४ ॥

समुद्रास्तत्र धत्वार. शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः ।

देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥ ६५ ॥

गन्धर्वाप्सरस सध्वं नागा यक्षाः सराक्षसाः ।

औदका ऐचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणा ॥ ६६ ॥

तुम्बुरुर्नारदो हाहा हृहृश्चैव तु सामगा. ।

रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽजग्मुस्तदा पुरम् ॥ ६७ ॥

ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधना ।

पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेषु संहृष्टमानसा ॥ ६८ ॥

जगतो मातर. सर्वा देवकन्याश्च कृत्स्नश. ।

गायन्ति हर्षिताः सर्वा उद्वाहे परमेष्ठिन ॥ ६९ ॥

ऋतव. पट्समं तत्र नानागन्धसुखावहाः ।

उद्वाहः शङ्करस्येति मूर्तिमन्त उपस्थिता. ॥ ७० ॥

नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्त्रध्वनिप्रहर्षिभिः ।

केकायमानै. शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्वश ॥ ७१ ॥

विलोलपिङ्गलस्पष्टविद्युह्रैस्त्राविहासिता ।

कुमुदापीडशुक्लामिर्बलाकामिश्च शोमिता ॥ ७२ ॥

प्रत्यप्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्दली-

लताद्रुमाद्युदुगतपल्लवा शुभा ।

शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितै

महालसैर्मकगणैश्च नादिता ॥ ७३ ॥

प्रियेषु मानोद्धतमानसानां,
 मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ।
 मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन,
 मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥ ७४ ॥
 तथा विवर्णोज्ज्वलचारुमूर्तिना,
 शशाङ्कलेखाकुटिलेन सर्वतः ।
 पयोदसङ्घातसमीपवर्तिना,
 महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥ ७५ ॥
 विचित्रपुष्पाम्बुभवैः सुगन्धिभि-
 र्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः ।
 विकम्पयन्ती पवनैर्मनोहरैः,
 सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥ ७६ ॥
 गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुचिम्बा,
 नचाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
 निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभि-
 निश्वासधूर्त्र पथिकाङ्गनाभिः ॥ ७७ ॥
 हंसनूपुरशब्दाढ्या समुन्नतपयोधरा ।
 चलद्विचुल्लताहारा स्पष्टपद्मविलोचना ॥ ७८ ॥
 श्रांसतजलदधीरध्वानवित्रस्तहंसा,
 विमलसलिलधारोत्पातनप्रोत्पलाग्रा ।
 सुरभिकुसुमरेणुवल्लप्तसर्वाङ्गशोभा,
 गिरिदुहितृविवाहे प्रावृड्गाविर्धभूच ॥ ७९ ॥

मेघकञ्चुकनिर्मुक्ता पद्मकोशोद्भवस्तनी ।
 हंसनूपुरनिहादा सर्वशस्यदिगन्तरा ॥ ८० ॥
 विस्तीर्णपुलिनथोणी कूजत्सारसमेखला ।
 प्रफुल्लेन्दीवरश्यामविलोचनमनोहरा ॥ ८१ ॥
 पक्वविम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनी ।
 नवश्यामलताश्यामरोमराजिपुरस्कृता ॥ ८२ ॥
 चन्द्रांशुहारवर्गेण कण्ठोरस्थलगामिना ।
 प्रहादयन्तो चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवोकसाम् ॥ ८३ ॥
 समदालिकुलोद्गोतमधुरस्वरभाषिणी ।
 चलत्कुमदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी ॥ ८४ ॥
 रक्ताशोकप्रशाखोत्थपल्लवाङ्गुलिधारिणी ।
 तत्पुष्पसञ्चयमयैर्वासोभिः समलङ्कृता ॥ ८५ ॥
 रक्तोत्पलाप्रचरणा जातीपुष्पनखावली ।
 कदलीस्तम्भवामोरूः शशाङ्कवदना तथा ॥ ८६ ॥
 सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता ।
 प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा ॥ ८७ ॥
 निर्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुविम्बानना ।
 नीलाम्भोजविलोचना रचिकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ॥
 नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रहादनी चेतसां ।
 तत्राऽऽसीत् कलहंसनूपुररवा देव्या विवाहे शरत् ॥ ८८ ॥
 अत्यर्थशीतलाम्भोभिः प्लावयन्ती दिशः सदा ।
 श्रुत हेमन्तशिशिरी आजगमतुरतिद्युती ॥ ८९ ॥

ताभ्यामृतुभ्या सप्राप्तो हिमवान् स नगोत्तम
प्रालेयचूर्णवर्षिभ्या क्षिप्र रौप्यहरो वभौ ॥ ६० ॥

तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालय ।

अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागर ॥ ६१ ॥

ऋतुपर्व्यायसंप्राप्तो बभूव स महागिरि ।

साधूपचारात् सहसा वृतार्थ इव दुर्जन ॥ ६२ ॥

प्रालेयपटलच्छन्नै शृङ्गैस्तु शुशुभे नग ।

छत्रैरिव महाभागे पाण्डुरै पृथिवीपति ॥ ६३ ॥

मनोभवोद्रेककरा सुराणा,

सुराङ्गनानाञ्च मुहु समीरा ।

स्वच्छाम्बुपूर्णाश्च तथा नलिन्य ,

पद्मोत्पलाना कुसुमैरपेता ॥ ६४ ॥

विवाहे गुरुकन्याया वसन्त समगाढृतु ॥ ६५ ॥

इपत्समुद्रुभिन्नपयोधराग्रा,

नाट्यो यथा रम्यतरा बभूवु ।

नाट्युष्णशीतानि पय सरासि,

किञ्चलकूर्णे कपिलीवृतानि ॥

चक्राह्युग्मैरुपनादितानि,

ययु प्रदृष्टा सुरदन्तिमुख्या ॥ ६६ ॥

प्रियङ्गूश्चूततरवश्चूताश्चापि प्रियङ्गव ।

तर्जयन्त इवान्योन्य मञ्जरीभिश्चकाशिरे ॥ ६७ ॥

हिमशृङ्गेषु शुक्लेषु निलकाः कुसुमोत्कगाः ।

शुशुभुः कार्प्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागता ॥ ९८ ॥

पुद्गलाशोकलतामन्त्र रेजिरे शालमन्थिता ।

कामिन्य इव कान्तानां कण्डालम्बिनशाहवः ॥ ९९ ॥

तस्मिन्नृतां शुभ्रकदम्बनीपा-

मतालाः स्तमालाः सरलाः कपिन्या ॥ १०० ॥

अशोकसर्ज्जासर्ज्जनकोविदारा ,

पुत्रागनागेश्वरकर्णिकाराः ।

लवङ्गतालागुरुसतपर्णा,

न्वप्रोधशोमाञ्जननारिकेल्याः ॥ १०१ ॥

वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो,

दृश्या यमूयुः मुमनोहराङ्गाः ।

जलाशयाश्चैव सुवर्णतोया-

श्चक्राङ्गकार्ण्डवहसज्जुष्टा ॥ १०२ ॥

कोयष्टिदात्यूहवलाकयुक्ता,

दृश्यास्तु पद्मोत्पलमीनपूर्णाः ।

रगाम्बु नानाविधभूषिताङ्गा,

दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥ १०३ ॥

प्रीटासु युक्तानथ सज्जयन्तः,

धुरन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।

तस्मिन् गिरावद्रिसुताविषादे

धधुध घानाः सुगर्शानलाङ्गा ॥ १०४ ॥

पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः,

शनैर्नगेभ्यो मलयाद्रिजाताः ।

तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्या-

श्च काशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः ॥ १०५ ॥

येषां सुलिङ्गानि च कीर्तितानि,

ते तत्र आसन् सुमनोजरूपाः ॥ १०६ ॥

समदालिकुलोद्गोतशिलाकुसुमसञ्चयैः ।

परस्परं हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥ १०७ ॥

नीलानि नीलाम्युरुहैः पयांसि,

गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः ।

रक्तैश्च रक्तानि भृशंःकृतानि,

मत्तद्विरेफावलिजुष्टपत्रैः ॥ १०८ ॥

हैमानि विस्तीर्णजलेषु केपुचि-

न्निरन्तरं चाहतराणि केपुचित् ।

चैदूर्यमालानि सरःसु केपुचित्-

प्रजह्निरे पद्मवनानि सर्वतः ॥ १०९ ॥

षाप्यस्तत्राभवन्रम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः ।

नानाविहङ्गसंजुष्टा हैमसोपानपङ्क्तयः ॥ ११० ॥

शृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः ।

समुच्छ्रितान्यविरलैर्हैमानीघ धमुर्द्विजाः ॥ १११ ॥

ईपद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः ।

संवभूवुर्दिशः सर्षाः पवनाकम्पिमूर्त्तिभिः ॥ ११२ ॥

कृष्णाञ्जुना दशगुणा नीलाशोकमहीरुहाः ।

गिरौ घवृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥ ११३ ॥

चाक्षरावविजुष्टानि किंशुकानां वनानि च ।

पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरैजिरे ॥ ११४ ॥

तमालगुल्मैस्तस्यासीऽऽच्छोभा हिमवतस्तदा ।

नीलजीमूतसङ्घातीर्निलोनैरिव सन्धिषु ॥ ११५ ॥

निकामपुष्पैः सुचिगालशावैः,

समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च ।

प्रमत्तपुंस्कोकिलसम्प्रलापै-

हिमाचलोऽतीव तदा रराज ॥ ११६ ॥

श्रुत्वा शब्दं मृदुमदकलं सर्व्वतः कोकिलानां,

चञ्चत्पक्षा. समधुरतरं नीलकण्ठा विनेदुः ।

तेषां शब्दैरुपचितबलः पुष्पचापेषुहस्तः,

सञ्जीभूतस्त्रिदशवनिता वेद्मद्गेष्वनङ्गः ॥ ११७ ॥

पटुः सूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प(ल्पो)जलाशयः ।

देवीविवाहसमये प्रीप्स आगाद्धिमाचलम् ॥ ११८ ॥

स चापि तरुमिस्तत्र वद्भूमिः कुसुमोत्करैः ।

शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाट्रेः समन्ततः ॥ ११९ ॥

तथाऽपि च गिरौ तत्र धायवः सुमनोहरा ।

यवुः पाटलचिस्तीर्णकदम्भाञ्जुनगन्धितः ॥ १२० ॥

घाप्यः प्रफुल्लपद्मौघकेसरारुणमूर्त्तयः ।

अमवंस्तटसंघु(जु)ष्टकलहंसकदम्बकाः ॥ १२१ ॥

तथा कुरयकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्त्तयः ।

सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः ॥ १२२ ॥

यकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः ।

उत्ससर्ज मनोभानि कुसुमानि समन्ततः ॥ १२३ ॥

इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा,

विविधविहङ्गमनादरम्यदेशाः ।

हिमगिरितनयाविवाहभूम्यै,

पटुपययुर्ऋतवो मुनिप्रवीराः ॥ १२४ ॥

तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वभूतसमागमे ।

नानावाद्यसमाकीर्णं अहं तत्र द्विजातयः ॥ १२५ ॥

शैलपुत्रीमलंकृत्य योग्याभरणसम्पदा ।

पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भोद्विजाः ॥ १२६ ॥

ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम् ।

हविर्जुहोमि वह्नौ ते उपाध्यायपदे स्थितः ॥ १२७ ॥

ददासि मह्यं यद्याज्ञां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः ।

मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः ॥ १२८ ॥

शिव उवाच ।

यदुद्दिष्टं सुरैशान तत्कुरुष्व यथेप्सितम् ।

कर्त्ताऽसि वचनं सर्वं ब्रह्मंस्तव जगद्विभो ॥ १२९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम् ।

हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥ १३० ॥

ज्वलन्त्र स्वय तत्र कृतावलिपुट म्बित ।
 श्रुतिगीतैर्महामन्त्रैर्मूर्त्तिमद्विरूपस्थितै ॥ १३१ ॥
 यथोक्तविधिना नुन्वा सर्पिस्तदमृत हवि ।
 ततस्त ज्वलन सर्वं कारयित्वा प्रदध्निगम् ॥ १३२ ॥
 मुक्त्वा हस्तसमायोग सहित सर्वैर्यतै ।
 पुत्रैश्च मानसै सिद्धै प्रकृष्टेनान्तरान्मना ॥ १३३ ॥
 वृत्त उद्वाहकाले तु प्रणम्य च कृपध्वनम् ।
 योगेनैव तयोर्विप्राम्स्तदुमापरमेशयो ॥ १३४ ॥
 उद्वाह स परो वृत्तो य देवा न विटु क्वचित् ।
 इति च सर्वमार्यात स्वयम्बरमिद शुभम् ॥ १३५ ॥
 इति ध्यायादिग्राह्य महापुराणेन्द्रयभु ऋषिस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३५ ॥
 श्रीकानामादित समष्ट्यङ्का — ७७९

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

शिवस्तुतिवर्णनम् ।

प्रह्लादान् ।

अथ वृत्ते विवाहे तु भवम्यामितनेनस ।

प्रहर्षमनु गन्वा देवा शत्रुपुरोगमा ॥

तुष्टुनुवांग्भिराद्यामि प्रणेमुन्ने महेश्वरम् ॥ १ ॥

देवा ऊचुः ।

नमः पर्वतलिङ्गाय पर्वतेशाय चै नमः ।

नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च ॥

नमः क्लेशविनाशाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ॥ २ ॥

नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः ।

नमः पवनरूपाय शतरूपाय चै नमः ॥ ३ ॥

नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च ।

नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च ॥ ४ ॥

नमो देवचयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः ।

विष्टम्भनाय शक्रस्य घाहोर्वेदाङ्कुराय च ॥ ५ ॥

चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः ।

सलिलाशयलिङ्गाय युगान्ताय नमो नमः ॥ ६ ॥

नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे ।

नमः कपालहस्ताय दण्डिने गदिने नमः ॥ ७ ॥

नमस्त्रैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च ।

नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्त्तिहराय च ॥ ८ ॥

नमो यज्ञशिरोहन्त्रे कृष्णवेशापहारिणे ।

भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च ॥ ९ ॥

नमः पिनाकशूलासिपङ्कगमुद्गुगरधारिणे ।

नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च ॥ १० ॥

अन्तकान्तरुते चैव नमः पर्वतघासिने ।

सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे ॥ ११ ॥

दैत्याना योगनाशाय योगिना गुरवे नम ।
 शशाङ्कादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च ॥ १२ ॥
 नम श्मशानरतये श्मशानवरदाय च ।
 नमो दैवतनाथाय यम्प्रकाय नमो नम ॥ १३ ॥
 गृहस्थसाधने नित्य जटिले ब्रह्मचारिणे ।
 नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूना पतये नम ॥ १४ ॥
 सलिङ्गे तप्यमानाय योगैश्वर्यप्रदाय च ।
 नम शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे ॥ १५ ॥
 नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नम ।
 नमो रूद्राय घसघ आदित्यायाश्विने नम ॥ १६ ॥
 नम पित्रेऽथ साङ्ख्याय विश्वेदेवाय चै नम ।
 नम शर्वाय उग्राय शिवाय घरदाय च ॥ १७ ॥
 नमो भामाय सेनान्यै पशूना पतये नम ।
 शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय चै नम ॥ १८ ॥
 महादेवाय चित्राय विचित्राय च चै नम ।
 प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ॥ १९ ॥
 पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च ।
 नम पुरुषसयोगप्रधानगुणकारिणे ॥ २० ॥
 प्रवर्त्तकाय प्रवृत्ते पुरुषस्य च सर्वश ।
 वृतावृत्तस्य सत्कत्र फलसयोगदाय च ॥ २१ ॥
 कालहाय च सर्वेषा नमो नियमकारिणे ।
 नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणाना वृत्तिदाय च ॥ २२ ॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन ।

शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापतिः ।

स्तूयमानः सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

द्रष्टुं सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भोः सुराः ।

घरं घरयत क्षिप्रं दाताऽस्मि तमसंशयम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

सतस्ते प्रणताः सर्वे सुरा ऊचुःखिलोचनम् ॥ २६ ॥

देवा ऊचः ।

तवैव भगवन् हस्ते घर एषोऽवतिष्ठताम् ।

यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे घरमीप्सितम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमस्त्विति तानुत्तया विसृज्य च सुरान् हरः ।

लोकांश्च प्रमथैः सार्धं विवेश भवनं स्वकम् ॥ २८ ॥

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेनं,

गायति दैवतविप्रसमक्षम् ।

सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो,

देहविपर्ययमेत्य सुखी स्यात् ॥ २९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

विप्रवर्याः स्तवं हीमं शृणुयाद्वा पठेच्च यः ।

स सर्व्वलोकगो देवैः पूज्यतेऽमराडिव ॥ ३० ॥

इति श्रोत्रादिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु ऋषिर्म्वादे शिवस्तुति-

निरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्का.—२६२६

— — —

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

मदनदहनवर्णनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

प्रविष्टे भवनं देवे स्रविष्टे घरासने ।

स घक्रो मन्मथः क्रूरो देवं वेद्बुधुमना भवत् ॥ १ ॥

तमनाचारसंयुक्तं दुरात्मानं कुलाधमम् ।

लोकान् सर्व्वान् पीडयन्तं सर्वाङ्गावरणात्मकम् ॥ २ ॥

ऋषीणां विस्नकर्त्तारं नियमानां ततैः सह ।

चक्राह्वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम् ॥ ३ ॥

अथाऽऽततायिन विप्रा वेद्बुकामं सुरैवरः ।

नयनेन तृतीयेन सावज्ञं समवैक्षत ॥ ४ ॥

ततोऽस्य नेत्रजो घह्निर्ज्वालामालासहस्रवान् ।

सदसा रतिमर्त्तारमददत् सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥

स दह्यमानः करुणमात्तौऽक्रोशत विस्वरम् ।
 प्रसादयंश्च तं देवं पपात धरणीतले ॥ ६ ॥
 अथ सोऽग्निपरीताङ्गो मन्मथो लोकतापनः ।
 पपात सहसा मूर्च्छां क्षणेन समपद्यत ॥ ७ ॥
 पत्नी तु करुणं तस्य विललाप सुदुःखिता ।
 देवीं देवञ्च दुःखान्ता अयाचत् करुणावती ॥ ८ ॥
 तस्याश्च करुणं ज्ञात्वा देवी तौ करुणात्मकौ ।
 ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वस्य च दुःखिताम् ॥ ९ ॥

उमामहेश्वरावूचतुः ।

दग्ध एव ध्रुवं भद्रे नास्योत्पत्तिरिहेष्यते ।
 अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति ॥ १० ॥
 यदा तु विष्णुर्भगवान् धसुदेवसुतः शुभे ।
 तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

ततः सा तु घरं लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना ।
 जगामेष्टं तदा देशं प्रीतियुक्ता गतह्रमा ॥ १२ ॥
 दग्ध्वा कामं ततो विप्राः स तु देवो घृपध्वजः ।
 रमे तत्रोमया साङ्गं प्रहृष्टस्तु हिमाचले ॥ १३ ॥
 कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु च ॥
 निर्भरेषु च रम्येषु फणिंकारपनेषु च ॥ १४ ॥
 नदीतीरेषु फान्तेषु किन्नराचरिनेषु च ।
 शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च ॥ १५ ॥

घनराजिषु रम्यासु नानापक्षिरुनेषु च ।

तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १६ ॥

एतेषु पुण्येषु मनोहरेषु,

देशेषु विद्याधरभूपितेषु ।

गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु,

रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्रः ॥ १७ ॥

देवैः सहेन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धै-

र्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।

अन्यैश्च सर्वैर्विचित्रैर्वृतोऽसौ,

तस्मिन्नग्रे हर्षमवाप शम्भुः ॥ १८ ॥

नृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा,

गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।

दिव्यानि चाद्यान्यथ चादयन्ति,

केचिद्द्रुतं देववरं स्तुवन्ति ॥ १९ ॥

एवं स देवः स्वगणैरुपेतो,

महाबले शक्रयमाग्निनुत्यैः ।

देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता,

गिरिं न तन्याज तदा महात्मा ॥२०॥

ऋषय ऊचुः ।

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा ।

अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥ २१ ॥

देव्युवाच ।

न मेऽस्ति घन्धुमिः किञ्चित् कृत्य सुरघरेश्वर ।
तथा कुरु महादेव यथाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा स देव्या घनं सुरेश-
स्तस्याः प्रियार्थं स्वगिरिं विहाय ।

जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं,

भार्यासहायः स्वगणैश्च युक्तः ॥ ४० ॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुःपिसंवादे उमा महेश्वर
योर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—२६४६

—

अथै को ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः ।

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे ।

विनाशमगमद् ब्रह्मन् हयमेधः प्रजापतेः ॥ १ ॥

देव्या मन्युकृतं बुद्ध्या क्रुद्धः सर्वात्मकः प्रभुः ।

कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजसः ॥

महादेवेन रोषाद्धै तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥ २ ॥

ग्रहोवाच ।

वर्णयिष्यामि यो विप्रा महादेवेन वै यथा ।
 क्रोधाद्विध्वसितो यज्ञोदेव्याः प्रियचिकीर्षया ॥ ३ ॥
 पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम् ।
 ज्योतिःस्थलं नाम चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ४ ॥
 अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
 तत्र देवो गिरितटे सर्वधानुविचित्रिते ॥ ५ ॥
 पर्यङ्क इव विस्तीर्ण उपविष्टो बभूव ह ।
 शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥ ६ ॥
 आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महोजसः ।
 तथैव च महात्मानावश्विनो भिषजां वरौ ॥ ७ ॥
 तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः ।
 यक्षाणामीश्वरः श्रोमान् कौलासनिलयः प्रभुः ॥ ८ ॥
 उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः ।
 सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥ ९ ॥
 अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च ।
 विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतो ॥ १० ॥
 अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुर्नेकशः ।
 चर्षो सुखशिवो घायुर्नानागन्धर्वहः शुचिः ॥ ११ ॥
 सर्वसुक्तसुमोपेतः पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमाः ।
 तथा विद्याधराः साध्याः सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥ १२ ॥

महादेवं पशुपतिं पर्युपासत तत्र वै ।
 भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ ॥ १३ ॥
 राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः ।
 बहुरूपधरा धृष्टा नानाप्रहरणायुधाः ॥ १४ ॥
 देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः ।
 नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥ १५ ॥
 प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
 गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥ १६ ॥
 पर्युपासत तं देवं रूपिणी द्विजसत्तमाः ।
 एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः ॥ १७ ॥
 देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत ।
 कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ १८ ॥
 पूर्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽभ्यपद्यत ।
 ततस्तस्य मखे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ॥ १९ ॥
 स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य दक्षमापेदिरे तथा ।
 ते विमानैर्महात्मानो ज्वलद्विज्वलनप्रभाः ॥ २० ॥
 देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः ।
 गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ २१ ॥
 ऋषिसिद्धैः परिवृतं दशं धर्मभृतां धरम् ।
 पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये च स्वर्लोकवासिनः ॥ २२ ॥
 सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम् ।
 आदित्या षसषो रुद्राः साध्याः सर्वे मरुद्गणाः ॥ २३ ॥

विष्णुना सहिता. सर्व आगता यज्ञभागिनः ।

ऊष्मपा धूमपाश्चैव आञ्जपाः सोमपाम्स्तथा ॥ २४ ॥

अश्विनो मरुतश्चैव नानादेवगणैः सह ।

एते चान्ये च बहवो भूतग्रामाम्स्तथैव च ॥ २५ ॥

जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव म्येदजोद्विद् ।

आगताः सत्रिणः सर्वे देवाम्त्रिमि सहर्षिमि ॥ २६ ॥

विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्रयः ।

तान् दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमप्रवीन् ॥ २७ ॥

दधीचिरवाच ।

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने ।

नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र सशयः ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥ २९ ॥

दधीचिरवाच ।

पूज्यञ्च पशुमर्त्तारं कम्मानार्घ्यमे प्रभुम् ॥ ३० ॥

दक्ष उवाच ।

सन्ति मे बहवो रूढा शूलहस्ता कपर्दिन ।

एकादशस्थानगता नान्यं विदुमो महेश्वरम् ॥ ३१ ॥

दधीचिरवाच ।

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयंःममेशो न निमन्त्रित ।

यथाऽहं शङ्करादृद्धं नान्यं पश्यामि दैवतम् ।

तथा दक्षस्य विपुत्रो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥ ३२ ॥

दक्ष उवाच ।

धिष्णोश्च भागा विधिधाः प्रदत्ता-

स्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।

अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता,

ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥ ३३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा ।

उवाच घचनं शवं देवं पशुपतिं पतिम् ॥ ३४ ॥

उमोवाच ।

भगवन् कुत्र यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगमाः ।

ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥ ३५ ॥

महेश्वर उवाच ।

दक्षो नाम महाभागो प्रजानां पतिरुत्तमः ।

हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवोकसः ॥ ३६ ॥

देव्युवाच ।

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि ।

केन वा प्रतिपेधेन गमनं ते न विद्यते ॥ ३७ ॥

महेश्वर उवाच ।

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् ।

यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥ ३८ ॥

पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण धरचर्णिनि ।

न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥ ३९ ॥

उमोवाच ।

भगवन् सर्वदेवेषु प्रमावाभ्यधिको गुणै ।

अजेयश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥ ४० ॥

अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागत ।

अतोव तु खमापन्ना वेपथुश्च महानयम् ॥ ४१ ॥

किं नाम दान नियम तपो वा,

कुर्यामह येन पत्तिर्ममाद्य ।

लभेत भाग भगवानचिन्त्यो,

यज्ञस्य चेन्द्राद्यमरैर्विचित्र (भक्त)म् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एव वृवाणा भगवान् विचिन्त्य,

पत्नीं प्रहृष्ट शुभितामुवाच ।

महेश्वर उवाच ।

न वेत्सि मा देवि कृशोदराङ्गि,

किं नाम युक्त वचन तवेदम् ॥ ४३ ॥

अह विजानामि विशालनेत्रे,

ध्यानेन सर्वे च धिदन्ति सन्त ।

तवाद्य मोहेन सहेन्द्रदेवा,

लोकत्रय सर्वमथो विनष्टम् ॥ ४४ ॥

तावध्यरेश नितरा स्तुवन्ति,

रथन्तर साम गायन्ति मह्यम् ।

मां ब्राह्मणाब्रह्ममन्त्रैर्यजन्ति,

ममाध्वर्य्वः कल्पयन्ते च भागम् ॥ ४५ ॥

देव्युवाच ।

विकथसे प्राकृतवत् सर्वस्त्रीजनसंसदि ।

स्तौपि गर्वायसे चापि स्वमात्मानं न संशयः ॥ ४६ ॥

भगवानुवाच ।

नाऽऽत्मानं स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि ।

सस्त्रक्ष्यामि धरारोहे भागार्थं धरवर्णिनि ॥ ४७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमा प्राणैरपि प्रियाम् ।

सोऽसृजद्भगवान् चक्राद्भूत क्रोधान्निसम्ममम् ॥ ४८ ॥

तमुवाच मख गच्छ दक्षस्य त्व महेश्वर ।

नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहरेपेण लीलया ।

देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥ ५० ॥

मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी ।

आत्मन कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥ ५१ ॥

स एव भगवान् क्रोधं प्रेतावासरुतालय ।

वीरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥ ५२ ॥

सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान् ।

रुद्रानुगान्गणान् रौद्रान् रुद्रवीर्यपराक्रमान् ॥ ५३ ॥

रद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः ।

ते निपेतुस्ततस्नूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५४ ॥

ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव ।

समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥ ५५ ॥

तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिव्यौकसः ।

पर्वताश्च व्यशीर्ष्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा ॥ ५६ ॥

महत्तश्च ववुः क्रूराञ्चुक्षुमे वरुणालयः ।

अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यत भास्करः ॥ ५७ ॥

ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः ।

ऋषयो न प्रभासन्ते न देवा न च दानवाः ॥ ५८ ॥

एवं हि तिमिरीभूने निर्द्दहन्ति गणेश्वराः ।

प्रभञ्जन्त्यपरे यूषान् घोरानुत्पाटयन्ति च ॥ ५९ ॥

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्यन्ति तथा परे ।

त्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥ ६० ॥

चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि च ।

शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा इव नभस्तलात् ॥ ६१ ॥

दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः ।

क्षीरनयस्तथा चान्या घृतपायसकर्द्धमाः ॥ ६२ ॥

मधुमण्डोदका दिव्या खण्डशर्करखलुकाः ।

पङ् रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥ ६३ ॥

उच्चावचानि मांसानि भक्ष्यानि विविधानि च ।

यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोप्राणि यानि च ॥ ६४ ॥

भुञ्जन्ति विविधैर्वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च ।
 रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥ ६५ ॥
 भक्षयन्तोऽथ शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः ।
 क्रीडन्ति विविधाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोपितः ॥ ६६ ॥
 एवं गणाश्च तैर्युक्तो वीरभद्रः प्रतापवान् ।
 रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥ ६७ ॥
 तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः ।
 चक्रुरन्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥ ६८ ॥
 छित्त्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम् ।
 ततः शकादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ।
 ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥ ६९ ॥

वीरभद्र उवाच ।

नाह देवो न दैत्यो वा न च भोक्तुमिहागतः ।
 नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥ ७० ॥
 दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमाः ।
 वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपादुचिनिःसृतः ॥ ७१ ॥
 भद्रकाली च विख्याता देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता ।
 प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता ॥ ७२ ॥
 शरणं गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम् ।
 घरं क्रोधोऽपि देवस्य न घरः परिचारकैः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

निखातोत्पाटितैर्युपैरपविद्धैस्ततस्तनः ।

उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृधैरामिपगृध्नुमिः ॥ ७४ ॥

पक्षवातविनिर्धूतैः शिवास्तविनादितैः ।

स तस्य यज्ञो नततेर्वाध्यमानस्तदा गणैः ॥ ७५ ॥

आस्थाय मृगरूपं चै खमेवाभ्यपतत्तदा ।

तन्तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः ॥ ७६ ॥

धनुरादाय वाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभुः ।

ततस्तस्य गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः ॥ ७७ ॥

ललाटात्प्रसृतो घोरः स्येदविन्दुर्यभूव ह ।

तस्मिन्पतितमात्रे च स्येदविन्दो तदा भुवि ॥ ७८ ॥

प्रादुर्भूतो महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपमः ।

तत्रोदपद्यत तदा पुरुषो द्विजसत्तमाः ॥ ७९ ॥

हस्योऽतिमात्रो रक्ताक्षो हरिच्छमश्रुर्विभीषणः ।

ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाद्गुणः शोणकर्णस्तथैव च ॥ ८० ॥

करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च ।

तं यज्ञं स महासत्त्वोऽदहत्कश्मिद्यानलः ॥ ८१ ॥

देवाश्च प्रद्रुताः सर्वे गता भीता दिशो दश ।

तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै ॥ ८२ ॥

पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः ।

महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकमयंकरे ॥ ८३ ॥

तदा चाह महादेवमग्रव प्रतिपूजयन् ।
 भवतेऽपि सुरा सर्वे भाग दास्यन्ति वै प्रभो ॥ ८४ ॥
 क्रियता प्रतिसहार सर्वदेवेश्वर त्वया ।
 इमाश्च देवता सर्वा ऋरयश्च सहस्रश ॥ ८५ ॥
 तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे ।
 यश्चैप पुष्टो जात स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥ ८६ ॥
 ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति ।
 एकीभूतस्य न ह्यास्य धारणे तेजस प्रभो ॥ ८७ ॥
 समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम् ।
 इत्युक्त स मया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥ ८८ ॥
 भगवान्मा तथेत्याह देवदेव पिनाकधृक् ।
 परा च प्रीतिमगमत्स स्वय च पिनाकधृक् ॥ ८९ ॥
 दक्षोऽपि मनसा देव भव शरणमन्वगात् ।
 प्राणापानी समारु-य चक्षु स्थाने प्रयतत ॥ ९० ॥
 विधार्य सर्वतो दृष्टि बहुदृष्टिरमिप्रजित् ।
 स्मित शृत्वाऽब्रवीत्तावय ब्रूहि कि कर्याणि ते ॥ ९१ ॥
 श्राविते च महान्याने देवाना पितृभि सह ।
 तमुवाचाब्रुति शृत्वा दक्षो देव प्रजापति ॥
 भीत शङ्कितचित्तन्तु सयाप्पवदनेक्षण ॥ ९२ ॥
 दक्ष उवाच ।

यदि प्रमत्तो भगवान्यदि पाऽह तव प्रिय ।

यदि चाहममुप्राप्तो यदि देवो धरो मम ॥ ९३ ॥

यद्दृश्यं भक्षितं पीतं त्रासितं यच्च नाशितम् ।
 चूर्णोऽकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम् ॥ ६४ ॥
 दीर्घकालेन महताः प्रयत्नेन च संचितम् ।
 न च मिथ्या भवेन्महां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ६५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तथाऽम्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः ।
 धर्माध्यक्षं महादेवं त्र्यम्बकं च प्रजापतिः ॥ ६६ ॥
 जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाङ्गरम् ।
 नाम्नां चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुःकृपिसंवादे
 दक्षप्रज्ञविद्भ्यंसन नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः—२७४६

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।

दक्षकृतिशिवस्तुतिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

एवं दृष्ट्वा तदा दक्षः शभोर्वीर्यं द्विजोत्तमाः ।
 प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन ।
 देवेन्द्र त्व यलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥ २ ॥
 सहस्राक्ष विरूपाक्ष ऽयक्ष यक्षाधिपप्रिय ।
 सर्वत पाणिपादस्त्व सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥ ३ ॥
 सर्वत श्रुतिमांलोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
 शङ्कुकर्णो महाकर्ण कुम्भकर्णोऽर्णवालय ॥ ४ ॥
 गजेन्द्रकर्णो गोकर्ण शतकर्णो नमोऽस्तु ते ।
 शतोदर शतावर्त शतजिह्व सनातन ॥ ५ ॥
 गायन्ति त्वा गायत्रिणो अर्चयन्त्यकमर्किण ।
 देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्व शतक्रतु ॥ ६ ॥
 मूर्तिमास्य महामूर्ति समुद्र सरसा निधि ।
 त्वयि सर्वा देवता हि गापो गोष्ठ श्चाऽऽसते ॥ ७ ॥
 त्वत्त शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम् ।
 आदित्यमथ चिष्णुं च ब्रह्माण सवृहस्पतिम् ॥ ८ ॥
 प्रिया करणकार्ये च कर्ता कारणमेव च ।
 असद्य सदसद्यै च तथैव प्रभवाय (प्य)याँ ॥ ९ ॥
 नमो भवाय शर्पाय रुद्राय धरदाय च ।
 पशूना पतये चैव नमोऽस्त्यन्धकघातिने ॥ १० ॥
 त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलपरधारिणे ।
 ऽयम्पणाय त्रिनेत्राय त्रिपुण्ड्राय ये नम ॥ ११ ॥

नमश्चण्डाय मुण्डाय विण्वचण्डधराय च ।
 दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः ॥ १२ ॥
 नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विहृताय च ।
 विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः ॥ १३ ॥
 नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
 सूर्याय सूर्यपतयेसूर्यध्वजपताकिने ॥ १४ ॥
 नमः प्रमथनाशाय वृषस्कन्धाय वै नमः ।
 नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥ १५ ॥
 हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः ।
 शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च ॥ १६ ॥
 नमः स्तुताय स्तुतये स्तूयमानाय वै नमः ।
 सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने ॥ १७ ॥
 नमो होमाय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ।
 नमोऽनम्याय नम्याय नमः किलकिलाय च ॥ १८ ॥
 नमस्त्वां शयमानाय शयितायोत्थिताय च ।
 स्थिताय धावमानाय कुञ्जाय कुटिलाय च ॥ १९ ॥
 नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ।
 वाघापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे ॥ २० ॥
 नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ।
 उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशनाहवे ॥ २१ ॥
 नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च ।
 विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च ॥ २२ ॥

नानाविद्युतवक्त्राय खड्गजिह्वोप्रदंष्ट्रिणे ।

पक्षमासलवार्धाय तुर्ग्यावीणाप्रियाय च ॥ २३ ॥

अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च ।

नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ॥ २४ ॥

नमो युद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च ।

पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च ॥ २५ ॥

नमध्वण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने ।

सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ॥ २६ ॥

प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च ।

एहकाराय रद्राय भगाफारप्रियाय च ॥ २७ ॥

नमोऽपारपते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च ।

नमो यज्ञाधिपतये भृताय प्रस्तुताय च ॥ २८ ॥

यज्ञपादाय दान्ताय तप्याय च भगाय च ।

नमस्तटाय तटपाय तटिनीपतये नमः ॥ २९ ॥

धन्वदायान्नपतये

नमः सहस्रशाय

३० च ।
३१ च ॥

घर्णाश्रमाणां विधित्पृथग्धर्मप्रवर्तिने ।
 नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च ॥ ३४ ॥
 श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेशणाय च ।
 धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ॥ ३५ ॥
 सांख्याय सांख्यमुष्याय योगाधिपतये नमः ।
 नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥ ३६ ॥
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपजोतिने ।
 ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥
 श्वम्बकायाम्बिकानाय व्यक्तायक्त नमोऽस्तु ते ।
 कालकामदकामघ्न दुष्टोद्धृत्तनिषूदन ॥ ३८ ॥
 सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते ।
 उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज ॥ ३९ ॥
 चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेगावर्त नमोऽस्तु ते ।
 नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभये नमः ॥ ४० ॥
 अन्नमोकत्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल ।
 जरायुजाण्डजाश्चैव स्येदजोद्विज्ज एव च ॥ ४१ ॥
 त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः ।
 चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव ॥ ४२ ॥
 त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म घदन्ति ते ।
 सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषा निधि ॥ ४३ ॥
 ऋक्सामानि तर्षोकारमाहुस्त्यां ब्रह्मवादिन ।
 दायि दायि हरे दायि हुवादायेति पाऽसृत् ॥ ४४ ॥

नानाविरुतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे ।
 पक्ष्मासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च ॥ २३ ॥
 अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च ।
 नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च ॥ २४ ॥
 नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च ।
 पचनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च ॥ २५ ॥
 नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजत्पाय घण्टिने ।
 सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ॥ २६ ॥
 प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च ।
 हूंकाराय रूद्राय भगाकारप्रियाय च ॥ २७ ॥
 नमोऽपारचते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च ।
 नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च ॥ २८ ॥
 यज्ञचाहाय दान्ताय तप्याय च भगाय च ।
 नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः ॥ २९ ॥
 अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च ।
 नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ॥ ३० ॥
 सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च ।
 नमो बालार्कघर्णाय बालरूपधराय च ॥ ३१ ॥
 नमो बालार्करूपाय कालक्रीटनकाय च ।
 नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च ॥ ३२ ॥
 तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय चै नमः ।
 नमः पद्मकर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिताय च ॥ ३३ ॥

घर्णाश्रमाणां विधित्पृथग्धर्मप्रवर्तिने ।
 नमः श्रेष्ठाय उषेष्ठाय नमः कलकलाय च ॥ ३४ ॥
 श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेशणाय च ।
 धर्मकामार्थमोक्षाय क्रयाय क्रयनाय च ॥ ३५ ॥
 सांस्थाय सांध्यमुष्याय योगाधिपतये नमः ।
 नमो रथ्याधिरथ्याय चतुष्पथपथाय च ॥ ३६ ॥
 कृष्णाजिनोत्तरायाय व्यालशत्रोपशोतिने ।
 ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥
 श्यम्वक्रायाम्बिकानाथ व्यक्तायक्त नमोऽस्तु ते ।
 कालकामदकामघ्न दुष्टोद्धृत्तनिपूडन ॥ ३८ ॥
 सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते ।
 उन्मादनशतावर्त गङ्गानोर्यार्द्रमूर्धज ॥ ३९ ॥
 चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते ।
 नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभये नमः ॥ ४० ॥
 अन्नमोक्षत्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयान्त ।
 जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्विज्ज एव च ॥ ४१ ॥
 त्वमेव देवदेवेश भूतप्रामाद्यनुर्विचः ।
 चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव ॥ ४२ ॥
 त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म षदन्ति ते ।
 सर्वस्य परमा योनिः सुधांसो ज्योतिषां निधिः ॥ ४३ ॥
 श्रुक्सामानि तयोकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिन ।
 हायि हायि हरे हायि हुषाहायेति वाऽसृणु ॥ ४४ ॥

गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः ।
 यजुर्मय ऋडमयश्च सामार्थ्ययुतस्तथा ॥ ४५ ॥
 पठ्यसे ब्रह्मचिद्विस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ।
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा घर्णाश्रमाश्च ये ॥ ४६ ॥
 त्वमेवाऽऽश्रमसघाश्च विद्युत्स्तनितमेव च ।
 संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्थमेव च ॥ ४७ ॥
 कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च ।
 वृषाणां ककुदं त्व हि गिरीणां शिखराणि च ॥ ४८ ॥
 सिंहो मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम् ।
 क्षीरोदो ह्युद्धीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ॥ ४९ ॥
 घञ्जं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ।
 त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोह शमः क्षमा ॥ ५० ॥
 व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ।
 त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरौ तथा ॥ ५१ ॥
 छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः ।
 दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थ काम एव च ॥ ५२ ॥
 इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरासि च ।
 लतावलयस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥ ५३ ॥
 द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ।
 आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योकार एव च ॥ ५४ ॥
 हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः ।
 कद्रुश्च कपिलो वभ्रुः कपोतो मच्छ (तस्य) कस्तथा ।

सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यथो मतः ।
 सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥ ५६ ॥
 त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव घरणो धनदोऽनलः ।
 उत्फुल्लश्चित्रमानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च ॥ ५७ ॥
 होत्रं होता च हाम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः ।
 त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषां शतहृदियम् ॥ ५८ ॥
 पवित्रं च पवित्राणा मङ्गलाना च मङ्गलम् ।
 प्राणश्च त्व रजश्च त्व तमः सत्त्वयुतस्तथा ॥ ५९ ॥
 प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
 उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च ॥ ६० ॥
 लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः ।
 शुचिरोमा हरिच्छर्मश्रुर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥ ६१ ॥
 गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ।
 मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलध्यालः कुटीचरः ॥ ६२ ॥
 विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः ।
 मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामायाकरोन्करः ॥ ६३ ॥
 सवर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकयलाहर्को ।
 घण्टाकी घण्टकी घण्टो चूटालो लघणोदधिः ॥ ६४ ॥
 ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक् ।
 चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥ ६५ ॥
 चातुराश्रम्यनेता च चातुर्गण्यकरश्च ह ।
 क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः ॥ ६६ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः ।
 शिल्पीश. शिल्पिनः श्रेष्ठं सर्वशिल्पप्रवर्तकः ॥ ६७ ॥
 भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
 खाद्वा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते ॥ ६८ ॥
 गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेचितः ।
 तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥ ६९ ॥
 धाता विधाता सघाता निघाता धारणो धरः ।
 तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मवर्य तथाऽऽर्जवम् ॥ ७० ॥
 भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभयभवोद्भवः ।
 भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्नेर्महेश्वरः ॥ ७१ ॥
 ब्रह्मावर्तः सुरावर्तः कामावर्त नमोऽस्तु ते ।
 कामयिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकाररुजप्रियः ॥ ७२ ॥
 गोनेता गोप्रचारश्च गोवृपेश्वरवाहनः ।
 त्रिलोक्यगोप्ता गोचिन्दो गोप्ता गोमर्ग (?) एव च ॥ ७३ ॥
 अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः ।
 चतुर्मुखो बहुमुखो रणेऽप्यभिमुखः सदा ॥ ७४ ॥
 हिरण्यगर्भ. शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट् ।
 अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः ॥ ७५ ॥
 तिष्ठन्स्थिरश्च स्थागुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः ।
 दुर्वारणो दुर्विग्रहो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥ ७६ ॥
 दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दोषो विजयो जयः ।
 शशः शशाङ्कनयनशातोष्णः क्षुत्तृपा जरा ॥ ७७ ॥

आद्यो व्याधश्चैव व्याधिहा व्याधिपञ्च यः ।

मद्यो यज्ञमृगयायो व्याधिनामाकरोऽकरः ॥ ७८ ॥

शिवण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरोकावलोकनः ।

दण्डधृक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः ॥ ७९ ॥

विपपोऽमृतपञ्चैव सुराप. क्षीरसोमपः ।

मधुपञ्चाऽऽपपञ्चैव सर्वपञ्च थलायलः ॥ ८० ॥

वृषाङ्गराम्मो(?) वृषमस्तया वृषमलोचन ।

वृषमश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंमृतः ॥ ८१ ॥

चन्द्रादित्यो चक्षुषी ने हृदयं च पितामहः ।

अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः ॥ ८२ ॥

न ब्रह्मा न च गोविन्द पुराणऋषयो न च ।

माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः ॥ ८३ ॥

शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मान्ने मह्यं यान्तु दर्शनम् ।

तामिमां सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ ८४ ॥

रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ।

भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं मदा त्वयि ॥ ८५ ॥

यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्द्रुशाम् ।

निष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः ॥ ८६ ॥

यं विनिद्रा जितश्वासा सत्त्वस्थाः समदर्शिनः ।

ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानाम्भस्मै योगान्मने नमः ॥ ८७ ॥

संमक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते ।

यः शेने जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥ ८८ ॥

प्रचिश्य घदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि ।

प्रसत्यकं च स्वर्भानुभूत्या सोमाग्निरेव च ॥ ८६ ॥

अङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् ।

रक्षन्तु ते च मां नित्यं नित्यं चाऽऽप्याययन्तु माम् ॥ ९० ॥

येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये ।

तेषां स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥ ९१ ॥

येन रोहन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च ।

हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥ ९२ ॥

ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च ।

वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥ ९३ ॥

चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।

हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥ ९४ ॥

येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।

इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥ ९५ ॥

रसातलगता ये च येच तस्मात्परं गताः ।

नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वशः ॥ ९६ ॥

सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः ।

सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥ ९७ ॥

त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञं विविधदक्षिणैः ।

त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥ ९८ ॥

अथवा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया तव ।

तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः ॥ ९९ ॥

प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरण मम ।

त्व गतिस्त्व प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मति ॥ १०० ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्तुत्यैव स महादेवं विरराम प्रजापति ।

भगवानपि सुप्रीत पुनर्दक्षमभापत ॥ १०१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तप्रेनानेन सुव्रत ।

बहुना तु किमुक्तेन मत्समीप गमिष्यसि ॥ १०२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तयैवमप्रवीद्वाक्य त्रैलोक्याधिपतिर्भव ।

कृत्वाऽऽश्वासकर वाक्य सर्वज्ञो वाक्यसहितम् ॥ १०३ ॥

श्रीशिव उवाच ।

दक्ष दु ख न कतव्य यज्ञविध्वसन प्रति ।

अह यज्ञहनस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥ १०४ ॥

भूयश्च त्व घरमिम मत्तो गृह्णोष्व सुव्रत ।

प्रसन्नसुमुखो भूत्वा ममैकाग्रमना शृणु ॥ १०५ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै ।

प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ॥ १०६ ॥

वेदान्पडङ्गान्बुध्यस्व साख्ययोगाश्च कृत्स्नश ।

तपश्च विपुलं तप्त्वा दुश्चर देवदानत्रै १०७ ॥

अब्देर्द्वादशभिर्युक्त गूढमप्रज्ञनिन्दितम् ।

घर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्घिनीत न क्वचित्क्वचित् ॥ १०८ ॥

समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् ।

सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं व्रतम् ॥ १०६ ॥

उत्पादितं दक्ष शुभं सर्वपापविमोचनम् ।

अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥

तद्यास्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥ ११० ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तु देवेशः सप्तलोकः सहानुगः ।

अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥ १११ ॥

अवाप्य च तथा भागं यथोक्तं चोमया भवः ।

ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥ ११२ ॥

शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमथ वै द्विजाः ।

शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु ॥ ११३ ॥

अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च ।

खोरकः सौरभेषाणामूखरः पृथिवीतले ॥ ११४ ॥

शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यचरोधनम् ।

रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥ ११५ ॥

नेत्ररागः कोकिलानां ह्येषः प्रोक्तो महात्मनाम् ।

जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ॥ ११६ ॥

शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रीच्यते ज्वरः ।

शार्दूलेष्वथ वै विप्राः श्रमो ज्वर इहोच्यते ॥ ११७ ॥

मानुषेषु च सर्वज्ञा ज्वरो नामैष कीर्तितः ।

मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥ ११८ ॥

एतन्माहेश्वर तेजो ज्वरो नाम सुदारुण ।

नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिमिरोश्वर ॥ ११६ ॥

इमा ज्वरोत्पत्तिमर्दीनमानस ,

पठेत्सदा य सुसमाहितो नर ।

विमुक्तरोग स नरो मुदायुतो,

लभेत कामाश्च यथामनीषितान् ॥ ११७ ॥

दक्षप्रोक्त स्तत्र चापि कीर्तयेत् शृणोति वा ।

नाशुभ प्राप्नुयात्किञ्चिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ११८ ॥

यथा सर्वेषु देवेषु चरिष्ठो मगवान्भव ।

तथा स्तत्रो चरिष्ठोऽय स्तवाना दक्षनिर्मित ॥ ११९ ॥

यश म्वर्गमुरैश्वर्यवित्तादिजयकाडक्षिमि ।

स्तोतव्यो भक्तिमाम्थाय विद्याकामैश्च यत्नत ॥ १२० ॥

न्याधितो दु खितो दीनो नरो ग्रस्तो भयादिमि ।

राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ १२१ ॥

अनेनैव च देहेन गणाना च महेश्वरात् ।

इह लोके सुख प्राप्य गणराडुपजायते ॥ १२२ ॥

न यक्षा न पिशाचा वा न नागा न चिनायका ।

तुर्युर्विघ्न गृहे तस्य यत्र सस्तुयते भव ॥ १२३ ॥

शृण्वाद्वा इदं नारो भक्त्याऽय भवमाविता ।

पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह ॥ १२४ ॥

शृण्वाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णश ।

तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धि गच्छन्त्यविघ्नत ॥ १२५ ॥

मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम् ।
 सर्वं संपद्यते तस्य रतवभ्यास्यानुकीर्तनात् ॥ १२६ ॥
 देवस्य सगुहस्याथ देव्या नदीश्वरस्य च ।
 वलिं विभज(भाग)तः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥ १३० ॥
 ततः प्रयुक्तो गृहणीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् ।
 ईप्सिताह्वं भतेऽप्यर्थान्कामान्भोगांश्च मानवः ॥ १३१ ॥
 मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः ।
 सर्वकामसुयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ १३२ ॥
 पठन्दक्षकृतं स्तोत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 मृतश्च गणसापुज्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ १३३ ॥
 वृषेण विनियुक्तेन विमानेन विराजते ।
 आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १३४ ॥
 इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ।
 नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित् ॥ १३५ ॥
 श्रुत्वेमं परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयोनयः ।
 वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥ १३६ ॥
 श्रावयेद्यश्च विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु ।
 रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥ १३७ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्म स्वयंभृवृषिसवादे दक्षस्तव-
 निरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

आदित. श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—२८८३

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

एकाग्रकक्षेत्रमाहात्म्यकथनम्

लीमहर्षण उवाच ।

श्रुत्वैवं वै मुनिश्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम् ।
रुद्रक्रोधोद्धवां पुण्या व्यासस्य वदतो द्विजाः ॥ १ ॥
पार्थत्याञ्च तथा रोपं क्रोधं शमोश्च दुःसहम् ।
उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याञ्च संभवम् ॥ २ ॥
दक्षयज्ञविनाश च वोर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम् ।
पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥ ३ ॥
यज्ञभाग च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः ।
दृष्ट्वा बभूवुः संप्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥ ४ ॥
पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं कथाशेष तथा द्विजाः ।
पृष्ट्वा प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाग्रकं पुन ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः ।
प्रशशंसुस्तदा दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहाः ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम् ।
दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्यंसनं तथा ॥ ७ ॥
एकाग्रकं क्षेत्रवरं वक्रुमर्हसि सांप्रतम् ।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ॥ ८ ॥

व्यास उवाच ।

तेषा तद्वचन श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुख ।

प्रोवाच शमोस्तत्क्षेत्र भूतले दुष्टतच्छदम् ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुध्व मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासत ।

सर्वपापहर पुण्य क्षेत्र परमदुर्लभम् ॥ १० ॥

लिङ्गकोटिसमायुक्त वाराणसीसम शुभम् ।

एकाग्रकेति विख्यात तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥ ११ ॥

एकाग्रवृक्षस्तत्राऽऽसोत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमा ।

नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाग्रकमिति श्रुतम् ॥ १२ ॥

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् ।

विद्वांसग(द्यावद्)नभूयिष्ठ धनधान्यादिसयुतम् ॥ १३ ॥

गृहगोपुरसवाध त्रिकचाद्वारभूपितम् ।

नानावणिकसमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥ १४ ॥

पुराट्टालकसयुक्त रथिभि समलकृतम् ।

राजहसनिमै शुभ्रै प्रासादैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥

मार्गगद्वारसयुक्त सितप्राकारशोभितम् ।

रक्षित शस्त्रसघैश्च परिखाभिरलकृतम् ॥ १६ ॥

सितरक्तैस्तथा पीतै वृणश्यामैश्च चर्णकै ।

समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलकृतम् ॥ १७ ॥

नित्योत्सवप्रमुदित नानावादित्रनिखनै ।

घीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलकृतम् ॥ १८ ॥

देवनायतनैर्दिव्यैः प्राकारोद्यानमण्डितैः ।

पूजाविचित्ररन्ध्रैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥ १६ ॥

स्त्रिय. प्रमुदितामन्त्र दृश्यन्ते तनुमश्रयमाः ।

हारैरलंकृतश्रीवाः पद्मपत्रायनेक्षणाः ॥ २० ॥

पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णवन्दनिमाननाः ।

स्थिगलका' सुरूपोला' काञ्चीनूपुरनादिताः ॥ २१ ॥

सुकेश्यश्यारुजयताः कर्णान्तायतलोचनाः ।

सर्वलक्षणसंपन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २२ ॥

दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काञ्चिन्काञ्चनसंनिभाः ।

हंसचारणगामिन्य. कुचभारावनामिताः ॥ २३ ॥

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णाभरणभूषिताः ।

मदालसाश्च सुश्रोण्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥ २४ ॥

इंपट्टिम्पट्टदशना विम्योप्टा मधुरस्वराः ।

ताम्यूलरञ्जितमुक्ता चिदग्धाः प्रियदर्शनाः ॥ २५ ॥

सुमगाः प्रियवादिन्यो नित्यं र्यौवनगर्विताः ।

दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः ॥ २६ ॥

क्रोहन्ति ताः सदा तत्र म्त्रियश्वाप्सरसोपमाः ।

स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ चराननाः ॥ २७ ॥

पुरुषामन्त्र दृश्यन्ते रूपर्यौवनगर्विताः ।

सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ २८ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः ।

स्वधर्मनिरतामन्त्र निवसन्ति सुधार्मिकाः ॥ २९ ॥

अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्या सुलोचना ।

घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमा ॥ ३० ॥

उर्ध्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिमास्तथा ।

विश्वाचीसहजन्याभा प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥ ३१ ॥

सर्वास्ता प्रियवादिन्य सर्वा विहसितानना ।

कलाकौशलसयुक्ता सर्वास्ता गुणसयुता ॥ ३२ ॥

एव पण्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदा ।

निवसन्ति मुनिश्रेष्ठा सर्पस्त्रीगुणगर्विता ॥ ३३ ॥

प्रेक्षणालापकुशला सुन्दर्य प्रियदशना ।

न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिका ॥ ३४ ॥

यासा कटाक्षपातेन मोह गच्छन्ति मानवा ।

न तत्र निर्धना सन्ति न मूर्खा न परद्विष ॥ ३५ ॥

न रोगिणो न मलिना न कटुर्या न मायिन ।

न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिण ॥ ३६ ॥

तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते ।

सर्वत्र सुखसचार सर्वसत्त्वसुखायहम् ॥ ३७ ॥

नानाजनसमाकीर्णं सर्वसस्यसमन्यितम् ।

कर्णिकारैश्च पनसैश्चम्यकैर्नागकैसरै ॥ ३८ ॥

पाटलाशोकवकुलै कपित्थैर्वहुलैर्धवै ।

चूतनिम्बकदम्बरैश्च तथाऽन्यै पुष्पजातिभि ॥ ३९ ॥

नीपकैर्धवद्विरेलंताभिश्च विराजितम् ।

शालैस्तालेस्तमालैश्च नारिकेलै शुभाञ्जनै ॥ ४० ॥

अजूनैः समपर्णैश्च कोविदारैः सपिप्पलैः ।
 लकुचैः सरलैर्लोध्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः ॥ ४१ ॥
 पलाशीर्मुचुकुन्दैश्च पारिजातैः सकुब्जकैः ।
 कदलीचनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा ॥ ४२ ॥
 केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किंशुकैः ।
 मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः ॥ ४३ ॥
 नानापक्षिघृतैः सेव्यैरुग्रानैर्नन्दनोपमैः ।
 फलभारानतैर्वृक्षैः सर्वतुङ्कुसुमोत्करैः ॥ ४४ ॥
 चक्रोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः ।
 कलविड्कैर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शुकैस्तथा ॥ ४५ ॥
 जीवन्जीवकहारीतैश्चातकैर्चनवेष्टितैः ।
 नानापक्षिघणैश्चान्यैः कृजद्विर्मथुरम्यरैः ॥ ४६ ॥
 दीर्घिकाभिस्त्रिङ्गागैश्च पुष्करिणीभिश्च चापिभिः ।
 नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥ ४७ ॥
 कुमुदैः पुण्टरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ।
 कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥ ४८ ॥
 कारण्डवैः प्लवैर्हंसैस्तथाऽन्यैर्जलचारिभिः ।
 एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥ ४९ ॥
 नानाजलाशयैः पुण्यैः शोभिनं शन्समन्ततः ।
 आम्ने तत्र स्वयं देवः कृत्तियासा वृषध्वजः ॥ ५० ॥
 हिताय सर्वलोकस्य मुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः ।
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सर्वांसि च ॥ ५१ ॥

पुष्करिण्यस्तडागानि चाप्यः कृपाश्च सागराः ।
 तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलविन्दून्पृथक्पृथक् ॥ ५२ ॥
 सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह ।
 तीर्थं विन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥
 चकार ऋषिभिः साधुं तेन विन्दुसरः स्मृतम् ।
 अष्टभ्यां बहुले पक्षे मार्गशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥
 यस्तत्र यात्रां कुरुते विपुत्रे विजितेन्द्रियः ।
 विधिवद्विन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥ ५५ ॥
 देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन्संतर्प्य घाग्यतः ।
 तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित् ॥ ५६ ॥
 स्नात्वैवं विधिघत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
 ग्रहोपराने विपुत्रे संक्रान्त्यामयने तथा ॥ ५७ ॥
 युगादिषु पडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ ।
 ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम् ॥ ५८ ॥
 अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै ।
 पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरसस्तटे ॥ ५९ ॥
 गितृणामक्षयां तृप्तिं ते कुर्वन्ति न संशयः ।
 ततः शंभोर्गृहं गत्वा घाग्यतः संपतेन्द्रियः ॥ ६० ॥
 प्रचिश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
 मृतक्षीरादिभिः स्नानं फारयित्वा भवं शुचिः ॥ ६१ ॥
 चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च ।
 ततः संपूजयेद्देवं, चन्द्रमौलिमुभापतिम् ॥ ६२ ॥

पुष्पैर्नानाविधैर्मध्यैर्विल्वार्ककमलादिभि ।
 आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम् ॥ ६३ ॥
 अदीक्षितस्तु नाम्नैव मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ।
 एव संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभि ॥ ६४ ॥
 धूपदीपैश्च नैवेद्यैरपहारैस्तथा स्तवैः ।
 दण्डयत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः ६५ ॥
 नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दैः प्रदक्षिणै ।
 एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम् ॥ ६६ ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयीवनगर्वित ।
 कुलैकविशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषित ॥ ६७ ॥
 सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
 उपगोयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः ॥ ६८ ॥
 उद्योतयन्दिश सर्वाः शिवलोक स गच्छति ।
 भुक्त्वा तत्र सुख विप्रा मनस प्रीतिदायकम् ॥ ६९ ॥
 तल्लोकवासिभि सार्धं यावदाभूतसंप्लवम् ।
 ततस्तस्मादिहाऽऽयात पृथिव्या पुण्यसक्षये ॥ ७० ॥
 जायते योगिना गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमाः ।
 योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयान् ॥ ७१ ॥
 शयनोत्थापने चैव संक्रान्त्यामयने तथा ।
 अशोकाख्यां तथाऽष्टम्या पवित्रागेपने तथा ॥ ७२ ॥
 ये च पश्यन्ति तं देवं कृत्स्नियाम्बुमृन्ममम् ।
 विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकं यत्रन्ति वै ॥ ७३ ॥

सर्वकालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः ।
 तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः शिवलोकं व्रजन्ति वै ॥ ५३ ॥
 देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा ।
 योजनद्वितयं सार्धं क्षेत्रं तद्भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ५४ ॥
 तस्मिन्क्षेत्रवरे लिङ्गं भाम्करेश्वरसंज्ञितम् ।
 पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेश्वरम् ॥ ५५ ॥
 आद्रिन्येनार्चितं पूर्वं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिताः ॥ ५६ ॥
 उपगीयमाना गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते ।
 तिष्ठन्ति तत्र मुदिताः कल्पनेकं द्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥
 भुक्त्वा तु विपुलान्मोगाञ्छिवलोके मनोरमान् ।
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयात्रा जायन्ते प्रवरे कुण्डे ॥ ५८ ॥
 अथवा योगिनां गेहे वेदवेदाङ्गयारणाः ।
 उन्पद्यन्ते द्विजवरा सर्वभूतहिते रताः ॥ ५९ ॥

दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा ।
 संपूज्यैव विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥ ८५ ॥
 नारो वा द्विजशार्दूलाः संपूज्य श्रद्धयाऽन्विता ।
 पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥
 कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः ।
 तस्य क्षेत्रवरस्याथ ऋते देवान्महेश्वरात् ॥ ८७ ॥
 तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा ।
 माधवादिषु मासेषु नरो वा यद्विवाऽङ्गना ॥ ८८ ॥
 यस्मिन्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा विन्दुसरोम्भसि ।
 पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम् ॥ ८९ ॥
 गर्गं चण्डं कार्तिकेयं गणेशं वृषभं तथा ।
 कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति ॥ ९० ॥
 स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने ।
 प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छिवलोकं स गच्छति ॥ ९१ ॥
 यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः ।
 कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥ ९२ ॥
 एकाग्रके शिवक्षेत्रे वाराणसीसमे शुभे ।
 स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम् ॥ ९३ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभृपिसंवादे एकाग्रक्षेत्र-
 माहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

आदितः श्लोकानां समष्टयङ्काः — २६७६

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

उत्कलक्षेत्रवर्णनम्

प्रज्ञापानम् ।

विरजे विरजा माता प्रज्ञाणी संप्रतिष्ठिता ।
यस्याः संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं पुण्ड्रम् ॥ १ ॥
सदृद्दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ।
नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥ २ ॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे लोकमातरः ।
सर्वपापहरा देव्यो परदा भक्तियत्सलाः ॥ ३ ॥
आस्ते चैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी ।
यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
आस्ते स्वयंभूस्तत्रैव क्रोडरूपी हरिः स्वयम् ।
दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥ ५ ॥
कापिले गोप्रहे सोमे तीर्थे चालाशुसंज्ञिते ।
मृत्युञ्जये क्रोडतीर्थे घासुके सिद्धकेश्वरे ॥ ६ ॥
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान्विरजे संयतेन्द्रियः ।
गत्वाऽऽप्रतीर्थं विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्य च ॥ ७ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः ।
उपगोयमानो गन्धर्वैर्मम लोके महीयते ॥ ८ ॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै ।
स करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः ॥ ९ ॥

मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम् ।
 परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वैः ॥ १० ॥
 स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम् ।
 पश्येद्देवी च घाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥ ११ ॥
 सन्ति चान्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
 तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै ॥ १२ ॥
 समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः ।
 आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम् ॥ १३ ॥
 सर्वत्र धालुकाकीर्णं पवित्रं सर्वकामदम् ।
 दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ १४ ॥
 अशोकार्जुनपुंनार्गैर्वकुलैः सरलद्रुमैः ।
 पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥ १५ ॥
 चम्पकैःकर्णिकारैश्च चूतविल्वैः सपाटलैः ।
 कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचैर्नागकेसरैः ॥ १६ ॥
 प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धवलादिरैः ।
 सर्जभूर्जाश्वकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥ १७ ॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधगुरचन्दनैः ।
 खजूराप्रातमैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सर्किशुकैः ॥ १८ ॥
 अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुधारशुभाङ्गनैः ।
 शिशपामलकैर्नीपैर्निम्बतिन्दुविभीतकैः ॥ १९ ॥
 सर्वतुफलगन्धाढ्यैः सर्वतुकुसुमोज्ज्वलैः ।
 मनोहादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः ॥ २० ॥

धोत्ररम्यैः सुमधुरैर्यत्ननिर्मदनेग्निः ।

मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः त्वगमुपेरिनैः ॥ २१ ॥

घफोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुर्षैः ।

फोफिलैः फल्गुपिष्टैश्च दारोतीजविर्जीपकैः ॥ २२ ॥

प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽग्न्यैर्मधुरस्वरैः ।

धोत्ररम्यैः प्रियकरैः कृजद्विधार्थधिष्टिनैः ॥ २३ ॥

फेतकीवनपण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुट्टजफैः ।

मालतोकुन्दयाणैश्च करपीरैः मितैतरैः ॥ २४ ॥

जम्बीरकरुणाङ्गोलैर्दाडिमैर्योजपूरकैः ।

मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः फदलीवनैः ॥ २५ ॥

अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः ।

लताघितानगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥ २६ ॥

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च घापिभिः ।

नानाजलाशयैः पुष्पैः पद्मिनीसण्डमण्डितैः ॥ २७ ॥

सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च ।

कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नोलोत्पलैः शुभैः ॥ २८ ॥

कहारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः ।

कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥ २९ ॥

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः ।

दात्यूहसारसाकीर्णैः कोयष्टिवकशोभितैः ॥ ३० ॥

एतैश्चान्यैश्च कृजद्विः समन्ताज्जलवारिभिः ।

खगैर्जलचरैश्चान्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥ ३१ ॥

एव नानाविधैर्वृक्षैः पुण्यैः स्वल्पजलोद्भवैः ।
 ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च मिथुभिः ॥ ३२ ॥
 स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यैः समल्लभ्यतम् ।
 ह्यप्रपुञ्जनाकार्णं नरनारासमाकुलम् ॥ ३३ ॥
 अशेषविद्यानिलयः सर्वधर्मगुणाकरम् ।
 एव सर्वगुणोपेतः क्षेत्रः परमदुर्लभम् ॥ ३४ ॥
 आस्ते तत्र मुनिश्रेष्ठा विख्याताः पुण्योत्तमाः ।
 यावदुत्कलमर्यादा दिक्क्रमेण प्रकाशिता ॥ ३५ ॥
 तावत्कृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः ।
 यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देशे सः पुण्योत्तमः ॥ ३६ ॥
 जगद्गव्यापा जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
 अहं रद्रश्च शक्रश्च देवश्चाग्निपुरोगमाः ॥ ३७ ॥
 निवसामो मुनिश्रेष्ठास्तस्मिन्देसे सदा वयम् ।
 गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवामानुषाः ॥ ३८ ॥
 यक्षा विद्याधरा सिद्धा मुनयः सशितत्रताः ।
 ऋषयो घालपिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रवेश्वराः ॥ ३९ ॥
 सुपर्णाः किनराः नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः ।
 साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥ ४० ॥
 इतिहासपुराणानि यज्ञाञ्च चरदक्षिणाः ।
 नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीथान्यायतनानि च ॥ ४१ ॥
 सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देसे व्यवस्थिताः ।
 एव पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते ॥ ४२ ॥

सर्षोपभोगसहिते घासः कस्य न रोचते ।
 श्रेष्ठत्वं कस्य देशरय किं चान्यदधिकं ततः ॥ ४३ ॥
 धारते यत्र रयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः ।
 धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये घसन्त्युत्कले नराः ॥ ४४ ॥
 तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमे ।
 स्वर्गे घसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये ॥ ४५ ॥
 ये घसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे ।
 सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेधसाम् ॥ ४६ ॥
 ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम् ।
 चारुभ्रुकेशमुकुटं चारुकर्णवितंसकम् ॥ ४७ ॥
 चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम् ।
 सुनासं सुकपोलं च सुललाटं सुलक्षणम् ॥ ४८ ॥
 त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ॥ ४९ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिग्राह्ये स्वयंभुसृपिसंवाद उत्कल-
 क्षेत्रवर्णन नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥
 आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३०२४

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अमन्तिकावर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

पुरा कृतयुगे विप्राः शक्रतुल्यपराक्रमः ।

बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥ १ ॥

सत्यवादी शुचिर्दक्ष सर्वशास्त्रविशारदः ।

रूपवान्सुभगः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः ॥ २ ॥

यप्ता समस्तयज्ञाना ब्रह्मण्य सन्यसगर ।

धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुण कृती ॥ ३ ॥

घृह्णो नरनारीणां पूर्णामाम्ना यथा शशी ।

धात्रित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुमघ्नभयंकरः ॥ ४ ॥

वैष्णवः सत्त्वसंपन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।

अध्येता योगसांख्यानो मुमुक्षुर्धर्मतन्परः ॥ ५ ॥

एवं स पालयन्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः ।

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना हरेराराधनं प्रति ॥ ६ ॥

कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम् ।

कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाऽऽश्रमे ॥ ७ ॥

एव चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम् ।

आलोक्य सवतीर्थानि क्षेत्राण्यथ पुराण्यपि ॥ ८ ॥

तानि सर्वाणि संत्यज्य जगामाऽऽयतनं पुनः ।

विच्योत परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥

स गत्वा तत्क्षेत्रवर समृद्धयलघाहन ।
 धयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिण ॥ १० ॥
 कारयित्वा महोत्सेध प्रासाद चैव विश्रुतम् ।
 तत्र सकर्षण कृष्ण सुभद्रा स्थाप्य वीर्यवान् ॥ ११ ॥
 पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपति ।
 स्नान दान तपो होम देवताप्रेक्षण तथा ॥ १२ ॥
 भक्त्या चाऽऽराभ्य विधिवत्प्रत्यह पुरुषोत्तमम् ।
 प्रसादाद्देवदेवस्य ततोमोक्षमवाप्तवान् ॥ १३ ॥
 मार्कण्डेय च कृष्ण च दृष्ट्वा राम च भो द्विजा ।
 सागरे चेन्द्रद्युम्नारये स्नात्वा मोक्ष लभेद्दधुचम् ॥ १४ ॥

मुनय ऊचु ।

कस्मात्स नृपति पूर्वमिन्द्रद्युम्नो जगत्पति ।
 जगाम परम क्षेत्र मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥ १५ ॥
 गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ कथ स नृपसत्तम ।
 वाजिमेधेन विधिवदिष्टवान्पुरुषोत्तमम् ॥ १६ ॥
 कथ स सर्वफलदे क्षेत्रे परमदुलभे ।
 प्रासाद कारयामास चेष्ट त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १७ ॥
 कथ स कृष्ण राम च सुभद्रा च प्रजापते ।
 निर्ममे राजशार्दूल क्षेत्र रक्षितवान्कथम् ॥ १८ ॥
 कथ तत्र महीपाल प्रासादे भुवनोत्तमे ।
 स्थापयामास मतिमान्कृष्णादीस्त्रिदशार्चितान् ॥ १९ ॥

एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण चरितं तस्य धीमतः ॥ २० ॥

न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वै ।

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कीतूहलं हि नः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम् ।

सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ २२ ॥

वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे ।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रयताः संयतेन्द्रियाः ॥ २३ ॥

अचन्ती नाम नगरी मालये भुवि विश्रुता ।

यभूव तस्य नृपतेः पृथिवी ककुदोपमा ॥ २४ ॥

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारत्तोरेणा ।

दृढयन्त्रार्गलद्वारा परिखाभिरलंकृता ॥ २५ ॥

नानावणिकसमाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया ।

रथ्यापणवती रम्या सुविमक्तचतुष्पथा ॥ २६ ॥

गृहगोपुरसंवाधा वीर्यामिः समलंकृता ।

राजहंसनिभैः शुभ्रैश्चित्रग्रीवैर्मनोहरैः ॥ २७ ॥

अनेकशतसाहस्रैः प्रासादैः समलंकृता ।

यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादित्रनिस्वना ॥ २८ ॥

नानावर्णपताकामिर्ध्वजैश्च समलंकृता ।

हस्त्यश्वरथसंकीर्णा पदातिगणसंकुला ॥ २९ ॥

नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता ।
 ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैश्चैव द्विजातिभि ॥ ३० ॥
 समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्धि समलकृता ।
 न तत्र मलिता सन्ति न मूर्खा नापि निर्धनाः ॥ ३१ ॥
 न रोगिणो न हीनाङ्गा न द्यूतव्यसनान्विता ।
 सदा हृष्टा सुमनसो दृश्यन्ते पुरुषा स्त्रिय ॥ ३२ ॥
 क्रीडन्ति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक् ।
 सुवेषा पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते मृष्टकुण्डला ॥ ३३ ॥
 सुरूपा सुगुणाश्चैव दिव्यालकारभूषिता ।
 कामदेवप्रतीकाशा सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ३४ ॥
 सुकेशा सुकपोलाश्च सुमुखा श्मश्रुधारिण ।
 ज्ञातार सर्वशास्त्राणा भेत्तार शत्रुवाहिनीम् ॥ ३५ ॥
 दातार सर्वरत्नाना भोक्तार सर्वसपदाम् ।
 स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यन्ते सुमनोहरा ॥ ३६ ॥
 हसवारणगामिन्य प्रफुल्लाम्भोजलोचना ।
 सुमध्यमा सुजघना पीनोत्तपयोधरा ॥ ३७ ॥
 सुनेशाश्चारवदना सुकपोला स्थिरालका ।
 हावभावानतग्रीवा कर्णाभरणभूषिता ॥ ३८ ॥
 धिम्बोष्ट्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिता ।
 सुवर्णाभरणोपेता सर्वालकारभूषिता ॥ ३९ ॥
 श्यामावदाता सुश्रोण्य काञ्चीनूपुरनादिता ।
 दिव्यमात्प्याम्बरधरा दिव्यग धानुलेपना ॥ ४० ॥

विदग्धाः सुभगाः कान्ताञ्चार्वाङ्ग्य. प्रियदर्शनाः ।
 रूपलावण्यसंयुक्ताः सर्वाः प्रहसिताननाः ॥ ४१ ॥
 क्रीडन्त्यश्च मदोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च ।
 गीतावाद्यकथालापै रमयन्त्यश्च ता. स्त्रिय' ॥ ४२ ॥
 धारमुल्याश्च दृश्यन्ते नृत्यगातविशारदाः ।
 प्रेक्षणालापकुशला. सर्वयोपिदुगुणान्विताः ॥ ४३ ॥
 अन्याश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्या कुलस्त्रियः ।
 पतिव्रताश्च सुभगा गुणै सर्वैरलंकृताः ॥ ४४ ॥
 धनैश्चोपवनैः पुण्यैरद्यानैश्च मनोरमैः ।
 देवतायतनैर्दिव्यैर्नानाकुसुमशोभितैः ॥ ४५ ॥
 शालैस्तालैस्तमालैश्च यकुलैर्नागशेसरैः ।
 पिप्पलैः कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥ ४६ ॥
 पुंनागीर्नारिकेरैश्च पनसै. सरलद्रुमैः ।
 नारङ्गैर्लकुचैर्लोध्रैः सप्तपर्णै शुभाञ्जनैः ॥ ४७ ॥
 चूतविल्वकदम्बैश्च शिशपैर्धवलादिभिः ।
 पाटलाशोकतगरैः करघोरैः सितेतगैः ॥ ४८ ॥
 पीतार्जुनकमल्लता. सिद्धैराभ्रातकैरुत्था ।
 न्यग्रोधाश्वत्थकाश्रम्यै. पलाशीर्देवदारुभिः ॥ ४९ ॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च तिनित्तीकविभीतकैः ।
 प्राचीनामलकै. लुशैर्जम्बूशिरीषपादपै ॥ ५० ॥
 कालेयै. काञ्चनारैश्च मनुजर्म्यारविन्दुकैः ।
 यज्ञूरागस्त्यनकुलैः शाण्डकद्वीतकैः ॥ ५१ ॥

फड्कोलैर्मुचुषुन्दैश्च हिन्तालैर्षोजपूरकै ।
 फेतकीचनपण्डैश्च अतिमुक्तै सकृज्जरे ॥ ५२ ॥
 मह्लिकानुन्दवाणैश्च फदलीपण्डमण्डितै ।
 मातुलुङ्गै पूगफलै करुणै सिन्धुवारकै ॥ ५३ ॥
 बहुवारै कोविदारैर्वदरै सकरञ्जकै ।
 अन्यैश्च विविधै पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरै ॥ ५४ ॥
 लतागुल्मैर्वितानैश्च उद्यानैर्नन्दनोपमै ।
 सदा कुसुमगन्धाढ्यै सदा फलभरानतै ॥ ५५ ॥
 नानापक्षिरतै रम्यैर्नानामृगगणावृतै ।
 चकोरै शतपत्रैश्च भृङ्गारै ध्रियपुत्रकै ॥ ५६ ॥
 कलविड्कैर्मयूरैश्च शुकै कोकिलकैस्तथा ।
 कपोतै खञ्जरीटैश्च श्येनै पारावनैस्तथा ॥ ५७ ॥
 खगैश्चान्यैर्बहुविधै श्रोत्ररम्यैर्मनोरमै ।
 सरित पुष्करिण्यश्च सरासि सुवहूनि च ॥ ५८ ॥
 अन्यैर्जलाशयै पुण्यै कुमुदोत्पलमण्डितै ।
 पद्मै सितेतरै शुभ्रै कहारैश्च सुगन्धिभि ॥ ५९ ॥
 अन्यैर्बहुविधै पुष्पैर्जलजै सुमनोहरै ।
 गन्धामोदकरैर्दिव्यै सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलै ॥ ६० ॥
 हसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितै ।
 सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यै सनक्रकै ॥ ६१ ॥
 जलपादै कदम्बैश्च पृथैश्च जलकुक्कुटै ।
 खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूपितै ॥ ६२ ॥

नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्जितानि समन्ततः ।
 एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः ॥ ६३ ॥
 विविधैः पादपैः पुष्पैरुद्यानैर्विविधैस्तथा ।
 जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चार्यधिष्ठतैः ॥ ६४ ॥
 देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी ।
 तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ॥ ६५ ॥
 महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः ।
 शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विधिवत्पापनाशने ॥ ६६ ॥
 देवान्पितॄन्पृष्वीव संतर्प्य विधिवद्बुधः ।
 गत्वा शिवालयं पश्चात्कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ ६७ ॥
 प्रविश्य संयतो भूत्वा शीतवासा जितेन्द्रियः ।
 स्नानैः पुष्पैस्तथा गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ॥ ६८ ॥
 नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः ।
 दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥ ६९ ॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सरुच्छिवम् ।
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७० ॥
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः ।
 आरुह्य त्रिदिवं याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥ ७१ ॥
 दिव्यरूपधरः श्रीमान्दिव्यालंकारभूषितः ।
 भुङ्क्ते तत्र परान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७२ ॥
 शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जरामरणचर्जितः ।
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रचरे ब्राह्मणे कुले ॥ ७३ ॥

चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।
 योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
 आस्ते तत्र नदी पुण्या शिवा नामेति विश्रुता ।
 तस्यां स्नातस्तु विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ७५ ॥
 सर्वपापचिनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः ।
 भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥ ७६ ॥
 आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः ।
 गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरिः ॥ ७७ ॥
 तं दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः ।
 विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥ ७८ ॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च ।
 उपगीयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महोयते ॥ ७९ ॥
 भुङ्क्ते च विविधान्कामान्निरातङ्को गतज्वरः ।
 आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपः सुभगः सुखी ॥ ८० ॥
 कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मणः स्यान्महीतले ।
 प्रवरे योगिनां गेहे वेदशास्त्रार्थतस्ववित् ॥ ८१ ॥
 वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ।
 विक्रमस्वामिनामानं विष्णुं तत्रैव भो द्विजाः ॥ ८२ ॥
 दृष्ट्वा नरो वा नारी वा फलं पूर्वोदितं लभेत् ।
 अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ८३ ॥
 मातरश्च मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदाः ।
 दृष्ट्वा तान्विधिवद्भक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ ८४ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम् ।
 एवं सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥ ८५ ॥
 निन्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती ।
 पुराष्टादशसंयुक्ता सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥ ८६ ॥
 धनुर्ज्याघोषनिनदा सिद्धसंगमभूयिता ।
 विद्यावद्गणमूयिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता ॥ ८७ ॥
 इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च ।
 काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहर्निशं द्विजाः ॥ ८८ ॥
 एवं मया गुणाढ्या सा तदु(सोज्ज)यिनी समुदाहृता ।
 यस्यां राजाऽभवत्पूर्वमिन्द्रद्युम्नो महामतिः ॥ ८९ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदित्राहो म्वयंभुवदपिसंवादेऽवन्तिका-
 वर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥
 आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्का—३११३

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यदक्षिणोदधितटगमनम्

ग्रहोवाच ।

तस्यां स नृपतिः पूर्वं कुर्यन्न्राज्यमनुत्तमम् ।
 पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिर्वोरसान् ॥ १ ॥
 सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः ।
 मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशस्त्रभृतां घटः ॥ २ ॥

सत्यवाञ्छोलवान्दान्तः श्रोमान्परपुरंजयः ।
 आदित्य इव तेजोभी रूपैराश्विनयोरिव ॥ ३ ॥
 वर्धमानसुराश्चर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
 शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणेः समलंकृतः ॥ ४ ॥
 आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तथा ।
 दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च तत्तुल्यो नास्ति भूपतिः ॥ ५ ॥
 सुवर्णमणिमुक्तानां गजाश्वानां च भूपतिः ।
 प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो यागे यागे महाधनम् ॥ ६ ॥
 हस्त्यश्वरथमुख्यानां कम्बलाजिनवाससाम् ।
 रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते ॥ ७ ॥
 एव सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ।
 सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्नाज्यमकण्टकम् ॥ ८ ॥
 तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम् ।
 कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ।
 विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम् ।
 इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ १० ॥
 धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान् ।
 वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि यानि च ॥ ११ ॥
 गुरुं संसेव्य यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
 आधाय परमां फाष्टां षुतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
 संप्राप्य परमं तत्त्वं घामुदेवाद्यमव्ययम् ।
 भ्रान्तिज्ञानादतीतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥ १३ ॥

कथमाराधयिष्यामि देवदेवं सनातनम् ।
 पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
 वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोमितम् ॥ १५ ॥
 स्वपुरात्स तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः ।
 यत्नेन महता युक्तः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ १६ ॥
 अनुजग्मुस्तु तं सर्वे रथिनः शस्त्रपाणयः ।
 रथैर्धिमानसंकाशैः पताकाध्वजसेवितैः ॥ १७ ॥
 सादिनश्च तथा सद्यः प्रासतोमरपाणयः ।
 अश्वैः पवनसंकाशैरनुजग्मुस्तु तं नृपम् ॥ १८ ॥
 हिमवत्संभवैर्मत्तैर्वारणैः पर्यतोपमैः ।
 ईपादन्तैः सदा मत्तैः प्रचण्डैः पट्टिहायनैः ॥ १९ ॥
 हेमकक्षैः सपताकैर्घण्टारथविभूषितैः ।
 अनुजग्मुश्च तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥ २० ॥
 असल्येयाश्च पादाता धनुःप्रासासिपाणयः ।
 दिव्यमाल्याम्बधरा दिव्यगन्धानुलेपना ॥ २१ ॥
 अनुजग्मुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः ।
 सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥ २२ ॥
 अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलकृताः ।
 विर्गोष्ठत्रासुदशनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २३ ॥
 दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिताः ।
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिमानता ॥ २४ ॥

सुमध्यमाश्चारुवेपाश्चारुकर्णालकाञ्चिताः ।

ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥ २५ ॥

यानैरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूपितैः ।

उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥ २६ ॥

वेष्टिताः शस्त्रहस्तैश्च पद्मपत्रायतेक्षणाः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम् ॥ २७ ॥

घणिग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः ।

धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः ॥ २८ ॥

अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः ।

तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥ २९ ॥

रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा ।

तैलविक्रयकाश्चैव घस्त्रविक्रयकास्तथा ॥ ३० ॥

फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा ।

तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः ॥ ३१ ॥

गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये घस्त्रसूचकाः ।

मेघपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥ ३२ ॥

भ्रान्तविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये ।

गुह्यविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥ ३३ ॥

गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः ।

शैलूयाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥ ३४ ॥

कथयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः ।

विश्या गाढहाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः ॥ ३५ ॥

व्योकारान्ताप्रकाराश्च कांस्यकाराश्च हठकाः ।
 कौपकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः ॥ ३६ ॥
 दण्डकाराश्चासिकाराः सुराधूनोपजीविनः ।
 मट्टा दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिणः ॥ ३७ ॥
 तन्तुचाया रूपकारा चार्तिकास्तैलपाटकाः ।
 लावजीवास्तीत्तिरिका मृगपश्युपजीविनः ॥ ३८ ॥
 गजवैद्याश्च वैद्याश्च नखवैद्याश्च ये नरा ।
 वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः ॥ ३९ ॥
 एते नागरकाः सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता ।
 अनुजग्मुन्तु राजान समन्तपुरवासिनः ॥ ४० ॥
 यथा व्रजन्तं पितरं ग्रामान्तरं समुन्सुकाः ।
 अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा त तेऽपि नागराः ॥ ४१ ॥
 एवं स नृपतिः श्रीमान्भृतः सर्वैर्महाजनैः ।
 हस्त्यश्वरथपादानैर्जगाम च शनैः शनैः ॥ ४२ ॥
 एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम् ।
 सर्वैस्तेर्दोर्धकालेन बलैरनुगतः प्रभुः ॥ ४३ ॥
 ददर्श सागरं रम्यं नृत्यन्तमिष च स्थितम् ।
 अनेकशतसाहस्रैरुर्मिश्रं समाकुलम् ॥ ४४ ॥
 नानारक्षालय पूर्णं नानाप्राणिसमाकुलम् ।
 चौचीतरङ्गव्यह्वलं महाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ४५ ॥
 तीर्थराजं महाशब्दमपारं सुभयंकरम् ।
 मेघघृन्दप्रतीकाशमगार्धं मकरालयम् ॥ ४६ ॥

मत्स्यैः कूर्मैश्च शङ्खैश्च शुनिषाननगद्मिः ।
 शिंशुमारैः कर्पटैश्च वृत्तं सर्वमहापिपैः ॥ ४७ ॥
 लपणोद् हरे. न्यातं शयनस्य मर्दापतिम् ।
 सर्वपापहरं पुण्यं सर्वपापघ्नापत्प्रदम् ॥ ४८ ॥
 धनेकापतेगर्मांश्च ज्ञानपाना समाश्रयम् ।
 वामृतप्यारणिं दिव्यं श्रेययोनिमपां पतिम् ॥ ४९ ॥
 विशिष्टं सर्वभूतानां प्राणिनां जीवधारणम् ।
 सुपवित्रं पवित्राणां महत्ताना च महत्तम् ॥ ५० ॥
 तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादनां पतिम् ।
 चन्द्रवृद्धिक्षयस्येव यस्य मानं प्रतिष्ठितम् ॥ ५१ ॥
 अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम् ।
 उत्पत्तिम्यतिमंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥ ५२ ॥
 उपजीन्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम् ।
 दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः ॥ ५३ ॥
 निवासमकरोत्तत्र धैलामासाद्य सागरीम् ।
 पुण्ये मनोहरे देसे सर्वभूमिगुणैर्युते ॥ ५४ ॥
 वृत्तं शालैः कदम्बैश्च पुंनागीः सरलद्रुमैः ।
 पतसैर्नारिकेलैश्च यकुलैर्नागकेसरैः ॥ ५५ ॥
 तालैः पिप्पलैः सज्जैर्नारङ्गैर्वीजपूरकैः ।
 शालैराघ्रातकैर्लोध्रैर्वकुलैर्वहुधारकैः ॥ ५६ ॥
 कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ।
 दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तथाऽजुनीः ॥ ५७ ॥

प्राचीनामलमैर्विल्वै प्रियगुचटखादिरै ।
 इद्भुदीसप्तपर्णेश्च अश्वथागस्त्यजम्बुकै ॥ ५८ ॥
 मधुकै कर्णिकारैश्च बहुवारै सतिन्दुकै ।
 पलाशप्रदरैर्नीपै सिद्धनिम्बशुभावनै ॥ ५९ ॥
 धारकै कोविदारैश्च भङ्गातामलमैस्तथा ।
 इति हिन्तालकाङ्गोले करञ्जै सविभातकै ॥ ६० ॥
 ससर्जमधुकाशमर्यै शालमलादेवदारुभि ।
 शाखोटकैर्निम्बवृक्षै कुम्भीकोष्ठहरातकै ॥ ६१ ॥
 गुग्गुलेश्चन्दनैर्वृक्षैस्तथैवागुरुपात्रलै ।
 जम्बीरकरुणैर्वृक्षै स्तिन्तिडारक्तचन्दनै ॥ ६२ ॥
 एव नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्वह्नुपादपै ।
 कल्पद्रुमैर्नित्यफलै सर्वतुङ्गसुमोत्करै ॥ ६३ ॥
 नानापक्षिष्ठतैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितै ।
 मयूरवरसघुष्पै शुकसारिकसकुत्रै ॥ ६४ ॥
 हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्गहुपुत्रकै ।
 जीवजीवककाकोलै कलविङ्कै कपोतकै ॥ ६५ ॥
 खगैर्नानाविधैश्चान्यै श्रोत्ररम्यैर्मनोहरै ।
 पुष्पिताम्रेषु वृक्षेषु कृजद्विश्चार्वाधिष्ठितै ॥ ६६ ॥
 केतकीवनपण्डैश्च सदा पुष्पधरै सितै ।
 मल्लिकारुन्दकुसुमैर्युधिकातगरैस्तथा ॥ ६७ ॥
 कुटजैर्वाणपुष्पैश्चअतिमुक्तै सकुञ्जकै ।
 मालतीकरवीरैश्च तथा कदलकाञ्चनै ॥ ६८ ॥

अन्धैर्नानाविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्चास्मदशने ।
 घनोद्यानोपवनजैर्नानावर्णैः सुगन्धिमि ॥ ६६ ॥
 विद्याधरगणाकीर्णैः सिद्धचारणसेपितैः ।
 गन्धर्वोरगरक्षोभिर्मूताप्सरसकिन्नरैः ॥ ७० ॥
 मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानामरघनिषेवितैः ।
 मृगैः शापामृगैः सिद्धैर्वराहमहिषाकुलैः ॥ ७१ ॥
 तथाऽन्यैः कृष्णसाराद्यैर्मृगैः सर्वत्र शोभितैः ।
 शार्दूलैर्दोतमातङ्गैस्तथाऽन्यैर्वनचारिमि ॥ ७२ ॥
 एव नानाविधैर्दृष्टैश्चैत्यनैर्नन्दनापमैः ।
 लतागुणमवितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥ ७३ ॥
 हसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ।
 कादम्बैश्च प्लवङ्गैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितैः ॥ ७४ ॥
 कमलैः शतपत्रैश्च कङ्कारैः कुमुदोत्पलैः ।
 खगेर्जलचरैश्चान्यैः पुष्पैर्जलसमुद्गमवैः ॥ ७५ ॥
 पर्वतैर्दोप्तशिखरैश्चारुकरुन्दरमण्डितैः ।
 नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः ॥ ७६ ॥
 सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः ।
 सर्वावधिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसानुभिः ॥ ७७ ॥
 एव सर्वैः समुदितैः शोभितः सुमनोहरैः ।
 ददर्श स महीपालः स्थानत्रैलोक्यपूजितम् ॥ ७८ ॥
 दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम् ।
 नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुलभम् ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्राहो स्वयम्भृपिसवादे क्षेत्रदर्शनं

नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४४ ॥

आदित श्लोकाना समष्ट्यङ्का — ३१६२

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रवर्णनम्

मुनय ऊचु ।

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे ।

किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो ॥ १ ॥

येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सवलचाहन ।

स्थापयामास वृष्ण च राम भद्रा शुभप्रदाम् ॥ २ ॥

सशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते ।

श्रोतुमिच्छामहे सर्वं त्रुहि तत्कारण च न ॥ ३ ॥

त्रहसोवाच ।

शृणु च पूर्वसंवृत्ता कथा पापप्रणाशिनीम ।

प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्ट पुरा हरि ॥ ४ ॥

सुमेरो काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते ।

सिद्धविद्याधरेर्यक्षै किंनरैरुपशोभिते ॥ ५ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्नागैरप्सरसा गणे ।

मुनिभिर्गुह्यकै सिद्धै सौपर्णे समरुद्रणे ॥ ६ ॥

अन्यैर्देवालयै साभ्यै कश्यपाद्यै प्रजेश्वरै ।
 घालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे ॥ ७ ॥
 कर्णिकारवनैर्दिव्यै सर्वतुङ्कुसुमोत्करै ।
 जातरूपप्रतीकाशैर्भूपिते सूर्यसनिभै ॥ ८ ॥
 अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षै शालतालादिभिर्वनै ।
 पुनागाशोकसरलन्यग्रोधाभ्रातकार्जुनै ॥ ९ ॥
 पारिजाताप्रखदिरनीपविल्वकदम्बकै ।
 धवलादिरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकै ॥ १० ॥
 नारिङ्गकोलवकुल्लोधदाडिमदारुकै ।
 सर्जैश्च कर्णैस्तगरै शिशिभूर्जवनिम्यकै ॥ ११ ॥
 अन्यैश्चकाञ्चनैश्चैव फलभारैश्चनामितै ।
 नानानुसुमगन्धाढ्यैर्भूपिते पुष्पपादपै ॥ १२ ॥
 मालतीयूथिकामल्लीनुन्दवाणकुरुण्टकै ।
 पाटलागस्त्यनुत्तमन्दारकुसुमादिभि ॥ १३ ॥
 अन्यैश्च विविधै पुष्पैर्मनस प्रीतिदायकै ।
 नानाविहगसघैश्च कृजद्विर्मधुरस्वरै ॥ १४ ॥
 पुस्कोकिलरुतैर्दिव्यैर्मत्तयर्हिणनादितै ।
 एव नानाविधैर्वृक्षै पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥ १५ ॥
 रगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते ।
 तत्र स्थित जगन्नाथ जगत्स्त्रष्टारमग्नयम् ॥ १६ ॥
 सर्वलोकविधातार घासुदेवाढ्यमग्नयम् ।
 प्रणम्य शिरसा देवी लोषानां हितकाम्यया ॥
 पप्रच्छेम महाप्रज्ञं पञ्जजा तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

श्रीरुवाच ।

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश संशयं मे हृदि स्थितम् ।
 मर्त्यलोके महाश्वर्यं कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥ १८ ॥
 लोममोहप्रहप्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे ।
 येन मुच्येत देवेश अस्मात्संसारसागरात् ॥ १९ ॥
 आचक्ष्व सर्वदेश प्रणतां यदि मन्त्रसे ।
 त्यद्वेने नास्ति लोकेऽस्मिन्वका संशयनिर्णये ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्यैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दन ।
 प्रोवाच परया प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुखोपास्य सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसफल ।
 आन्ते तीर्थवरे देवि विख्यात पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥
 न तेन सदृशः कश्चिन्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
 कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २३ ॥
 न विज्ञातोऽमरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवैः ।
 मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपितं मे धरानने ॥ २४ ॥
 तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराज च सांप्रतम् ।
 भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व धरवर्णिनि ॥ २५ ॥
 धासीत्कल्पे समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
 प्रलीना देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगाः ॥ २६ ॥

तमोभूतमिदं सद्यं न प्राणायत किञ्चन ।
 तस्मिन्नागर्ति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥ २७ ॥
 श्रीमांस्त्रिमूर्तिर्हृद्देषो जगत्कर्ता महेश्वरः ।
 वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हृत्परीश्वरः ॥ २८ ॥
 सोऽसृजयोगनिद्रान्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम् ।
 पद्मपेशरसंकाशं ब्रह्माणं भूतमग्र्यम् ॥ २९ ॥
 तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः ।
 पञ्चभूतसमायुक्तं सृजते च शनैः शनैः ॥ ३० ॥
 मात्रायोनीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च ।
 चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥ ३१ ॥
 ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम् ।
 संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥ ३२ ॥
 मरोच्चादीन्मुनीन्सर्वान्देवासुरपितृनपि ।
 यक्षविद्याधरांश्चान्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ३३ ॥
 नखानरसिंहांश्च विविधांश्च विहंगमान् ।
 जरायूनण्डजान्देवि स्वेदजोद्भेदजांस्तथा ॥ ३४ ॥
 ब्रह्मक्षत्रं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम् ।
 अन्त्यजातांश्च म्लेच्छांश्च ससर्ज विविधान्पृथक् ॥ ३५ ॥
 यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम् ।
 ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे स चराचरम् ॥ ३६ ॥
 दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम् ।
 वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत् ॥ ३७ ॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसंभवाः ।
 अधमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च ॥ ३८ ॥
 एवं संचिन्त्य देवोऽसौ पुरा सलिलयोनिजः ।
 जगाम ध्यानमास्थाय षातुदेवात्मिकां तनुम् ॥ ३९ ॥
 ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जनादनः ।
 तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः महन्नाक्षः महस्रपात् ॥ ४० ॥
 सहस्रशीर्षा पुरुषः पुण्डरीकनिभेक्षणः ।
 सलिलध्यानतमेवामः ध्रामाद्द्रावत्सलक्षणः ॥ ४१ ॥
 अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 आसनैरर्ष्यपाद्यैश्च अक्षनैरभिनन्द्य च ॥ ४२ ॥
 तुष्टाय परमैः स्तोत्रैर्विचिञ्चि सुममाहितः ।
 ततोऽहमुक्तवान्देवं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥
 कारणं घद् मां तात मम ध्यानस्य सांप्रतम ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

जगद्धिताय देवेश मत्पलोकैश्च दुर्लभम् ।
 स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च ॥ ४४ ॥
 योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विवधानि च ।
 विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं घद् ॥ ४५ ॥
 स्थानं जगत्पते महामुत्कृष्टं च यदुच्यते ।
 सर्वेषामुत्तमं स्थानं ब्रूहि मे पुरुषोत्तम ॥ ४६ ॥
 विधातुर्वचनं श्रुत्या ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये ।
 शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि निर्मलं भुवि दुर्लभम् ॥ ४७ ॥

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं महास्तारणम् ।
 गोब्राह्मणदितं पुण्यं चानुर्यर्ण्यमुणोदयम् ॥ ४८ ॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां क्षेत्रं परमदुर्लभम् ।
 महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं वै पिनामह ॥ ४९ ॥
 तस्मादासोत्समुत्पन्नं तीर्थराजं सनातनम् ।
 विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्युगनिषेधितम् ॥ ५० ॥
 सर्वेषामेव देवानामृषीणां ब्रह्मचारिणाम् ।
 दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ५१ ॥
 नानाविद्याधराणां च स्थावरस्य चरस्य च ।
 उत्तमः पुरुषो यस्मात्तन्मात्म पुरुषोत्तमः ॥ ५२ ॥
 दक्षिणस्योदधेस्तीरं न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ।
 दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥ ५३ ॥
 यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदुत्पुलकानिबर्हणे ।
 विनाश नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः ॥ ५४ ॥
 दृष्टमात्रे घटे तस्मिंश्छायामाक्रम्य चासृज् ।
 ब्रह्महत्यात्प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा ॥ ५५ ॥
 प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः ।
 सर्वे विधूतपाप्मानस्ते गताः केशवालयम् ॥ ५६ ॥
 न्यग्रोधस्योत्तरे किञ्चिद्दक्षिणे केशवस्य तु ।
 प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हि तत् ॥ ५७ ॥
 प्रतिमां तत्र वै दृष्ट्या स्वयं देवेन निर्मिताम् ।
 अनायासेन वै यान्ति भुवनं मे ततो नराः ॥ ५८ ॥

गच्छमानांस्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट्प्रिये ।
मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽप्रवीत् ॥ ५६ ॥

यम उवाच ।

नमस्ते भगवन्देव लोकनाथ जगत्पते ।
क्षीरोदघासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥ ६० ॥
घरं घरेण्यं घरदं कर्तारमकृतं प्रभुम् ।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥ ६१ ॥
नीलोत्पलदलय्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ।
सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥ ६२ ॥
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकसुखावहम् ।
पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्तायक्तं सनातनम् ॥ ६३ ॥
परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
श्रीयत्सोरस्कसयुक्तं घनमालाविभूषितम् ॥ ६४ ॥
पीतवस्त्र चतुर्बाहु शङ्खचक्रगदाधरम् ।
हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥ ६५ ॥
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविचर्जितम् ।
कूटस्थमचलं सक्षमं ज्योतिरूपं सनातनम् ॥ ६६ ॥
भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम् ।
नमस्यामि जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥ ६७ ॥
इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसंनिधौ ।
मनुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥ ६८ ॥

त दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणत प्राञ्जलिन्धितम् ।
 स्तोत्रम्य कारण देवि पृष्ट्वानहमन्तरुम् ॥ ६६ ॥
 वैवस्वत महाबाहो सचदेवोत्तमो ह्यसि ।
 किमयं स्तुतवान्मा त्व सक्षेपात्तद्गुर्वीहि मे ॥ ७० ॥

धर्मराज उवाच ।

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ।
 इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥ ७१ ॥
 ता दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया ।
 श्रेताख्य भवन यान्ति निष्कामाश्चैव मानवा ॥ ७२ ॥
 अत कतुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन ।
 प्रसीद सुमहादेव सहर प्रतिमा विभो ॥ ७३ ॥
 श्रुत्वा वैवस्वतस्यैतद्वाक्यमेतदुवाच ह ।
 यम ता गोपयिष्यामि सिकताभि समन्तत ॥ ७४ ॥
 तत सा प्रतिमा देवि बल्लिभिर्गोपिता मया ।
 यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजा स्वर्गकाङ्क्षिण ॥ ७५ ॥
 प्रच्छाद्य बल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदै ।
 यम प्रस्थापयामास स्वां पुरीं दक्षिणा दिशम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

लुप्ताया प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजा ।
 तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे ॥ ७७ ॥
 यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनार्दन ।
 त सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पूरा ॥ ७८ ॥

इन्द्रद्युम्नस्य गमन क्षेत्रसदर्शन तथा ।
 क्षेत्रस्य वर्णन चैव प्रासादकरण तथा ॥ ७६ ॥
 हयमेघस्य यजन स्वप्नदर्शनमेव च ।
 लवणस्योदधेस्तीरे काष्ठस्य दर्शन तथा ॥ ८० ॥
 दर्शन घासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजा ।
 निर्माण प्रतिमायास्तु यथावर्णं विदोषत ॥ ८१ ॥
 स्थापन चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे ।
 यात्राकाले च विप्रेन्द्रा कल्पसर्कितन तथा ॥ ८२ ॥
 मार्कण्डेयस्य चरित स्थापन शकरस्य च ।
 पञ्चतार्थस्य माहात्म्य दर्शन शूलपाणिन ॥ ८३ ॥
 वटस्य दर्शन चैव व्युष्टि तस्य च भो द्विजा ।
 दर्शन त्रल्लदेवस्य कृष्णस्य च विदोषत ॥ ८४ ॥
 सुमद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्य चैव सर्वश ।
 दर्शन नरसिंहस्य व्युष्टिसर्कितन तथा ॥ ८५ ॥
 अनन्तवासुदेवस्य दर्शन गुणसर्कितनम् ।
 श्रेतमाधवमाहात्म्य स्वर्गद्वारस्य दर्शनम् ॥ ८६ ॥
 उदधेर्दर्शन चैव स्नान तर्पणमेव च ।
 समुद्रस्नानमाहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजा ॥ ८७ ॥
 पञ्चतार्थफल चैव महाज्येष्ठ तथैव च ।
 स्थान कृष्णस्य हलिन पर्यायात्राफल तथा ॥ ८८ ॥
 वर्णन विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुन पुन ।
 पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तम ॥ ८९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्याहो स्वयंभुवृक्षपिसंवादे पूर्ववृत्ता-
नुवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३२८९

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुरुषोत्तमक्षेत्रवर्णनम्

मुनय ऊचुः ।

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपतेः ।

तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ऋणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः ।

क्षेत्रसदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपतेः ॥ २ ॥

गत्वा तत्र महीपाल क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते ।

ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥ ३ ॥

नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादचिनिर्गता ।

स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥ ४ ॥

गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी ।

महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्धरा ॥ ५ ॥

दक्षिणस्योदधेर्गमं गताऽऽवर्तातिशोभिता ।

उभयोस्तटपोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ६ ॥

दृश्यन्ते मुनिशार्दूलाः सुसस्याः सुमनोहराः ।
 हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥ ७ ॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक् ।
 स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणाः ॥ ८ ॥
 ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः ।
 वेदपूर्णमुखा विप्राः सपङ्कपदक्रमाः ॥ ९ ॥
 अग्निहोत्ररताः केचित्केचिर्दीपासनक्रियाः ।
 सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ १० ॥
 चत्वरे राजमार्गेषु पनेषूपवनेषु च ।
 सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥ ११ ॥
 इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गा सुलक्षणाः ।
 काव्यशास्त्रकथास्तत्र ध्रूयन्ते च महाजनैः ॥ १२ ॥
 स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौचनगर्विताः ।
 संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः ॥ १३ ॥
 सरोरुहमुखाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभानताः ।
 पीनोन्नतस्तनाः सर्वा समृद्ध्या चास्दर्शनाः ॥ १४ ॥
 सौवर्णवलयाम्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलङ्कृता ।
 कदलीगर्मसंकाशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभाः ॥ १५ ॥
 विम्व्याधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः ।
 सुमुखाश्चारुनेशाश्च हावभावावनामिताः ॥ १६ ॥
 काञ्चिपद्मपलाशाद्यः काञ्चिदिन्दीचरेक्षणाः ।
 विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वङ्ग्यश्च तथाऽपराः ॥ १७ ॥

कुटिलालकसंयुक्ताः सीमन्तेन घिराजिताः ।

ग्रीवामरणसंयुक्ता माल्यदामविभूषिताः ॥ १८ ॥

कुण्डलै रत्नसंयुक्ताः कर्णपूरैर्मनोहरैः ।

देवयोपित्प्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणाः ॥ १९ ॥

दिव्यगीतवरैर्धन्यैः क्रीडमाना वराङ्गनाः ।

वीणावेणुमृदङ्गैश्च पणवैश्चैव गोमुरैः ॥ २० ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरैः ।

क्रीडन्त्यस्ताः सदा हृष्टा विलासिन्यः परस्परम् ॥ २१ ॥

एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदाः ।

दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गनाः ॥ २२ ॥

भिक्षुवैखानसैः सिद्धैः स्नातकैर्यज्ञचारिभिः ।

मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैर्यज्ञसिद्धैर्निषेवितम् ॥ २३ ॥

इत्येव ददृशे राजा क्षेत्रं परमशोभनम् ।

अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवन्तं सनातनम् ॥ २४ ॥

जगद्गुरुं परं देवं परं पारं परं पदम् ।

सर्वेश्वरैश्वरं विष्णुमनन्तमपराजितम् ॥ २५ ॥

इदं तन्मानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् ।

कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥ २६ ॥

प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वयं देवेन गोपिता ।

न चात्र दृश्यते चान्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥ २७ ॥

तथा यत्नं करिष्यामि यथा देवो जगत्पतिः ।

प्रत्यक्षं मम चाभ्येति विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ २८ ॥

यज्ञं दानैस्तपोमिध्व होमैर्ध्यानैस्तथाऽर्चनैः ।

उपवासैश्च विधिवच्चरेयं व्रतमुत्तमम् ॥ २६ ॥

अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानसः ।

विष्ण्वायतनविन्यासे प्रारम्भं च करोम्यहम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्राहो स्वयंभुमृषिसंवादे क्षेत्रवर्णनं नाम

पञ्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

आदित. श्लोकानां समष्ट्यङ्का — ३३११

—

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यप्रासादकरणार्थं राज्ञामाह्वानम्

ब्रह्मोवाच ।

एवं स पृथिवीपालश्चिन्तयित्वा द्विजोत्तमा ।

प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥ १ ॥

आनाप्य गणकान्सर्वानान्यार्यांश्छास्त्रपारगान् ।

भूमिं सशोध्य यत्नेन राजा तु परया मुदा ॥ २ ॥

प्राह्मणैर्ज्ञानसंपन्नैर्षोडशाम्भार्यपारगैः ।

अमात्यैर्मन्त्रिमिध्वैश्च घास्तुपिशाचिशरदैः ॥ ३ ॥

तेः साधं स समालोक्य सुमुहूर्ते शुभे दिने ।

सुचन्द्रतारसंयोगे प्रदानुमूल्यसंयुते ॥ ४ ॥

जयमङ्गलशस्त्रैश्च नानापाद्यैर्मनोहरैः ।
 घेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतैः सुमधुरस्वरैः ॥ ५ ॥
 पुष्पलाजाक्षतैर्गन्धैः पूर्णकुम्भैः सर्क्षापफैः ।
 ददावभ्यं सतो राजा श्रद्धया सुमाहितः ॥ ६ ॥
 दत्त्वैवमभ्यं विधिघदानाय्य स मर्हापतिः ।
 कलिङ्गाधिपतिं शूरमुत्कलाधिपतिं तथा ॥
 कोशलाधिपतिं चैव तानुवाच तदा नृपः ॥ ७ ॥

राजोवाज ।

गच्छध्वं सहिताः सर्वे शिलार्थं सुसमाहिताः ।
 गृहीत्वा शिल्पिमुख्यांश्च शिलाकर्मविशारदान् ॥ ८ ॥
 विन्ध्याचलं सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ।
 निरूप्य सर्वसानूनि च्छेदयित्वा शिलाः शुभाः ॥
 संवाह्यन्तां च शकटैर्नौकाभिर्मा विलम्बथ ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं गन्तुं समादिश्य तान्नृपान्स मर्हापतिः ।
 पुनरेधाव्रवीद्वाक्यं सामात्यान्स पुरोहितान् ॥ १० ॥

राजोवाच ।

गच्छन्तु दूताः सर्वत्र मामाऽऽज्ञां प्रवदन्तु वै ।
 यत्र तिष्ठन्ति राजानः पृथिव्यां तान्सुशीघ्रगाः ॥ ११ ॥
 हस्त्यश्वरथपादातैः सामात्यैः सपुरोहितैः ।
 गच्छत सहिताः सर्वेन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एव दूता समावाता राजा तेन महात्मना ।
 गत्वा तदा नृपानूचुर्बचन तम्य भूपते ॥ १३ ॥
 श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूताना वचन नृपा ।
 आजग्मुस्त्वरिता सर्वे म्यसैन्यै परिवारिता ॥ १४ ॥
 ये नृपा पूर्वदिग्भागे ये च दक्षिणत स्थिता ।
 पश्चिमाया स्थिता ये च उत्तरापथमस्थिता ॥ १५ ॥
 प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च सनिधिवासिन ।
 पार्वतीयाश्च ये केचित्तया द्वीपनिवासिन ॥ १६ ॥
 रथैर्नागै पदातीश्व घाजिमिर्धनविस्तरै ।
 सप्राप्ता यदुशो विप्रा श्रुत्वेन्द्रधम्मशासनम् ॥ १७ ॥
 तानागतान्नृपान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान् ।
 प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम् ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

शृणुष्व नृपशार्दूला यथा किञ्चिद्ब्रवाम्यहम् ।
 अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिमुक्तिप्रद शिरे ॥ १९ ॥
 ह्यमेध महायज्ञ प्रासाद चैव वैष्णवम् ।
 कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुल मन ॥ २० ॥
 भवद्भि सुसहायैस्तु सर्वमेत्कराम्यहम् ।
 यदि यूय सहयाया मे भवन् नृपसत्तमा ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्येव वदमानस्य राजराजस्य धीमत ।
 सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तम्य शासनात् ॥ २२ ॥

ववृपुर्धनरत्नैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः ।
 कम्बलाजिनरत्नैश्च राङ्गवास्तरणैः शुभैः ॥ २३ ॥
 घञ्जयैदूर्यमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः ।
 गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥ २४ ॥
 असंख्येयैर्वहुविधैर्द्रव्यैरुच्चावचैस्तथा ।
 शालित्रीहियवैश्चैव मापमुद्गतिलैस्तथा ॥ २५ ॥
 सिद्धार्थचणकैश्चव गोधूमैर्मसुरादिभिः ।
 श्यामाकर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुलत्थकैः ॥ २६ ॥
 अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः ।
 बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥ २७ ॥
 गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
 तथाऽन्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥ २८ ॥
 राजानः पूरयामासुर्यर्तिकचिद्बुद्ध्यसंभवैः ।
 तान्दृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्समन्वितान् ॥ २९ ॥
 यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् ।
 शास्त्रेषु निपुणान्दक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥ ३० ॥
 ऋषीश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान् ।
 ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च घातप्रस्थान्यतींस्तथा ॥ ३१ ॥
 स्नातकान्नाह्वानांश्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्थितान् ।
 आचार्योपाध्यायघरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान् ॥ ३२ ॥
 सदस्याञ्छास्त्रकुशलांस्तथाऽन्यान्पाचकान्वहून् ।
 दृष्ट्वा तान्नृपतिः श्रीमानुवाच स्वं पुरोहितम् ॥ ३३ ॥

राजोवाच ।

ततः प्रयान्तु चिद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

वाजिमेधार्यसिद्धुध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥ ३४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्तः स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः ।

हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥ ३५ ॥

ततो ययौ पुरोध्याञ्च प्राज स्थपतिभिः सह ।

ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्रकर्मणि ॥ ३६ ॥

तं देशं धोवरग्रामं सप्रतोलिविटङ्कितम् ।

कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥ ३७ ॥

प्रासादशतसंघाद्यं मणिप्रवरशोभितम् ।

इन्द्रसदृमनिभं रम्यं हेमरत्नविभूषितम् ॥ ३८ ॥

स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च ।

यज्ञायतनदेशेषु दत्त्वा शुद्धं च काञ्चनम् ॥ ३९ ॥

अन्त पुराणि राजां च नानादेशनिवासिनाम् ।

कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥ ४० ॥

ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसर्मायुषाम् ।

कारयामास विधिवच्छालास्तप्राप्यनेकशः ॥ ४१ ॥

प्रियायं तस्य नृपनेराययुर्नृपसत्तमाः ।

रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुस्सवे ॥ ४२ ॥

तेषां निर्विशतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम् ।

नदतः सागरस्येव दिविस्पृगमवदुध्वनि ॥ ४३ ॥

तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमा ।
 व्यादिदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥ ४४ ॥
 भोजनानि विचित्राणि शालीक्षुयवगोरसैः ।
 उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्यादिदेश स्वयं तदा ॥ ४५ ॥
 तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः ।
 ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्द्भिजसत्तमाः ॥ ४६ ॥
 समाजग्मुः सशिष्यास्ताःप्रतिजग्राह पार्थिवः ।
 सर्वांश्च ताननुययी यावदावसथानिति ॥ ४७ ॥
 स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः ।
 ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा ॥ ४८ ॥
 कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन् ।
 ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः ॥
 हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु घाग्मिनो हेतुवादिभिः ।
 हेतुवादान्वह्नाहुः परस्परजिगीषवः ॥ ५० ॥
 देवेन्द्रस्येव (?)विहितं राजसिंहेन भो द्विजाः ।
 ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च ॥ ५१ ॥
 शय्यासनविकारांश्च सुयहग्रजसंचयान् ।
 घटपात्रीकटाहानि फलशान्वर्धमानकान् ॥ ५२ ॥
 न कश्चिदसौघर्णमपश्यद्वसुधाधिपः ।
 यूपान्श्च शास्त्रपठितान्दारघान्देमभूपितान् ॥ ५३ ॥

उपक्षितान्यथाकाल विधिघटभूरिवर्चस ।
 स्थलजा जलजा ये च पशव केचन द्विजा ॥ ५४ ॥
 सर्वानिव समानातानपश्यस्तत्र ते नृपा ।
 गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धन्त्रियोऽपि च ॥ ५५ ॥
 औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि घयासि च ।
 जरायुजाण्डजातानि स्वदेनान्युद्धिदानि च ॥ ५६ ॥
 पर्यतान्युपधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते ।
 एव प्रमुदित सर्वं पशुतो घनधान्यत ॥ ५७ ॥
 यज्ञवाट नृपा दृष्ट्वा विस्मय परम गता ।
 ग्राह्यगाना विशा चैव ऋमिणात्रमृद्धिमत् ॥ ५८ ॥
 पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणा तत्र भुवताम् ।
 दुन्दुभिर्मैघनिर्गोपाः सुदुमुटुरयाकरोत् ॥ ५९ ॥
 विननादासृच्चापि दिवसे दिवसे गते ।
 एव स घट्ट्रे यज्ञस्तस्य रातस्तु धीमत ॥ ६० ॥
 धत्रस्य सुदृहन्विप्रा उत्सगात्निर्गतोपमान् ।
 दधिमुटुर्याश्च नृदृशु पयसश्च हृदास्तथा ॥ ६१ ॥
 जग्भृद्वापो हि सकलो नानाजनपदैर्युत ।
 द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते रातस्तस्य महामखे ॥ ६२ ॥
 तत्र यानि सहस्राणि पुटपाणा ततस्त ।
 गृहीत्या भाजन जग्मुर्गृह्णति द्विनसत्तमा ॥ ६३ ॥
 श्राविणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डला ।
 पर्यत्रेपयन्दिजाताऽच्छतशोऽथ सहस्रश ॥ ६४ ॥

विधिधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।
 ते धै नृपोपभोज्यानि ग्राहणेभ्यो ददुः मृद ॥ ६५ ॥
 समागतान्येद्विदो राजश्च नृधिर्षाश्वरान् ।
 पूजां चप्रोः तदा तेषां विधिपद्भूमिर्दक्षिणः ॥ ६६ ॥
 दिग्देशादागताग्रामा महासङ्ग्रामशालिनः ।
 नटनर्तककार्दींश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥ ६७ ॥
 पत्न्यो मनोरमास्तस्य पानोन्नतपथोचराः ।
 इन्दीवरपलाशाक्षयः शरच्चन्द्रतिमाननाः ॥ ६८ ॥
 कुलशीलगुणोपेताः सहस्रैकं शताधिकम् ।
 एवं तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥ ६९ ॥
 रत्नमालाकुलं दिव्यं पताकाध्वजसेवितम् ।
 रत्नहारयुतं रम्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥ ७० ॥
 करिणः पर्वताकारान्मदसिक्तान्महायलान् ।
 शतशः कोटिसंघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः ॥ ७१ ॥
 घातवेगजयैर्यैः सिन्धुजातैः सुशोभनैः ।
 श्वेताश्वैः श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जघान्वितैः ॥ ७२ ॥
 संनद्धबद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतैः ।
 असंख्येयैः पदातैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥ ७३ ॥
 इत्येवं ददृशे राजा यज्ञसंभारविस्तरम् ।
 मुदं लेभे तदा राजा संहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

राजोवाच ।

आनयध्वं हयश्रेष्ठं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
 चारयध्वं पृथिव्यां धै राजपुत्राः सुसंयताः ॥ ७५ ॥

धर्मविद्भिश्च अत्र होमो विधीयताम् ।
 ष्ठागं च महिषं कृष्णसारमृगं द्विजान् ॥ ७६ ॥
 गार्हं च गाश्चैव सर्वांश्च पशुपालकान् ।
 च प्रवर्तन्तां प्रासादं वैष्णवं ततः ॥ ७७ ॥
 अथ विप्रेभ्यो दीयता मनसेऽपि तम् ।
 रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ७८ ॥
 समृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् ।
 ने द्रव्यजातानि मनोज्ञानि वह्नि च ॥ ७९ ॥
 याचमानानां नास्ति ह्येतन्न भाषयेत् ।
 वर्ततां यज्ञो यावद्देवः पुरा त्विह ॥
 मम चाभ्येति यज्ञस्यास्य समीपतः ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वा तदा विप्रा राजासिंहो महाभुजः ।
 वर्णसंघातं कोटीनां चैव भूषणम् ॥ ८१ ॥
 तसाहस्रं वाजिनो नियुतानि च ।
 चैव वृषभं स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुकाः ॥ ८२ ॥
 सुरभीश्चैव कांस्यदोहाः पयस्विनीः ।
 त्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यो मुदा युतः ॥ ८३ ॥
 से च महार्हाणि राङ्गवास्तराणानि च ।
 नि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
 स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥ ८५ ॥

विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।
 ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः सह ॥ ६५ ॥
 समागतान्चेद्विदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान् ।
 पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥
 दिग्देशादागताभ्राह्मो महासङ्ग्रामशालिनः ।
 नटनर्तककादीश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥ ६७ ॥
 पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधराः ।
 इन्दीवरपलाशाक्ष्यः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ ६८ ॥
 कुलशीलगुणोपेताः सहस्रैकं शताधिकम् ।
 एवं तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥ ६९ ॥
 रत्नमालाकुलं दिव्यं पताकाध्वजसेवितम् ।
 रत्नहारयुतं रम्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥ ७० ॥
 करिणः पर्यंताकारान्मदसिक्ताग्महायलान् ।
 शतशः कोटिसंघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूपणैः ॥ ७१ ॥
 घातवेगजवैश्वैः सिन्धुजातैः सुशाभनैः ।
 श्वेताश्वैः श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जघान्वितैः ॥ ७२ ॥
 संनद्धद्वन्द्वकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतैः ।
 असंख्येयैः पदातैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा ॥ ७३ ॥
 इत्येवं ददृशे राजा यज्ञसंभारविस्तरम् ।
 मुदं लेभे तदा राजा संहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७४ ॥

राजोवाच ।

आनयध्वं हृद्यध्रेष्ठं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
 चारयध्वं पृथिव्यां वै राजपुत्राः सुसंयताः ॥ ७५ ॥

विद्वद्धिर्धर्मविद्विश्च भत्र होमो विधीयताम् ।
 कृष्णच्छाग च महिष कृष्णसारमृग द्विजान् ॥ ७६ ॥
 अनड्वाह च गाश्चैव सर्वाश्च पशुपालकान् ।
 इष्टयश्च प्रवर्तन्ता प्रासाद वैष्णव तत ॥ ७७ ॥
 सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो दायता मनसेप्सितम् ।
 स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च ॥ ७८ ॥
 सम्यक्समृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम् ।
 अन्यानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि वृहनि च ॥ ७९ ॥
 सर्वेषा याचमानाना नास्ति ह्येतन्न भाषयेत् ।
 तावत्प्रवर्तता यज्ञो यावद्देव पुरा त्विह ॥
 प्रत्यक्ष मम चाभ्येति यन्नस्यास्य समीपत ॥ ८० ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजासिंहो महाभुज ।
 दर्शो सुवर्णसघात कोटीना चैव भूषणम् ॥ ८१ ॥
 करणशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च ।
 अयुद् चैव वृषम स्वर्णशृङ्गीश्च घेनुका ॥ ८२ ॥
 सुरूपा सुरमाश्चैव कास्यदोहा पयस्विनी ।
 प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविदुभ्यो मुदा युत ॥ ८३ ॥
 घासासि च महार्हाणि राड्ढवास्तराणानि च ।
 सुशुक्रानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
 अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥ ८५ ॥

घञ्जवैदूर्यमाणिक्यमुक्तिकाद्यानि यानि च ।
 अलंकारवतीः शुभ्राः कन्या राजीवलोचनाः ॥ ८६ ॥
 शतावि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्टः प्रदत्तवान् ।
 स्त्रियः पीनपयोभाराः कञ्चुकैः स्वस्तनावृताः ॥ ८७ ॥
 मध्यहीनाश्च सुश्रोण्यः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
 हावभावान्वितग्रीवा बह्व्यो वलयभूषिताः ॥ ८८ ॥
 पादनूपुरसंयुक्ताः पट्टदुकूलवाससः ।
 एकैकशोऽद्दात्तस्मिन्काम्याश्च कामिनीर्वहूः ॥ ८९ ॥
 अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमाः ।
 भक्ष्यं भोज्यं च संपूर्णं नानासंभारसंयुतम् ॥ ९० ॥
 खण्डकाद्यान्यनेकानि स्विन्नपक्वांश्च पिष्टकान् ।
 अन्नान्यन्यानि मेध्यांश्च घृतपुरांश्च खाण्डवान् ॥ ९१ ॥
 मधुरांस्तर्जितान्पूपानन्नं मृष्टं सुपाकिकम् ।
 प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वानां दीयतेऽन्नं पुनः पुनः ॥ ९२ ॥
 दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते ।
 एवं दृष्ट्वा महायज्ञं देवदैत्याः सवा (चा)रणाः ॥ ९३ ॥
 गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वराः ।
 विस्मयं परमं याता दृष्ट्वा क्रतुवरं शुभम् ॥ ९४ ॥
 पुरोधो मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वशः ।
 न तत्र मलिनः कश्चिन्न दीनो न श्लुघाऽन्वितः ॥ ९५ ॥
 न घोषसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽघयो व्याधयस्तथा ।
 नाकालमरणं तत्र न दंशो न प्रहा विषम् ॥ ९६ ॥

हृष्टपुष्टजना सर्वे तन्मित्राज्ञो महोत्सवे ।

ये च तत्र तप सिद्धा मुनयश्चिरजीविन ॥ ६७ ॥

न जात तादृशं यज्ञ धनधान्यसमन्वितम् ।

एव स राजा विधिवद्वाजिमेध द्विजोत्तमा ॥

घृतं समापयामास प्रासाद वैष्णव तथा ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहापुराण आदित्राह्णे स्वयम्भृपिसत्वादे प्रासादकरणं

नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४७ ॥

आदित श्लोकाना समष्ट्यङ्का — ३४०६

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नस्यप्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचु ।

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम् ।

यथा ता प्रतिमा पूर्णमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिता ॥ १ ॥

केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव ।

तत्सर्वं वद चास्माक पर कोतूहल हि न ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु ध मुनिशार्दूला पुराण वेदसमितम् ।

कथयामि पुरा वृत्त प्रतिमाना च समवम् ॥ ३ ॥

प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते ।
 चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम् ॥ ४ ॥
 न वेदुमि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम् ।
 सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥
 चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शेते रात्रौ दिवाऽपि न ।
 न भुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम् ॥ ६ ॥
 नैव घायेन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि ।
 न गजैर्मद्युक्तैश्च न चानेकैहयान्वितैः ॥ ७ ॥
 नेन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयैर्न च ।
 सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसंयुतैः ॥ ८ ॥
 बहुरागार्थकामैर्वा न घन्यैरन्तरिक्षगैः ।
 बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम् ॥ ९ ॥
 शैलमृदारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले ।
 विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ १० ॥
 एतैरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम् ।
 स्थापिते प्रीतिमभ्येति इति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ११ ॥
 पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम् ।
 चिन्ताविष्टो महीपालः संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माण-
 विधानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥
 आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३४२१

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुतिः

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण ।
ब्राहि मा सर्वलोकेश जन्मससारसागरान् ॥ १ ॥
निर्मलाम्बरसकाश नमस्ते पुरुषोत्तम ।
सकर्षण नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा धरणीधर ॥ २ ॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकरध्वज ।
रतिकान्त नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा सधरान्तक ॥ ३ ॥
नमस्तेऽश्वनसकाश नमस्ते भक्तवत्सल ।
अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा वरदो भव ॥ ४ ॥
नमस्ते विभुधावास नमस्ते विभुधप्रिय ।
नारायण नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा शरणागतम् ॥ ५ ॥
नमस्ते बलिना श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध ।
चतुर्मुख जगद्धाम ब्राहि मा प्रपितामह ॥ ६ ॥
नमस्ते नीलमैघाम नमस्ते त्रिदशार्चित ।
ब्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्न मा भवसागरैः ॥ ७ ॥
प्रलयानलसकाश नमस्ते दितिनान्तक ।
नरसिंह महार्थार्य ब्राहि मा दीप्तलोचन ॥ ८ ॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दृष्टोद्भूता पुरा ।
तथा महावराहस्त्व ब्राहि मा दुःखसागरात् ॥ ९ ॥

तथैता मूर्तयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया ।
 तवेमे बलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः ॥ १० ॥
 अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तथा प्रभो ।
 दिक्पालाः न्यायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत ॥ ११ ॥
 ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः ।
 तेऽपि सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन ॥ १२ ॥
 मयाऽर्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः ।
 प्रयच्छत धरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ १३ ॥
 भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकर्षणादयः ।
 तव पूजार्थसंभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः ॥ १४ ॥
 न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः ।
 विविधं तव यद्रूपमुक्तं तद्रूपचारतः ॥ १५ ॥
 अद्वैतं त्वां फयं द्वैतं घक्तुं शक्नोति मानवः ।
 एकस्त्व हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः ॥ १६ ॥
 परमं तव यद्रूपं भावाभावविचर्जितम् ।
 निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कृत्स्नमचलं ध्रुवम् ॥ १७ ॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामाग्रथ्यवस्थितम् ।
 तद्देवाश्च न जानन्ति फयं जानाम्यहं प्रभो ॥ १८ ॥
 अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
 शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम् ॥ १९ ॥
 ध्रापत्सौररत्नसंयुक्तं घनमालापिभूपितम् ।
 तदच्ययन्ति विषुधा ये चान्ये तव मन्धराः ॥ २० ॥

देवदेव सुरप्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद ।
 ब्राह्मि मा पञ्चपत्राक्ष मग्न विषयमागर ॥ २१ ॥
 नान्य पश्यामि लोकेश यस्याह शरण त्रये ।
 त्वामृते कमलाकान्त प्रमाद मधुमूदन ॥ २२ ॥
 जगत्याप्रिशतैर्युक्तो नानादु र्वनिर्पीडित ।
 हर्षशोकान्वितो मूढ कर्मपाशै सुयन्त्रित ॥ २३ ॥
 पतितोऽह महारोत्रे प्रेर मसारसागर ।
 विषमांद्गुरुदुष्पारै रागद्वेषभयाकुटे ॥ २४ ॥
 इन्द्रियाचर्तगम्भार तृष्णाशोकोर्मिसकुटे ।
 निगप्रये निराश्रये नि सारऽन्यन्तचञ्चुटे ॥ २५ ॥
 मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिर प्रभो ।
 नानानातिमहन्नेषु जायमान पुन पुन ॥ २६ ॥
 मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च ।
 विविचान्यनुभूतानि मसारऽस्मिन्नार्दन ॥ २७ ॥
 वेदा साङ्गा मयाऽद्याता शास्त्राणि विविधानि च ।
 इतिहासपुराणानि तथा शिष्यान्यनकश ॥ २८ ॥
 असतोपाद्य सतोषा सचथापचया त्रया ।
 मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्धयश्चरेतरा ॥ २९ ॥
 भार्यारिमित्ररन्तूना वियोगा मगमास्तथा ।
 पितरो विचित्रा दृष्टा मातृष्व तथा मया ॥ ३० ॥
 दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकश ।
 प्राप्ताश्च चान्त्रवा पुत्रा भ्रातरा ज्ञानयस्तथा ॥ ३१ ॥

मयोपितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले ।

गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥ ३२ ॥

दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे ।

वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया ॥ ३३ ॥

मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये ।

मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा ॥ ३४ ॥

कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम् ।

महिषोद्भ्रगवां चैव तथाऽन्येषां घनौकसाम् ॥ ३५ ॥

द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु ।

धनितां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥ ३६ ॥

नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम् ।

गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम् ।

दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः ॥ ३८ ॥

हतो मया हताध्यान्ये घातितो घातितास्तथा ।

दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकराः ॥ ३९ ॥

पितृमानृमुहृद्भ्रातृफलप्राणां हृतेन च ।

धनितां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥ ४० ॥

उक्तं दैन्यं च विविधं त्यक्त्वा लज्जां जनार्दन ।

देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ४१ ॥

न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो ।

कदा मे मरके पावः कदा त्पर्गे जगत्पते ॥ ४२ ॥

कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च ।
 जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनियन्त्रता ॥ ४३ ॥
 यानि चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति ।
 तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः ॥ ४४ ॥
 अथश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः ।
 एवं संसारचक्रेऽस्मिन्मरवे रोमहर्षणे ॥ ४५ ॥
 भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित् ।
 न जाने किं करोम्यत्र हरे व्याकुलिनेन्द्रियः ॥ ४६ ॥
 शोकनृष्णामिभूतोऽहं कांदिशीको विचेतनः ।
 इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः ॥ ४७ ॥
 आहि मां दुःखिनं कृष्ण मग्नं संसारसागरे ।
 रूपां कुरु जगन्नाथ मक्तं मां यदि मन्यन्ते ॥ ४८ ॥
 त्वदृते नाम्ति मे शन्धुर्योऽर्मा चिन्तां करिष्यति ।
 देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्मि कुत्रचित् ॥ ४९ ॥
 जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथ वा प्रमो ।
 ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः ॥ ५० ॥
 सुगतिमनु कथं तेषां भवेन्संसारग्रन्थनात् ।
 किं तेषां कुलशोलेन विद्यया जीविनेन च ॥ ५१ ॥
 येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे ।
 प्रकृतिं त्वासुरो प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः ॥ ५२ ॥
 पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुन पुनः ।
 न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्धिग्रते नरकार्णवात् ॥ ५३ ॥

ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वा देव पुरुषाधमा ।
 यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥ ५४ ॥
 तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा ।
 आराभ्य त्वा सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि सयता ॥ ५५ ॥
 अवापु परमा सिद्धिं कस्त्वा देव न पूजयेत् ।
 न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्या स्तोतु त्वा त्रिदशा हरे ॥ ५६ ॥
 षथ मानुषबुद्ध्याऽह स्तौमि त्वा प्रकृते परम् ।
 तथा चाज्ञानभावेन सस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥ ५७ ॥
 तत्क्षमस्वापराध मे यदि तेऽस्ति दया मयि ।
 वृतापराधेऽपि हरे क्षमा कुर्वन्ति साधव ॥ ५८ ॥
 तस्मात्प्रसाद देवेश भक्तस्नेह समाश्रित ।
 स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
 साङ्ग भवतु तत्सर्वं घासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥
 ब्रह्मोवाच ।

इत्थ स्तुतस्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वज ।
 दर्शो तस्मै मुनिश्रेष्ठा सकल मनसेप्सितम् ॥ ६० ॥
 य सपूज्य जगन्नाथ प्रत्यह स्तौति मानव ।
 स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्ष लभते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥
 त्रिन्मध्य यो जपेद्विद्वानिद स्तोत्रपरं शुचि ।
 धर्मं चायं च काम च मोक्ष च लभते नर ॥ ६२ ॥
 य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ध्यापयेत् समाहित ।
 स लोके शाश्वतं विष्णोर्याति तिष्ठूतकल्प ॥ ६३ ॥

घन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम् ।
 गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देय यस्य कस्यचित् ॥ ६४ ॥
 न नास्तिकाय मूर्खाय न कृनघ्नाय मानिने ।
 न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन ॥ ६५ ॥
 दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशालान्विताय च ।
 विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥ ६६ ॥

इदं समस्ताप्रविनाशहेतु ,

कारुण्यसज्ज सुखमोक्षद च ।

अशेषवाञ्छाफलदं धरिष्ठ,

स्तोत्रमयोक्त पुरूपोत्तमस्य ॥ ६७ ॥

ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारि,

ध्यायन्ति नित्य पुरय पुराणम् ।

ते मुक्तिभाज प्रविशन्ति विष्णुं,

मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ ॥ ६८ ॥

एक स देवो भवदुःखहन्ता,

पर परेषा न ततोऽस्तिचान्यत् ।

द्र(स्त्र)ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता,

विष्णुः समस्तापिलसारभूत ॥ ६९ ॥

किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषा,

यज्ञैश्च दानैश्च तपोमित्थैः ।

येषा न भक्तिर्मवतीह वृष्णे,

जगद्गुरो मोक्षसुखप्रदे च ॥ ७० ॥

लोके स धन्यः स शुचिः सविद्वान्
मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः ।

ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता,
यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहापुराण भादिवाह्ये स्वयम्भृपिसंवादे कारुण्यस्तव-
घर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३४६२

—

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ग्रहोवाच ।

स्तुत्वैवं मुनिशार्दूलाः प्रणम्य च सनातनम् ।
षामुदेवं जगन्नार्थं सर्वकामफलप्रदं ॥ १ ॥
चिन्ताविष्टो महोपालः कुशानास्तीर्य भूतले ।
षम्भ्रं च तन्मना भूत्या सुप्याप धरणीतले ॥ २ ॥
फथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दनः ।
मम चाऽऽर्तिहरो देवस्तदाऽस्तापिति चिन्तयन् ॥ ३ ॥
स्तुम्य तस्य नृपतेर्षामुदेवो जगद्गुरुः ।
आत्मानं दशयामास शङ्खचक्रगदाभृतम् ॥ ४ ॥

स ददर्श तु सप्रेम देवदेव जगद्गुरुम् ।
 शङ्खचक्रधर देव गदाचक्रोन्नपाणिनम् ॥ ५ ॥
 शार्ङ्गबाणधर देव ज्वलत्तेजोतिमण्डलम् ।
 युगान्तादित्यवर्णाभ नीलरौद्र्यसनिभम् ॥ ६ ॥
 सुपणा से तमासीन षोडशार्थभुज शुभम् ।
 स चास्मै प्रात्रर्षीहारा साधु राजन्महामते ॥ ७ ॥
 व्रतुनाऽनेन दिव्येन तथा भक्त्या च श्रद्धया ।
 तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि ॥ ८ ॥
 यद्दत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी ।
 यथा सा प्राप्यते भूप तदुपाय प्रवीमि ते ॥ ९ ॥
 गतायामद्य शर्यां निर्मले भास्वरोदिते ।
 सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते ॥ १० ॥
 जल तथैव घेलाया दृश्यते तत्र च महत् ।
 लक्षणस्योदध राजस्तरङ्गै समभिप्लुतम् ॥ ११ ॥
 कृलान्ते हि महावृक्ष स्थित स्थलजलेषु च ।
 घेलामिर्हन्यमानश्च न चासौ कम्पते द्रुम ॥ १२ ॥
 परशुमादाय हस्तेन ऊर्मरन्तमृततो व्रज ।
 एकाका विहरव्राजन्स त्व पश्यसि पादपम् ॥ १३ ॥
 ईदृक्चिह्नं समालोक्य छेदय त्वमशङ्कित ।
 छेद्यमान तु त वृक्ष प्रातरद्भुतदर्शनम् ॥ १४ ॥
 दृष्ट्वा तेनैव सचिन्त्य ततो भूपाल दर्शनात् ।
 कुरु ता प्रतिमा दिव्या जहि चिन्ता विमोहिनीम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शन हरि ।
 स चापि स्वप्नमालोक्य पर विस्मयमागत ॥ १६ ॥
 ता निशा स समुद्रीक्ष्य स्थितस्तद्गतमानस ।
 व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रा-सूक्त चैव तदात्मकम् ॥ १७ ॥
 प्रगताया रजन्या तु उत्थितो नान्यमानस ।
 स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथार्वाद्धिधिना तत ॥ १८ ॥
 दृष्ट्वा दान विप्रेभ्यो ग्रामाश्च नगराणि च ।
 कृत्वा पौर्वाह्निक कर्म जगाम स नपोत्तम ॥ १९ ॥
 न चाश्वो न पदातिश्च न गजो न च सारथि ।
 एकाकी स महाविला प्रविवेश महोपति ॥ २० ॥
 त ददर्श महावृक्ष तेजस्वन्त महाद्रुमम् ।
 महातिगमहारोह पुण्य धिपुलमेव च ॥ २१ ॥
 महोत्सेध महाकाय प्रसुप्त च जलान्तिके ।
 सान्द्रमाङ्गिष्ठवर्णाभ नामजातिविवर्जितम् ॥ २२ ॥
 नरनाथस्तदा विप्रा द्रुम दृष्ट्वा मुदाऽन्वित ।
 परशुना शातयामास निशितेन दृढेन च ॥ २३ ॥
 द्वेधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च ।
 निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ २४ ॥
 विश्वकर्मा च विष्णुश्च विप्ररूपधराद्युभौ ।
 आजगमतुर्महाभागौ तदा तुल्याप्रजन्मानौ ॥ २५ ॥

निःसारं दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले ।
 इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥ ३५ ॥
 नानाध्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसंनिभे ।
 यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराधनाय वै ॥ ३६ ॥
 धन्यस्थ नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलंकृत ।
 सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥ ३७ ॥
 सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलंकृता ।
 यत्र त्व नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥ ३८ ॥
 एहो हि सुमहाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले ।
 आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥ ३९ ॥
 अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिनां वरः ।
 विश्वकर्मसमः साक्षान्निपुणः सर्वकर्मसु ॥
 मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुन्वैव घचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः ।
 सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥ ४१ ॥
 तस्यो स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छाये सुशीतले ।
 ततन्तस्मै स विश्वात्मा ददावाशां द्विजाकृतिः ॥ ४२ ॥
 शिल्पिमुख्याय विप्रेन्द्राः कुरुष्व प्रतिमा इति ।
 कृष्णरूपं परं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४३ ॥
 श्रीवत्सकीस्तुभधरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
 गौराङ्गं क्षीरघर्णामं द्वितीयं म्यस्तिकाङ्कितम् ॥ ४४ ॥

लाङ्गलास्त्रधरं देवमनन्ताग्र्यं महाबलम् ।

देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥ ४० ॥

न विज्ञानो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृतः ।

भगिर्नो घासुदेवस्य रत्नमवर्णां सुशोभनाम् ॥ ४१ ॥

तृतीयां चै सुमद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुन्वैतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मट्टम् ।

तन्क्षणान्कारयामास प्रतिमा शुभलक्षणाः ॥ ४८ ॥

प्रथमं शुक्लवर्णां गारुडेन्दुसमप्रथम् ।

धारक्ताक्षं महाकायं स्फटाविकटममनकम् ॥ ४९ ॥

नीलाम्बरधरं चोभ्रं बलं बलमदोद्धतम् ।

कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुगलधारिणम् ॥ ५० ॥

द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसनिभम् ।

अतर्सीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायनेक्षणम् ॥ ५१ ॥

पीतवाससमत्युग्रं शुभं धीघत्सलक्षणम् ।

चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्पपापहरं हरिम् ॥ ५२ ॥

तृतीयां स्वर्णवर्णां पद्मपत्रायनेक्षणाम् ।

विचित्रचम्रसंछन्नां हारत्रेयूरभूषिताम् ॥ ५३ ॥

विचित्रामरणोपेतां रत्नहारावलम्बिताम् ।

पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥ ५४ ॥

स तु राजाऽद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः ।

दिव्यवस्त्रयुगच्छन्ना नानारत्नैरलंकृताः ॥ ५५ ॥

सर्वलक्षणसपत्ना प्रतिमा समनोहरा ।

विस्मय परम गत्वा इदं घननमप्रवीत् ॥ ५६ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवो समनुप्राप्तो द्विजरूपधराद्युम्नो ।

उभो चाद्भुतकर्माणो देववृत्तावमानुषो ॥ ५७ ॥

देवो वा मानुषो वाऽपि यक्षविद्याधरो युवाम् ।

किंनु ब्रह्महृषीणेशो किं वसू किमुताश्विनौ ॥ ५८ ॥

न वेद्मि सत्यसद्गुभावो मायारूपेण सस्थितौ ।

युवा गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाशयताम् ॥ ५९ ॥

इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भृत्पिसवादे प्रतिमोत्पत्ति

कथन नाम पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५० ॥

आदित श्लोकानां समष्ट्यङ्का — ३५७१

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

भगवदिन्द्रद्युम्नसवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच ।

नाह देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट् ।

न ब्रह्मा न च रद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥

अर्तिहा सर्वलोकानामनन्तबलपौरुष ।

आराधनीयो भतानामन्तो यस्य न विद्यते ॥ २ ॥

पश्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते ।
 यमाहुर्ज्ञानगम्येति घासुदेवेति योगिन ॥ ३ ॥
 ब्रह्मेव स्वयं ब्रह्मा ब्रह्म विष्णु शिवोऽप्यहम् ।
 इन्द्रोऽहं देवराजश्च जगत्सयमनो यम ॥ ४ ॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्दुर्तभुङ्क्ष्वप ।
 परुणोऽपा पतिश्चाह धरित्री च महीधर ॥ ५ ॥
 यत्किञ्चिद्वाङ्मय लोके जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
 चराचर च यद्विश्य मदन्यत्रास्ति किञ्चन ॥ ६ ॥
 प्रीतोऽहं ते नृपत्रेष्ठ धर धरय सुव्रत ।
 यदिष्ट तन्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
 महर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते ।
 त्वं पुनर्दृढमक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि ॥ ८ ॥

ग्रहोवाच ।

श्रुत्वैव घासुदेवस्य घञ्चन तस्य भो द्विजा ।
 रोमाञ्चितननुभूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृप ॥ ९ ॥

राजोवाच ।

श्रियं कान्तं नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे ।
 श्रीद् श्रीशं श्रीनिवासं नमस्ते श्रानिरेतन ॥ १० ॥
 आद्यं पुरुषमीशानं सर्वेशं सर्वतोमुत्तमम् ।
 निष्कलं परमं देवप्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ११ ॥
 शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविबर्जितम् ।
 निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम् ॥ १२ ॥

प्रावृष्णमेघप्रतीकाशं गोश्राह्मणहिते रतम् ।
 सर्वेषामेव गोसारं व्यापिनं सर्वभाविनम् ॥ १३ ॥
 शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम् ।
 नमस्ये धरद् देवं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥ १४ ॥
 नागपर्यङ्कशयनं क्षीरोदारणघशायिनम् ।
 नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम् ॥ १५ ॥
 पुनस्त्वां देवदेवेशं नमस्ये धरद् विभुम् ।
 सर्वलोकेश्वरं विष्णुं मोक्षकारणमव्ययम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मावाच ।

एव स्तुत्वा तु तं देवं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
 उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले ॥ १७ ॥

राजोवाच ।

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि धरमुत्तमम् ।
 देवासुरा. सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा. ॥ १८ ॥
 सिद्धविद्याधराः साध्या. किंनरा गुह्यकास्था ।
 ऋपयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदाः ॥ १९ ॥
 परिव्राड्योगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका. ।
 मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परमं पदम् ॥ २० ॥
 निर्गुणं निर्मलं शान्तं यत्पश्यन्ति मनीषिणः ।
 तत्पद्मं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वं भवतु भद्रं ते यथेष्टं सर्वमाप्नुहि ।
 भविष्यति यथाकामं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २२ ॥

दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च ।
 अविच्छिन्नं महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम ॥ २३ ॥
 प्रयास्यसि पदं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः ।
 पूर्णमनोरथं शान्तं गुह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥ २४ ॥
 परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निष्कलं ध्रुवम् ।
 चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं क्रियाकारणवर्जितम् ॥ २५ ॥
 तदहं दर्शयिष्यामि ज्ञेयाख्यं परमं पदम् ।
 यं प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यसि परमां गतिम् ॥ २६ ॥
 कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र महीतले ।
 यावद्दुवना नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २७ ॥
 यावत्समुद्राः सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्यताः ।
 तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया ॥ २८ ॥
 इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् ।
 यत्र स्नात्वा सकृद्भोक्तुं शक्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥
 दापयिष्यति यः पिण्डास्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे ।
 कुलैर्कविशमुदुधृत्य शक्रलोकं गमिष्यति ॥ ३० ॥
 पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनेः ।
 विमानेन घसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥
 सरसो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां तु समाश्रिते ।
 न्यग्रोधस्तिष्ठन्ने तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥ ३२ ॥
 केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः ।
 नारिकेलैरसंख्येयैश्चम्पकैर्वकुलावृतैः ॥ ३३ ॥

अशोकैः कर्णिकारैश्च पुंनागैर्ना
 पाटलाभ्रातसरलैश्चन्द्रनैर्द्वेषदारुभिः
 न्यप्रोधाभ्वत्थखदिरैः पारिजातैः
 हिन्तालैश्चैव तालैश्च
 करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः
 अन्पैर्वहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंठः
 आपाढस्य सिते पक्षे पञ्चभ्यां
 ऋक्षे नेप्यन्ति नस्तत्र नीत्या सप्त
 मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः
 फ्रीडाचिशेषयहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः
 चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनै
 धीजयन्तस्तथाऽस्मभ्यं
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च
 धानप्रमथा गृहस्थाश्च
 नानाघर्षणपदेः स्तोत्रैर्भृग्यजुः
 फलिष्यन्ति म्नुति

तपःश्रयादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् ।
कोटियनपतिः श्रीमांश्चतुर्वेदी भवेद्ब्रह्म ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं तस्मै वरं दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः ।
जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा ॥ ४६ ॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चि तत्रनृद्वः ।
कृत्यकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने मंदर्शनादरेः ॥ ४७ ॥
ततः कृष्णं च रामं च सुमद्रां च वरप्रदाम् ।
रथैर्धिमानसंकाशैर्मजिकाञ्जनविचितैः ॥ ४८ ॥
संवाद्य ताम्नादा राजामहामङ्गलनिःस्वनैः ।
वानयामास मतिमान्मामान्यः सपुरोहितः ॥ ४९ ॥
नानायादिव्रतियोपैर्नानावेदस्त्रतैः शुभैः ।
संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥ ५० ॥
ततः शुभतिर्यो काले नक्षत्रे शुभलक्षणे ।
प्रतिष्ठां कारयामास सुमुद्घर्षे द्विजैः स ह ॥ ५१ ॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा ।
आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः ॥ ५२ ॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः ।
ऋत्विगम्यश्च विधानेन तथाऽन्येभ्यो धनं ददा ॥ ५३ ॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिन्प्रासादे भवनोत्तमे ।
स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५४ ॥
ततः संपूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगन्धिमिः ।

सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥ ५५ ॥
 रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः ।
 ददौ चान्यान्स विषयान्पुराणि नगराणि च ॥ ५६ ॥
 एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम् ।
 इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ ५७ ॥
 कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
 जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५८ ॥
 एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो धो नृपोत्तमः ।
 क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ५९ ॥

विष्णुरुवाच ।

श्रुत्वैवं वचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 आश्चर्यं मेनिरे विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मदा ॥ ६० ॥

मुनय ऊचुः ।

कस्मिन्काले सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ।
 विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमितिऽप्रभो ॥ ६१ ॥
 एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम् ।
 देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत् ।
 जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा सदा ज्येष्ठशुद्धादश्या पुरुषोत्तमम् ।
 एतौपवास प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम् ॥ ६४ ॥
 तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठा प्रयत्नेन सुसयतै ।
 म्यर्गलोकेषुविप्राद्यैर्द्रष्टव्यं पुरुषोत्तम ॥ ६५ ॥
 पञ्चतीर्थं तु विधिवन्वृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तम ।
 शुक्लपक्षस्य द्वादश्या पश्येत्तं पुरुषोत्तमम् ॥ ६६ ॥
 ये पश्यन्त्यज्यय देव द्वादश्या पुरुषोत्तमम् ।
 ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ ६७ ॥
 तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं मौ द्विजोत्तमा ।
 वृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्यं पुण्योत्तम ॥ ६८ ॥
 सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम् ।
 ब्रह्महनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ६९ ॥
 यात्रा करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहित ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेत्तर ॥ ७० ॥
 चक्र दृष्ट्वा हरेर्द्वारात्प्रासादोपरि स्थितम् ।
 महता मुच्यते पापाक्षरो भक्त्या प्रणम्य तत् ॥ ७१ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदित्याह्न मन्त्रभुक्तपिसचादे पुरुषोत्तम-
 वर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

आदित्य श्लोकानां सम्पत्सङ्का — ३६२२

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठाः संप्रवृत्ते महाक्षये ।
नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ १ ॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते ।
विद्युदुत्पातसंघातैः संभग्ने तरुपर्वते ॥ २ ॥
लोके च सहते सर्वे महदुल्कानिबर्हणे ।
शुष्केषु सर्वतोयेषु सरःसु च सरित्सु च ॥ ३ ॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भो द्विजाः ।
लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥
पश्चात्स पृथिवी भिरुवा प्रविश्य च रसातलम् ।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥ ५ ॥
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किञ्चित्क्षिताविह ।
अधस्तान्मुनिशार्दूलाः सर्वं नाशयते क्षणात् ॥ ६ ॥
ततो योजनविशानां सहस्राणि शतानि च ।
निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः ॥ ७ ॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
ततो दहति संदीप्तः सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥ ८ ॥

प्रदोप्तोऽसौ महारौद्रः कल्पाग्निरितिसंश्रुतः ।
 महाज्वालो महार्चिश्मान्सप्रदीप्तमहास्वनः ॥ ९ ॥
 सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा ।
 त्रैलोक्यं चादहत्सूणं ससुरासुरमानुषम् ॥ १० ॥
 एवविध्रे महाघोरे महाप्रलयदारुणे ।
 ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥ ११ ॥
 एकः संतिष्ठने विप्रा मार्कण्डेयेति विश्रुतः ।
 मोहपाशैर्निबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
 स दृष्ट्वा तं महावह्निं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ।
 तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥ १३ ॥
 वभ्राम पृथिवीं सर्वां कांदिशीको विचेतनः ।
 त्रातारं नाधिगच्छन्वै इतश्चेतश्च धावति ॥ १४ ॥
 न लेभे च तदा शर्म यत्र विश्राम्यता द्विजाः ।
 करोमि किं न जानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥ १५ ॥
 कथं पश्यामि तं देवं पुरुपेशं सनातनम् ।
 इति संचितयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥ १६ ॥
 प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम् ।
 पुरुपेशमिति ख्यातं घटराजं सनातनम् ॥ १७ ॥
 त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यप्रोधम्यान्तिकं ययौ ।
 आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठास्तस्य मृत्ते समाविशत् ॥ १८ ॥
 न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रयंगम् ।
 न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनिभ्रश्या ॥ १९ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये स्वयंभुवृषिसंवादे मार्कण्डेयेन
षट्दशानं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

आदितः श्लोकानां समष्ट्यङ्काः—३६४१

—

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयारूपानम्

ब्रह्मोवाच ।

ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्माला विभूषिताः ।
समुत्तस्थुर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥ १ ॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसंनिभाः ।
केचित्किञ्जल्कसंकाशाः केचित्पीताः पयोधराः ॥ २ ॥
केचिद्भरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा ।
केचित्कमलपत्राभाः केचिद्ध्रुलसंनिभाः ॥ ३ ॥
केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिषरोपमाः ।
केचिद्भ्रुजसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥ ४ ॥
विद्युन्मालापिनद्वाङ्गाः समुत्तस्थुर्महाघनाः ।
घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥ ५ ॥
ततो जलधराः सर्वे समावृण्वन्नभस्तलम् ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥ ६ ॥

आपृता दिश सर्वा सत्रिगेत्रपरिप्लुता ।
 ततस्ते जग्दा घोरा घारिणा मुनिसत्तमा ॥ ७ ॥
 सर्वत प्त्वाययामासुश्चोदिता परमेष्ठिना ।
 धर्ममाणा महातोय पूरयन्तो वसुधराम् ॥ ८ ॥
 सुगौरमशिव रौद्र नाशयन्ति स्म पावकम् ।
 तनो द्वादश वषाणि पयोदा समुपलये ॥ ९ ॥
 धाराभि पूरयन्तो धै चोद्यमाना महात्मना ।
 तत्र समुद्रा स्यां त्रैलोक्यमतिप्रामन्ति भो द्विजा ॥ १० ॥
 परंताश्च ध्वशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति ।
 सर्वत सुमहाभ्रान्तास्ते पयोदा नमस्तत्रम् ॥ ११ ॥
 स्रष्टयित्वा नश्यन्ति घातुरेगसमाहता ।
 तत्रेभ्य माग्न घोरं स विष्णुमुनिसत्तमा ॥ १२ ॥
 आदिपटुमात्रयो देव पा वा स्रपिति भो द्विजा ।
 तस्मिन्नेषाण्ये घोरे नष्टे म्थावर्जद्रुमे ॥ १३ ॥
 नष्टे देवासुरनरे यक्षगक्षसवर्जिते ।
 तनो मुनि स विप्रान्तो यथावा च पुरयोत्तमम् ॥ १४ ॥
 ददर्श चञ्चुर्गमीय जग्पूर्णा वसुधराम् ।
 नापश्यत्त घट नोर्धो न त्रिगादि न भास्करम् ॥ १५ ॥
 न चन्द्रार्काग्निपवन न देवासुरपन्नगम् ।
 तस्मिन्नेषाण्ये घोरं तमोभूते निराश्रये ॥ १६ ॥
 निमज्जन्स तदा विप्रा सततमुपचक्रमे ।
 प्रभ्रामासौ मुनिश्चाऽऽर्त इत्यथेतश्च सप्लवन् ॥ १७ ॥

निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति ।

एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः ॥

प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

घत्स श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्त्य मम सुव्रत ।

आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं त्वं मार्कण्डेय ममान्तिकम् ॥ १९ ॥

मा त्वयैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि ममाग्रतः ।

मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनिः परमकोपितः ।

उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः ॥ २१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कोऽय नान्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव ।

बहुवर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निय मे वपुः ॥ २२ ॥

न ह्येव समुदाचारो देवेश्वपि समाहितः ।

मां ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥ २३ ॥

कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ।

मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनिः ।

किं स्वप्नोऽयं मया दृष्टः किंवा मोहोऽयमागतः ॥ २५ ॥

इत्थं चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना दुःखहा मतिः ।

ब्रजामि शरणं देवं भक्त्याऽहं पुरुषोत्तमम् ॥ २६ ॥

स गत्वा शरणं देवं मुनिस्तद्गतमानसः ।
 ददर्श तं पटं भूयो विशालं सलिलोपरि ॥ २७ ॥
 शागाया तस्य सौघर्णं विन्तीर्णाया महाद्भुतम् ।
 रुचिरं दिव्यपर्यट्टं रचितं विभ्यकर्मणा ॥ २८ ॥
 पञ्चवैदूर्यरचितं मणिचिद्रुमशोभितम् ।
 पद्मरागादिभिर्जुष्टं ग्नेर्ग्न्यैरलं कृतम् ॥ २९ ॥
 नानाम्तरणसर्वात् नानारत्नोपशामितम् ।
 नानाचर्यममायुक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥ ३० ॥
 तस्योपरि स्थितं देव शरणं शालयुधंरम् ।
 सूर्यकोटिप्रतीकात् दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥ ३१ ॥
 चतुर्भुजं सुन्दरान्नं पद्मपत्रायनेक्षणम् ।
 श्रीचन्द्रसवक्षमं देव शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ३२ ॥
 घनमात्रावृतोऽस्य दिव्यशुण्डलधारिणम् ।
 हारभारार्पितग्रीवं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥ ३३ ॥
 दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्प्लृह्यतोचन ।
 रोमाञ्जिततनुर्देवं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्रह्मो चैकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे ।
 कथमेको ह्ययं शालन्तिष्ठत्यत्र मुनिर्भव ॥ ३५ ॥

ब्रह्मोवाच ।

भूतं भव्यं भविष्यं च ज्ञानमपि महामुनि ।
 न बुबोध तदा देवं मायया तस्य मोहित ॥
 यदा न बुबुधे चैनं तदा यदाद्बुवाच ह ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

वृथा मे तपसो चौर्यं वृथा ज्ञानं वृथा क्रिया ।
वृथा मे जीवित दीर्घं वृथा मानुष्यमेव च ॥ ३७ ॥
योऽहं सुप्त न जानामि पर्यङ्के दिव्यबालकम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एव सचिन्तयन्विप्र प्लवमानो विचेतन ।
त्राणार्थं विह्वलश्चासौ निर्देह गतवास्तदा ॥ ३९ ॥
ततो बालार्कसकाश स्वमहिम्ना व्यवस्थितम् ।
सर्वतेजोमय विप्रा न शशाकाभिर्वीक्षितुम् ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा त मुनिमायान्त स बाल प्रहसन्निव ।
प्रोवाच मुनिशार्दूलस्तदा मेघौघनिखन ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

घटस जानामि श्रान्त त्वा त्राणार्थं मामुपस्थितम् ।
शरीर विश मे क्षिप्र विश्रामस्ते मयोदित ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा स घवन तस्य किञ्चिज्जोवाच मोहित ।
विवेश घटन तस्य विवृत चावशो मुनि ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहापुराणे ब्रह्मे रजयन्मृपितवादे मार्कण्डेयप्रलपदर्शन

नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

श्लोकानामादित समष्ट्यङ्का -- ३६८४

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाग्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

स प्रविश्योदरे तस्य बालम्य मुनिसत्तम ।
ददर्श पृथिवीं कृत्स्नां नानाजनपदैर्बृताम् ॥ १ ॥
लवणेशुसुरासर्पिर्द्रुधिदुग्धजलोदधीन् ।
ददर्श तान्समुद्राश्च जम्बु इन्द्र च शात्मलम् ॥ २ ॥
कुशं क्रौञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श स ।
भारतार्शानि वर्षाणि तथा सर्पाश्च पर्यतान् ॥ ३ ॥
मेहं च सर्धरत्नाद्यमपश्यत्कनकाचलम् ।
नानारत्नान्वितैः शृङ्गैर्भूपित बहुवन्द्यम् ॥ ४ ॥
नानामुनिजनाकोर्णं नानावृक्षवनाकुलम् ।
नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यममन्वितम् ॥ ५ ॥
व्याघ्रैः सिंहैर्वराहैश्च चामरैर्महिषैर्गणैः ।
मृगैः शाखासृगैश्चान्यैर्भूपितं सुमनोहरम् ॥ ६ ॥
शकाद्यैर्विधिधैर्देवैः सिद्ध्याण्यपन्नैः ।
मुनियक्षाप्सरोग्भिश्च वृत्तैश्चान्यैः सुगन्धैः ॥ ७ ॥

[ब्रह्मोवाच] ।

एव सुमेहं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिमनमः ।
पर्यटन्स तदा विप्रमम्य बालम्य चादरे ॥ ८ ॥

हिमवन्त हेमकूट निपथ गन्धमादनम् ।

ग्रेत च दुर्धरं नील फेलासं मन्दरं गिरिम् ॥ ९ ॥

महेन्द्रं मलय विन्ध्य पारियात्र तथाऽर्जुदम् ।

सह्यं च शुक्तिमन्त च मैनाक घनपर्यतम् ॥ १० ॥

एताश्चान्याश्च बहवो यावन्त पृथिवीधरा ।

ततस्तास्तु मुनिश्रेष्ठा सोऽपश्यद्रत्नभूपितान् ॥ ११ ॥

कुरुक्षेत्र च पाञ्चालान्मत्स्यामद्रान्सकेकयान् ।

वाहीकान्शूरसेनाश्च काश्मीरास्तङ्गणान्तसान् ॥ १२ ॥

पार्वतीयान्किराताश्च कर्णप्रावरणान्मरून् ।

अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥ १३ ॥

मृगाञ्छाखामृगान्सिहान्वराहान्सुमराञ्छशान् ।

गजाश्चान्यास्तथा सत्त्वान्सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥ १४ ॥

पृथिव्या यानि तीर्थानि ग्रामाश्च नगराणि च ।

वृषिगोरक्षवाणिज्य क्रयविक्रयण तथा ॥ १५ ॥

शक्रादीन्विबुधाञ्छ्रेष्ठास्तथाऽन्याश्च दिवीकस ।

गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृपीञ्चैव सनातनान् ॥ १६ ॥

दैत्यदानवसंघाश्च नागाश्च मुनिसत्तमा ।

सिंहिकातनयाश्चैव ये चान्ये सुरशत्रव ॥ १७ ॥

यत्किञ्चित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम् ।

अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमा ॥ १८ ॥

अथवा किं बहूक्तेन कीर्तितेन पुन पुन ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त यत्किञ्चित्सचराचरम् ॥ १९ ॥

भूर्लोक च भुवर्लोक स्वर्लोक च द्विजोत्तमा ।
 महर्जनस्तप सत्यमतल चित्तल तथा ॥ २० ॥
 पाताल सुतल चैव चित्तल च रसातलम् ।
 महातल च प्रह्लाण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥ २१ ॥
 अव्याहता गतिस्तस्य तदाऽमूद्गद्विजसत्तमा ।
 प्रसादात्तस्य देवस्मृतिलोपश्च नामवत् ॥ २२ ॥
 भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्न जगदिद द्विजा ।
 नान्त जगाम देहस्य तस्य विष्णो कदाचन ॥ २३ ॥
 यदाऽसौ नाऽऽगतश्चान्त तस्य देहस्य भो द्विजा ।
 तदा त घरद् देव शरण गतवान्मुनि ॥ २४ ॥
 ततोऽसौ सहसा विप्रा वायुपेगेन नि सृत ।
 महात्मनो मुखात्तस्य विवृतात्पुरपस्य स ॥ २५ ॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिप्राह्मे स्वयम्भृपिसवादे मार्कण्डेयस्य
 भगवत्कुक्षिपरिवर्तन नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५४ ॥
 आदित श्लोकाना समष्ट्यङ्का — ३७०६

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेयाग्यानम्

प्रह्लोवाच ।

स निष्प्रभ्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा ।

पुनश्चैकार्णधामुर्वीमपश्यज्जनवर्जिताम् ॥ १ ॥

पूर्वदृष्टं च तं देवं ददर्श शिशुरूपिणम् ।
 शाखायां घटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥ २ ॥
 श्रोत्रसवक्षसं देवं पोतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
 जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ३ ॥
 सोऽपि तं मुनिमायान्तं ग्लवमानमचेतनम् ।
 दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्कान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कच्चित्त्ययोपितं वत्स विश्रान्तं च ममोदरे ।
 भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्ट्वानसि ॥ ५ ॥
 भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः ।
 तेन त्वामुपकाराय संभाषे पश्य मामिह ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा सु घचनं तस्य संप्रहृष्टतनूरुहः ।
 ददर्श तं सुदुष्प्रेक्ष रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥ ७ ॥
 प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजा ।
 प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥ ८ ॥
 रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ ।
 प्रणम्य शिरसा विप्रा हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥
 कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुनः पुनः ।
 दृष्ट्वा तं परमात्मानं संस्तोतुमुपचक्रमे ॥ १० ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

देवदेव जगन्नाथ भाषायालवपुर्धर ।
 त्रादि मां चारुपद्माक्ष दुःखितं शरणागतम् ॥ ११ ॥

संतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ संवर्ताप्येन चह्निना ।
 अङ्गारवर्षमीतं च त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १२ ॥
 शोषितश्च प्रचण्डेन घायुना जगदायुना ।
 विह्वलोऽहं तथा श्रान्तस्त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १३ ॥
 तापितश्च तशामात्यै. (?) प्रलयावर्तकादिभिः ।
 न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥ १४ ॥
 तृपितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दुःखितश्च जगत्पते ।
 त्रातारं नात्र पश्यामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥ १५ ॥
 अस्मिन्नेकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे ।
 न चान्तमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥ १६ ॥
 तत्रोदरे च देवेश मया दृष्टं नृराचरम् ।
 विस्मितोऽहं विषण्णश्च त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥
 संसारेऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम ।
 प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥ १८ ॥
 प्रसीद विबुधां नाथ प्रसीद विबुधालय ।
 प्रसीद सर्वलोकेश जगत्कारणकारण ॥ १९ ॥
 प्रसीद सर्वदृष्टे प्रसीद मम भूधर ।
 प्रसीद सलिलावास प्रसीद मधुसूदन ॥ २० ॥
 प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर ।
 प्रसीद कंसकेशिन्न प्रसीदारिष्टनाशन ॥ २१ ॥
 प्रसीद कृष्ण दैत्यन्न प्रसीद दनुजान्तक ।
 प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन ॥ २२ ॥

प्रसीद शक्रावरज प्रसीद घरदाव्यय ।

त्वं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः ॥ २३ ॥

त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव च ।

त्वं युद्धिः प्रकृतिश्चैव सत्त्वाद्यास्त्वं जगत्पते ॥ २४ ॥

पुरुषस्त्वं जगद्भयापी पुरुषादपि चोत्तमः ।

त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥ २५ ॥

त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणाः ।

त्वमिन्द्रस्त्वं शिषोदेवस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः ॥ २६ ॥

त्वं यमः पितुराद्देव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम् ।

घरुणस्त्वमपां नाथ त्वं धायुस्त्वं धनेश्वरः ॥ २७ ॥

त्वमीशानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च पण्मुखः ।

वसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः ॥ २८ ॥

दानयास्त्वं तथा यक्षास्त्वं दैत्याः समरुद्गणाः ।

सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः ॥ २९ ॥

पितरो बालपित्याश्च प्रजानां पतयोऽच्युत ।

मुनयस्त्वमृषिगणास्त्वमश्विनौ निशाचराः ॥ ३० ॥

अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किञ्चिज्जीवसंश्लितम् ।

किञ्चात्र यद्गुनोक्तेन ब्रह्मादिस्त्वम्भगोचरम् ॥ ३१ ॥

भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम् ।

यत्ते रूपं परं देव कृत्स्नमचलं ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्माद्यास्तत्र जानन्ति कथमन्येऽल्पमेधसः ।

देव शुद्धस्य भावोऽसि निर्यमस्त्वं प्रकृतेः परः ॥ ३३ ॥

विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम् *

अथ शश्वतोऽनन्त सर्वाङ्ग्यापी महेश्वर ।
त्वमाकाश पर शान्तो बजस्त्व पिभुरख्य ॥ १९ ॥
एव त्वा निर्गुण स्तोतुं क शक्नोति निरञ्जाम् ।
स्तुतोऽसि यन्मया देव विकलेनाल्पचेतसा ॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाध्यय ॥ २५ ॥
ति श्रीमहापुराणे आदित्याहो स्वयभुक्तिसंवादे भगवत्स्तव-
निरूपण नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५५ ॥
श्लोकानामादित समष्ट्यङ्का — २७४४

अथ पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पिस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच ।

इत्थ स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजा ।
प्रीत प्रोवाच भगवान्मेतन्नगम्भोरया निरा ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

रूहि काम मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते ।
ददामि सर्वं विप्रैर्मे मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा स वचन विप्रा शिशोस्तस्य महात्मनः ।
उवाच परमप्रीतो मुनिस्तदुगतमानस ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां वै तव चोत्तमाम् ।

त्यत्प्रसादान्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥ ४ ॥

द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्य(रि)वर्तितम् ।

इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥ ५ ॥

इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते ।

पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥

किमयं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तयाऽनघ ।

क्रियन्तं च त्वया कालमिह स्येयमर्दिम ॥ ७ ॥

ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमदोषतः ।

एवञ्च कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥

महदेतद्विन्द्यं च यदहं दृष्टयान्प्रभो ॥ ८ ॥

प्रतीपाच ।

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाशुनि ।

सान्ध्यवन्स तदा पाषपमुषान्च यदतां परः ॥ ९ ॥

धामगवानुपाच ।

कामं देवाश्च मां विप्र नदि जानन्ति तस्यतः ।

तव व्रीत्वा प्रपश्यामि यथेदं विभृजामवहम् ॥ १० ॥

विभृजामोऽपि विप्रैर्गं मामेष शरणां गतः ।

ततो दृष्टोऽपि मे साराद्ब्रह्मण्यं च मे महत् ॥ ११ ॥

मायो नारा इति पुरा वंशाकर्म कृतं मया ।

तेन नारायणोऽवगुप्तो मम साण्ड्यवनं यदा ॥ १२ ॥

अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः ।
 विधाता सर्व भूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥ १३ ॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः ।
 अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा ॥ १४ ॥
 अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च प्रजापतिः ।
 अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥ १५ ॥
 अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने ।
 धौर्मूर्धा एं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसंभवाः ॥ १६ ॥
 सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः ।
 मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिश्चाऽऽसदक्षिणैः ॥ १७ ॥
 यजन्ते वेदविद्वेषो मां देवयजने स्थितम् ।
 पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥
 यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः ।
 चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥ १९ ॥
 शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि घसुंधराम् ।
 धाराह रूपमास्थाय ममेय जगती पुरा ॥ २० ॥
 मञ्जमाना जले विप्र धीर्येणास्मि समुद्धृता ।
 अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥ २१ ॥
 पियाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम् ।
 ब्रह्म षक्त्रं भुञ्जी क्षत्रमूरु मे सन्धिता विशः ॥ २२ ॥
 पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च ।
 ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वथर्वणः ॥ २३ ॥

मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च ।
 यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो युभुत्सवः ॥ २४ ॥
 कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा धीतकल्मषाः ।
 सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥ २५ ॥
 मामेव सतनं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते ।
 अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥ २६ ॥
 अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः ।
 तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नमस्तले ॥ २७ ॥
 मम यै रोमरूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम ।
 रत्नाकराः समुद्राश्च सूर्य एव चतुर्दिशः ॥ २८ ॥
 घसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे ।
 कामः क्रोधश्च द्वेषश्च भयं मोहस्तथैव च ॥ २९ ॥
 ममैव विद्धि रूपाणि स्वर्पाण्येतानि सत्तम ।
 प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यस्मृत्त्या कर्म शोभनम् ॥ ३० ॥
 सत्यं दानं सपथोऽप्रमदिसा स्वयंजन्तुषु ।
 मद्धिधानेन विहिता मम देहपिशाचिनः ॥ ३१ ॥
 मयाऽनिमृतपितृनाभ्येष्टयन्ति न कामतः ।
 स्वायंवेदमर्षीयाना यजन्तो विविधैर्मंगी ॥ ३२ ॥
 शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातवः ।
 प्राप्नुं शपथो न घैषाहं मरिचुं पृतकर्मणि ॥ ३३ ॥
 लोभानिभूतैः कृपणैस्त्वामर्थेऽवृत्तात्मनि ।
 तस्मात्तदागच्छ विद्धि नराणां भावितात्मनाम् ॥ ३४ ॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिपेविणाम् ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।

दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः ॥ ३६ ॥

राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः ।

तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकमणाम् ॥ ३७ ॥

प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ।

सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥

स्थावराणि च भूतानि संहाराम्यान्ममायया ।

कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥

आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् ।

श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥

रको द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा ।

प्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥

अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः ।

त्रैलोक्यं नाशयाम्येकं सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४२ ॥

अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ।

अमित्रः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः ॥ ४३ ॥

फालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत् ।

शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतहृत्नोद्यमम् ॥ ४४ ॥

एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम ।

सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां घेति कश्चन ॥ ४५ ॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम् ।
 यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥
 बभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽन्मानं सृजाम्यहम् ।
 दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अचध्या. सुवत्तमै. ॥ ३६ ॥
 राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पन्त्यन्ति दारुणा ।
 तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकमणाम् ॥ ३७ ॥
 प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ।
 सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥
 स्यावराणि च भूतानि मंहाराम्यान्ममायया ।
 कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥
 आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणतः ।
 श्रेतः कृतयुगे धर्मं श्यामन्प्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥
 रको ह्यपरमामाद्य कृष्णः कलियुगे तथा ।
 प्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥
 अन्तकाले च मघ्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः ।
 श्रेलोक्य नाशयाम्येकं सर्वं स्यावराजङ्गमम् ॥ ४२ ॥
 अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकमुत्पायहः ।
 यमिन्द्रः सर्वगोऽनन्तो ह्यर्षीश्रेष्ठ उग्रधमः ॥ ४३ ॥
 कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत् ।
 शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतहृत्नोद्यमम् ॥ ४४ ॥
 एव प्रणिहितं सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम ।
 सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां घेति कश्चन ॥ ४५ ॥

मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च ।
 यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः ॥ २४ ॥
 कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा घीतकल्मषाः ।
 सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥ २५ ॥
 मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते ।
 अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥ २६ ॥
 अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः ।
 तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले ॥ २७ ॥
 मम चै रोमरूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम ।
 रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥ २८ ॥
 घसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे ।
 कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥ २९ ॥
 ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम ।
 प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥ ३० ॥
 सत्यं दानं तपश्चोन्नमर्हिसां सर्वजन्तुषु ।
 मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः ॥ ३१ ॥
 मयाऽभिभूतविद्वानाद्येष्टयन्ति न कामतः ।
 सायग्येद्मधीयाना यजन्तो विचिधैर्मगैः ॥ ३२ ॥
 शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ।
 प्राप्तुं शक्यो न शैवाहं नरैर्दुष्टतकर्मभिः ॥ ३३ ॥
 लोभामिभूतैः शृणोस्वैरगायैरृतात्मभिः ।
 तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भाषितात्मनाम् ॥ ३४ ॥

सुदुप्राप विमूढानां मा कुयोगनिरेविणाम् ।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम ॥ ३५ ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवप्या सुरसत्तमं ॥ ३६ ॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणा ।
तदाऽहं सप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकमणाम् ॥ ३७ ॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् ।
सृष्ट्वा देवमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥ ३८ ॥
स्थावराणि च भूतानि महाराभ्यान्ममायया ।
कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम् ॥ ३९ ॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणान् ।
श्वेतं कृतयुगे धर्मं श्यामस्त्रेतायुगे मम ॥ ४० ॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णं कलियुगे तथा ।
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥ ४१ ॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः ।
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकं सर्वं म्थावरजङ्गमम् ॥ ४२ ॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः ।
अमित्रं सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उदरम ॥ ४३ ॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपममैव तत् ।
शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतहृत्नोद्यमम् ॥ ४४ ॥
एष प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम ।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मा वेत्ति कश्चन ॥ ४५ ॥

सर्वलोके च मा भक्ता पूजयन्ति च सर्वश ।
 यच्च किञ्चित्त्वया प्राप्त मयि क्लेशात्मक द्विज ॥ ४६ ॥
 सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ ।
 यच्च किञ्चित्त्वया लोके दृष्ट स्थावरजङ्गमम् ॥ ४७ ॥
 विहित सर्व एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावन ।
 अह नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधर ॥ ४८ ॥
 यावद्युगाना विप्रर्षे सहस्र परिवर्तते ।
 तावत्स्वपिति विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥ ४९ ॥
 एव सर्वमह कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम ।
 अशिशु शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥ ५० ॥
 मया च दत्तो विप्रेन्द्र घरस्ते ब्रह्मरूपिणा ।
 असृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित ॥ ५१ ॥
 सर्वमेकार्णव वृत्वा नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
 निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दर्शित जगत् ॥ ५२ ॥
 अभ्यन्तर शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम ।
 दृष्ट्वा लोक समस्त हि विन्मितो नावबुध्यसे ॥ ५३ ॥
 ततोऽसि धक्त्राद्विप्रप द्रुत नि सारितो मया ।
 आढ्यातस्ते मया चाऽऽत्मा दुर्घो हि सुरासुरै ॥ ५४ ॥
 यावत्स भगवान्ब्रह्मा न द्यु येत महातपा ।
 तावत्त्वमिह विप्रर्षे विभ्रग्धश्चर वै सुतम् ॥ ५५ ॥
 ततो विपुद्धे तस्मिन्स्तु सर्वलोकपितामहे ।
 एको भूतानि ह्येषामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥

आकाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च ।
लोके यच्च भवेत्किञ्चिद्दिह स्थावरजङ्गमम् ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवमुक्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधवः ।
पूर्णे युगसहस्रे तु मेघगम्भीरनिखनः ॥ ५८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मुने ब्रूहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमार्थतः ।
वरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम् ॥ ५९ ॥
आयुष्मानसि देवानां मद्भक्तोऽसि दृढव्रतः ।
तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि ॥ ६० ॥

ब्रह्मोवाच ।

श्रुत्वा घाणीं शुभां तस्य विलोक्य स तदा पुनः ।
मूर्ध्ना निपत्य सहस्रा प्रणम्य पुनरग्रधीत् ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

दृष्टं परं हि देवेश तव रूपं द्विजोत्तम ।
मोहोऽयं विगतः सत्यं त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥ ६२ ॥
एवमेवमहं नाथ इच्छेयं त्वत्प्रसादतः ।
लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥ ६३ ॥
शैवभागवतानां च चादार्थप्रतिषेधकम् ।
अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुर्योत्तमे ॥ ६४ ॥
शिवस्याऽऽद्यतनं देव करोमि परमं महत् ।
प्रतिष्ठेय तथा तत्र तव स्थाने च शंकरम् ॥ ६५ ॥

ततो ह्यास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तीं हरीश्वरीं ।
प्रत्युवाच जगन्नाथः स पुनस्तं महामुनिम् ॥ ६६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यदेतत्परमं देवं कारणं भुवनेश्वरम् ।
लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥ ६७ ॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्रं शिवालयम् ।
तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठ त्वं च तथाऽक्षयम् ॥ ६८ ॥
शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थापनं भवेत् ।
नाऽऽवयोर्न्तरं किञ्चिदेकभावो द्विधा कृतौ ॥ ६९ ॥
यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः ।
उभयोरन्तर नास्ति पवनाकाशयोरिव ॥ ७० ॥
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः ।
वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥
तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम् ।
उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम् ॥ ७२ ॥
मार्कण्डेयहृदो नाम नरलोकेषु विश्रुतः ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैधान्तरधीयत ।
मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभृविसंवादे मार्कण्डेयस्य
श्रीभगवद्दर्शनं नाम पट्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

आदितः श्लोकानां सम्पष्ट्यङ्काः—३८१७

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजाः ।
यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च ॥ १ ॥
मार्कण्डेयहृदं गत्वानरश्चोदट्मुख शुचिः ।
निमज्जेत्तत्र धारांस्त्रोनिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २ ॥
संसारसागरे भग्नं पापप्रस्तमचेतनम् ।
आहि मां भगनेऽस्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
नमः शिवाय शान्ताय सूर्यपापहराय च ।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥ ४ ॥
नामिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन् ।
तिलोदकेन मतिमान्पितृंश्चान्यांश्च तर्पयेत् ॥ ५ ॥
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततोगच्छेच्छिवालयम् ।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रि प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥
मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम् ।
अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ७ ॥
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण ।
आहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
मार्कण्डेयहृदे त्वेवं म्नात्वा वृष्ट्वा च शंकरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९ ॥

पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ।
 तत्र भुक्त्वा धरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १० ॥
 इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः ।
 शांकर योगमासाद्य ततोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥
 कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
 पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं घटम् ॥ १२ ॥
 ओं नमो व्यकरूपाय महाप्रलयकारिणे ।
 महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
 अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतन घट ।
 न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥
 भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पघटं नरः ।
 सहसा मुच्यते पापाञ्जोर्णत्वच इवोरगः ॥ १५ ॥
 छायां तस्य समाकम्प कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः ।
 ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा ॥ १६ ॥
 दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसभूतं ब्रह्मनेजोमयं परम् ।
 न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः ॥ १७ ॥
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां फल प्राप्नोति चाधिकम् ।
 तथा स्ववशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥
 यैनतेयं नमस्यत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ १९ ॥
 दृष्ट्वा घटं यैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ।
 संकर्षण सुभद्रां च स याति परमां गतिम् ॥ २० ॥

प्रविष्ट्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम् ।
 संकर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्यप्रसादयेत् ॥ २१ ॥
 नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध ।
 नमस्ते रैवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥ २२ ॥
 नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते घरणीधर ।
 प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥ २३ ॥
 एवं प्रमाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम् ।
 कैलासशिखराकारं चन्द्रात्कान्तनराननम् ॥ २४ ॥
 नीलचस्त्रधरं देवं फणाविक्रमस्तकम् ।
 महामलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम् ॥ २५ ॥
 रौहिणेयं नरो भक्त्या लभेदभिमतं फलम् ।
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २६ ॥
 धाम्भूतसंग्रहं यावद्भुक्त्वा तत्र सुप्तं नरः ।
 पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रचरे योगिना कुले ॥ २७ ॥
 ब्राह्मणप्रचरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
 ज्ञान तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥ २८ ॥
 एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षण ।
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥ २९ ॥
 द्विपट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् ।
 पूजयन्ति सदा धीराम्ने मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥ ३० ॥
 न ता गतिं सुरा यान्ति योगिनो नैव सोपमाः ।
 या गतिं यान्ति मो विप्रा द्वादशाक्षरतन्परा ॥ ३१ ॥

तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुहम् ।
 संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ३२ ॥
 जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
 जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिपूदन ॥ ३३ ॥
 जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
 जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ॥ ३४ ॥
 जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
 जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥ ३५ ॥
 संसारसागरे धोरे निःसारे दुःखफेनिले ।
 क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंग्रहे ॥ ३६ ॥
 नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
 निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ ३७ ॥
 एवं प्रसाद्य देवेशं धरदं भक्तवत्सलम् ।
 सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८ ॥
 पीनासं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 महोरस्कं महाबाहु पीतवस्त्रं शुमाननम् ॥ ३९ ॥
 शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम् ।
 सर्वलक्षणसंयुक्तं घनमालाविभूषितम् ॥ ४० ॥
 दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य ।
 अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥ ४१ ॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम् ।
 नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य ॥ ४२ ॥

यत्फलं सर्वरत्नाद्यैरिष्टे बहुसुवर्णके ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४३ ॥

यत्फलं उर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।

तत्फलं समाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४४ ॥

सर्वदानेन यमेन नियमेन च ।

तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४५ ॥

विधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४६ ॥

यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम् ।

नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४७ ॥

यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः ।

तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४८ ॥

वासेन धानप्रस्थस्य कीर्तितम् ।

तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ४९ ॥

न यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम् ।

तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥ ५० ॥

गहनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः ।

कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥ ५१ ॥

१. कृष्णशुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः ।

श्रियं परमया युक्तः सर्वैः समुदिनो गुणैः ॥ ५२ ॥

उर्वं तून्मृद्धेन विमानेन सुवर्चसा ।

त्रैसङ्गकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥

तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ।
 गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥ ५४ ॥
 च्युतस्तस्मादिहाऽऽपातो विप्राणां प्रचरे कुले ।
 सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः ॥ ५५ ॥
 स्वधर्मनिरत शान्ती दाता भूतहिते रतः ।
 ब्रह्माद्य वैष्णवं ज्ञानं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥
 ततः संपूज्य मन्त्रेण सुभद्रां भक्तवत्सलाम् ।
 प्रसादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ५७ ॥
 नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
 त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥
 एवं प्रसाद्य तां देवी जगद्धार्त्री जगद्धिताम् ।
 बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रां वरदा शिवाम् ॥ ५९ ॥
 कामगेतं विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ।
 आभूतसंप्लव यावत्कीडित्वा तत्र देववत् ॥ ६० ॥
 इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्ववेत् ।
 प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥
 इति श्रीमहापुराण आदित्वाहो स्वयंभुवृषिसंवादे कृष्णद-
 माहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥
 श्लोकानामादितः समष्ट्यङ्काः—३८७^३